



# Saurashtra University

Re – Accredited Grade 'B' by NAAC  
(CGPA 2.93)

Rangani, Manisha J., 2007, “*डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्य के नारीपात्र*”, thesis  
PhD, Saurashtra University

<http://etheses.saurashtrauniversity.edu/id/eprint/696>

Copyright and moral rights for this thesis are retained by the author

A copy can be downloaded for personal non-commercial research or study,  
without prior permission or charge.

This thesis cannot be reproduced or quoted extensively from without first  
obtaining permission in writing from the Author.

The content must not be changed in any way or sold commercially in any  
format or medium without the formal permission of the Author

When referring to this work, full bibliographic details including the author, title,  
awarding institution and date of the thesis must be given.

Saurashtra University Theses Service  
<http://etheses.saurashtrauniversity.edu>  
repository@sauuni.ernet.in

# डॉ. किशोर कादर के प्रबन्ध काव्य के नारीपात्र

[सौराष्ट्र विश्व विद्यालय की पीएच.डी. ( हिन्दी )की  
उपाधि के लिए प्रस्तुत किया जानेवाला शोध-प्रबन्ध]

❖ अनुसंधित्सु ❖

रंगाणी मनीषा जे.

श्री उत्तर बुनियादी विद्यालय,  
भीमोरा, ता. चोटीला, जि. सु.नगर

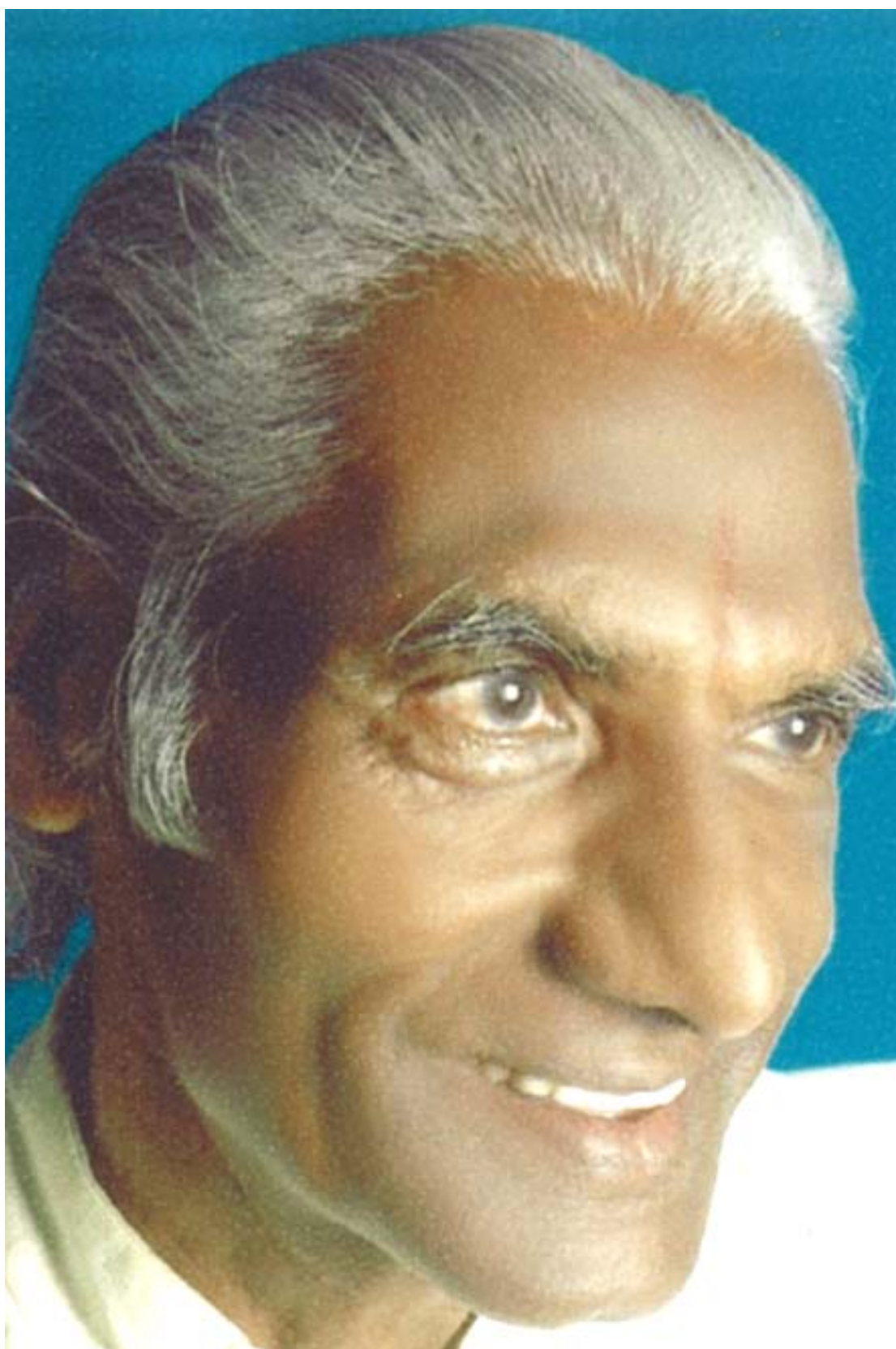


❖ मार्गदर्शिका ❖

डॉ. दक्षाबहन जोशी

अध्यक्षा, हिन्दी विभाग  
श्री मीनाबहन जे. कुण्डलिया आर्ट्स एण्ड कोमर्स कोलेज,  
राजकोट

वर्ष : 2007



डॉ. किशोर काबरा

# प्रमाणपत्र

प्रमाणित किया जाता है कि रंगाणी मनीषा जे. द्वारा सौराष्ट्र विश्व विद्यालय, राजकोट में पीएच.डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु “डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्य के नारी पात्र” शीर्षक शोध-प्रबन्ध मेरे निदर्शन में तैयार किया गया है। इन्होंने नितांत मौलिक ढंग से उक्त विषय पर यथाशक्ति अध्ययन एवं विश्लेषण-विवेचन करके वैज्ञानिक ढंग से मौलिक निरूपण किया है। साथ ही यह शोध-प्रबंध अथवा इसका कोई अंश न तो अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है और न इसका कोई अन्य उपयोग हुआ है।

मार्गदर्शिका

डॉ. दक्षा जोशी

हिन्दी विभागाध्यक्ष,

श्री मीनाबहन जे. कुण्डलिया आर्ट्स एन्ड

कॉमर्स कॉलेज,

राजकोट।

स्थल : राजकोट

दिनांक :     /     / 2007

डॉ. किशोर काबरा

७६९, जनतानगर, चाँदखड़ा,  
अहमदाबाद-३८२४२४

• दूरभाष : ०७९-२३२८८५३ •

कृष्ण जन्माष्टमी,  
४ सितम्बर, २००७

बेटी मनीषा, रंगणी,  
उसब (हो)।

तुम्हारा शोध-कार्य पूरा हो गया है और उसे विश्वविद्यालय में प्रस्तुत करने की अन्तिम उपरिधि से तुम जुड़ी हो - यह जानकर अत्यन्त उसन्नता हुई। तुम्हारी निष्ठा, दत्तचितता, सहिष्णुता और पारदर्शिता ज्ञान के फलस्वरूप यह शोध-कार्य सम्पन्न हो रहा है। इस सांस्कृतिक-अनुष्ठान के फलस्वरूप तुम्हें पी-एच.डी. की उपाधि, 'डॉक्टर' अभिधान और गरीमामय शोध-उपबन्ध की प्राप्ति तो होगी ही, तुम आत्मवृद्धि और सुखर का भी प्राप्त करो - यह मेरा आशीर्वाद है। तुम शोध और सर्जना-दोनों से निरन्तर जुड़ी हो।

'डॉ. किशोर काबरा के उपबन्ध-कार्यों से जुड़े नारी पात्रों' का तुमने स्व-अपने भीतर एक लम्बे समय तक उपस्थापित करने उनके व्यक्तित्व से सम्बन्धित सभी बाहरी एवं भीतरी रूढ़ियों का अध्ययन किया होगा। मूल कथा एवं अवन्त कथाओं से ओतप्रोत ये पात्र तुम्हें अपनी (सम्बन्ध) स्वयं सुनाते होंगे और तुम उनके व्यक्तित्व और चारीरिक अस्तित्व का मूल्यांकन करते परंपरा तथा युगबोध की कसौटी पर मेरे धर्म-गुरु की कसती होगी। मुझ पर एवं मेरे कृतित्व पर अब तक कई विश्व विद्यालयों में काम हुआ है, पर शुरु नारी पात्रों पर यह उद्यम काम होगा। तारी होने के कारण तुम मेरे सभी नारी पात्रों का विश्लेषण पूरी तटस्थता और तन्मयता से - पूरी ईमानदारी से कर सकी होगी। 'पीताप के पाँच क्षण' की अम्बा और सत्यवती, 'नरों वा कुंजरी वा' की द्रौपदी और कृपी, 'धनुषभंग' की सीता और धरती माँ, 'उत्तर महा-भारत' की द्रौपदी और कुन्ती, 'उत्तर रामायण' की सीता और मंदोदरी तथा 'उत्तर अश्वत्थ' की राधा, रुक्मिणी, यशोदा, देवकी, कुब्जा और विदुराजी जैसी महिमा-मण्डित नारीयाँ तुम्हारे साथ उत्ति पल उत्ति क्षण ध्यायी तब ही होंगी और तुम उनके अन्तरंग और बहिरंग को पूरे तरह पहचान सकी होगी। इन सब नारी पात्रों की शुभ कामनाएँ तुम्हारे साथ होंगी ही। इस शोध-यात्रा में तुम्हारी शोध-निर्देशिका डॉ. रश्मा जोशी का सान्निध्य ही कामधेनु की तरह तुम्हारे साथ रहा होगा। वे भी यशस्वी होंगी। अल!

DR. M. L. K.

## अनुक्रमणिका

### डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्य के नारी पात्र

क्रम	शीर्षक	पृष्ठ क्रमांक
1	प्रस्तावना	1 - 8
2	प्रथम अध्याय : - डॉ. किशोर काबरा का जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व	9 - 24
3	द्वितीय अध्याय : - विभिन्नकाल में नारी की स्थिति : (ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में)	25 - 42
4	तृतीय अध्याय : - हिन्दी काव्य में नारी की स्थिति	43 - 92
5	चतुर्थ अध्याय : - काव्य के विभिन्न रूप एवं डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्य	93 - 144
6	पंचम अध्याय : - डॉ. किशोर काबरा के काव्य में नारी के विभिन्न रूप एवं डॉ. किशोर काबरा का नारी के प्रति नूतन द्रष्टिकोण	145 - 171
7	षष्ठ अध्याय : - डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्य के नारीपात्र	172 - 324
8	सप्तम् अध्याय : - नारी पात्रों की समस्याएँ और डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्य में समाधान	325 - 359
9	उपसंहार	360- 363
10	परिशिष्ट	364 - 373

## ★ विषय प्रवेश ★

साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य और समाज एक सिक्के के दो पहलू हैं। साहित्य की प्रवृत्तियाँ उसी आधार पर टिकी हुई हैं, जैसा समाज होता है। साहित्य संस्कृति का अंग है और उसका रूप विधायक भी। भारतीय समाज और भारतीय संस्कृति को रूपायित करने में भारतीय साहित्य का योगदान बहुत ऊँचा है। रामायण, महाभारत और श्रीमद् भागवत ये साहित्य के ऐसे सर्वश्रेष्ठ मानदंड हैं, जिनका भारतीय मनीषा एवं जनजीवन में भी बहुत बड़ा महत्व है। ये ग्रंथ आज भी हमारे कवियों और लेखकों के लिए स्रोत सामग्री के रूप में उपादेय रहे हैं। सभी भारतीय भाषाओं के अनेकानेक कवियों-लेखकों ने इन महाकाव्यों से प्रेरणा प्राप्त करके अपना प्रतिभा कौशल प्रकट किया है।

किसी भी देश के साहित्य सृजन में नारी का बहुत बड़ा योगदान होता है। साहित्य और नारी का संबंध शाश्वत है। इसीलिए साहित्य की विभिन्न विधाओं में (नारी) एक सशक्त माध्यम रही हैं। अतः काव्य में नारी की उपेक्षा असम्भव है। भारतीय संस्कृति में नारी को सदैव उच्च स्थान दिया गया है। हमारे यहाँ उसे आदि शक्ति के नाना रूपों में देखने की अत्यन्त प्राचीन परंपरा रही है। भारतीय संस्कृति में -

“यत्र नार्यस्तु पुज्यन्ते  
रमन्ते तत्र देवताः ”

का आदर्श विद्यमान था। भारतीय दर्शन में नारी को प्रकृति रूपा माना गया है। हमारे प्राचीन साहित्य में उसे पुरुष के समकक्ष स्वीकारा गया था। इतना ही नहीं, उसे समाज के अभिन्न अंग के रूप में देखा गया था। परिवार में भी उसे महत्वपूर्ण एवं सम्मानीय स्थान प्राप्त था। गृहस्थी के मेरुदंड के रूप में उसे माना जाता था। कोई भी पुण्यकार्य बिना पत्नी के अधूरा माना जाता था। अर्थोपार्जन की स्वतंत्रता के कारण वह आत्मनिर्भर थी। आदिकाल से लेकर वर्तमान समय तक के साहित्य के विविध रूपों में नारी के त्याग, बलिदान, शौर्य, ममत्व, सहिष्णुता, उदारता तथा कर्मठ जीवन का चित्रण मिलता है। किन्तु धीरे-धीरे सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ उसका स्थान गिरता गया। उसके सारे अधिकार छिन लिए गए। आर्थिक द्रष्टि से वह पराधीन बन गई। स्वयं नारी ने भी अपने जीवन की परिस्थितियों के साथ समझौता कर लिया और कोई विद्रोह प्रदर्शित नहीं किया।

अंग्रेजों के आगमन पूर्व भारतीय नारी का जीवन अत्यंत हेय एवं उपेक्षित बन गया था। किन्तु अंग्रेजी शिक्षा का पर्याप्त प्रभाव हमारे समाज सुधारकों पर पड़ा और उन्होंने नारी जीवन की उन्नति



के लिए कदम उठाये। ब्रिटीश शिक्षा एवं विभिन्न समाज सुधारकों के प्रयत्न के फल स्वरूप समाज ने स्वीकार किया कि नारी समाज का महत्वपूर्ण एवं अभिन्न अंग है। उसकी उन्नति के बिना समाज का उन्नत होना असम्भव है। अतः धीरे-धीरे नारी के प्रति द्रष्टिकोण बदलने लगा। स्वातंत्र्योत्तर काल नारी के लिए उत्कर्ष का काल रहा। वह अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गई और व्यक्तित्व को पूरी तरह से विकसित करने के लिए अपने कदम बढ़ाने लगी।

आज की नारी राजनीतिक, शैक्षणिक, सामाजिक, चिकित्सा, सैन्य, सिनेमा जैसे कई क्षेत्रों में पुरुष के साथ कदम बढ़ा रही हैं। वह अब चार दीवारों में बन्द रहना नहीं चाहती। इसलिए आज पुरुष को मात करती हुई अपनी प्रतिभा एवं अस्मिता का परिचय दे रही है। आज समाज की समस्याएँ, विचार, द्रष्टिकोण आदि में परिवर्तन आ गया है। जीवन में नारी के महत्वपूर्ण स्थान को ध्यान में रखकर उसके जीवन का विशेष अध्ययन हो रहा है। समय के साथ-साथ कवियों का नारी विषयक द्रष्टिकोण भी बदल रहा है। अतः आलोच्य प्रबंध काव्यों में नारी का जीवन, उसका स्थान, उसका स्वरूप, उसकी विभिन्न समस्याएँ आदि पर विचार किया जाने लगा है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में मैंने डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्यों के नारी पात्रों का अध्ययन करने का प्रयास किया है। यह शोध - प्रबन्ध सात अध्यायों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय में डॉ. किशोर काबरा के जीवन परिचय के अंतर्गत उनका जन्म, बचपन, शिक्षा-दीक्षा, व्यवसाय, परिवार, व्यक्तित्व, एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय में आदिकाल से लेकर महाकाव्यकाल, स्मृतिकाल, मध्यकाल, ब्रिटीशकाल और आधुनिक काल तक के समाज में नारी विषयक द्रष्टिकोण को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा गया है।

हिन्दी कवियों का नारी विषयक द्रष्टिकोण तृतीय अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। हिन्दी काव्य का आरम्भिक काल, वीरगाथा काल से लेकर रीतिकाल, भक्तिकाल और आधुनिक काल तथा आधुनिक काल के अंतर्गत भारतेन्दुकाल, द्विवेदीकाल, छायावादकाल, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता एवं नवगीत, साठोत्तरी कविता, आठवें तथा नवें दशक की कविता में विभिन्न कवियों का नारी विषयक द्रष्टिकोण प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया है।

चतुर्थ अध्याय में काव्य के विभिन्न रूपों का परिचय देते हुए डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्यों का परिचय दिया गया है।



पंचम अध्याय में काबराजी के काव्य में चित्रित नारी के विविध रूपों का वर्णन प्रस्तुत करते हुए डॉ. किशोर काबरा के नारी के प्रति नूतन द्रष्टिकोण को प्रस्तुत किया गया है।

डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्यों के नारी पात्रों का अध्ययन षष्ठम अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। जिसमें कवि के सभी (छः) प्रबन्ध काव्यों के समस्त नारी पात्रों के (मुख्य पात्र, गौणपात्र एवं अन्य पात्र) चारित्रिक गुण-दोषों पर प्रकाश डाला गया है।

आधुनिक नारी राजनैतिक, सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक आदि अनेक समस्याओं से ग्रस्त है। पाश्चात्य संस्कृति की अंधी दौड़ के कारण परिवार और समाज टूट रहे हैं। जिसका जिक्र किशोर काबरा के इन काव्यों में मिलता है। काबराजी अपने पौराणिक पात्रों के माध्यम से इस स्थिति को अधिक स्पष्ट करके वर्तमान सन्दर्भ में इन पात्रों के महत्व को प्रतिपादित कर पाये हैं। सप्तम अध्याय में नारी की विभिन्न समस्याओं को प्रस्तुत करते हुए डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्यों द्वारा समाधान किया गया है।

उपसंहार में समग्र रूप से नारी जीवन को उन्नत करने का प्रयास किया गया है। साथ ही साथ वर्तमान परिस्थितियों में नारी को अपने कर्तव्यों और दायित्वों के प्रति जागृत करने के लिए अतीत के पात्रों को टोला गया है। संक्षेप में इस शोध-प्रबन्ध में नारी जीवन के संघर्ष की गाथा प्रस्तुत कर के संघर्षों में भी नारी किस तरह अपने जीवन को चरितार्थ एवं सार्थक बना सकती है यह दिखाने का नम्र प्रयास किया गया है।

### ★ विषय का महत्व एवं उपयोगिता ★

जिज्ञासा मनुष्य स्वभाव की सबसे बड़ी विशेषता है। इस द्रष्टि से किसी भी विषय, व्यक्ति या वस्तु का शोधपरक अध्ययन महत्वपूर्ण ही माना जायेगा। नारी परिवार की सूत्रधार होती है और परिवार समाज की एक इकाई है। अतः किसी देश के चरित्र की जाँच करने का एक तरीका यह है कि उस देश का नारी के प्रति क्या द्रष्टिकोण है। संस्कृति की पहचान भी इसीसे हो जाती है कि संस्कृति के पोषक नारी के प्रति कौन सा द्रष्टिकोण रखते हैं। आज समाज और साहित्य दोनों में नारी विषयक चर्चाएँ जोर-शोर से हो रही हैं। नारी प्रारंभ से ही साहित्य सर्जन के केन्द्र में तो रही लेकिन उसकी छवि का सही ढंग से मूल्यांकन आज तक नहीं हो सका है। वर्तमान परिवेश आग्रह रखता है कि युगीन परिस्थिति के अनुरूप नारी की अस्मिता और गरिमा की स्थापना के लिए नये सिरे से नारी-विमर्श हो।

प्रत्येक कवि व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र की समकालीन मानसिकता के साथ चलता है। डॉ. किशोर काबरा ने भी नारी को उन्नत बनाने के लिए अपने काव्यों में उसे केन्द्रवर्ती स्थान दिया है। कवि ने पौराणिकता में आधुनिकता के समन्वय द्वारा नारी गरिमा को उच्चता प्रदान करने की कोशिश की है। काबराजी के लिए यह कोई नया विषय नहीं है, लेकिन उन्होंने जिस द्रष्टि के परिप्रेक्ष्य में नारी को उद्घाटित किया है, वह आज भी अत्यंत ही महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है। वैश्विक स्तर पर आज नारी को बुनियादी तौर पर महत्ता दिलाने की कोशिश हो रही है, जो कि साहित्य जगत का एक सराहनीय कदम है; लेकिन आज भी संभवतः नारी उस स्थिति में नहीं है, जहाँ पहुँचकर वह पुरुष के समान अधिकारों की वकालत या हिमायत कर सके। यह वकालत या हिमायत है भी तो सैद्धांतिक स्तर पर ही। व्यवहारिक द्रष्टि से अभी भी बहुत कुछ करना बाकी है। काबराजी के नारी पात्रों में बहुत स्थान पर वह साहस मौजूद है, जो आज की नारी को संघर्ष करने के लिए तैयार करता है। अतः प्रस्तुत शोध विषय का महत्व एवं उपयोगिता ओर भी बढ़ जाती है।

कोई भी रचना या रचनागत चरित्र तभी महत्वपूर्ण माना जाता है, जब वे न केवल अपने सर्जन के युग को प्रतिबिंबित करते हों, बल्कि युगों-युगों तक अपनी जीवंतता बरकरार रखने में सक्षम हो। काबराजी के नारी पात्र इस द्रष्टि से और भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

कोई भी शोधकार्य अंतिम नहीं होता। यदि वह भविष्य की संभावनाओं को उजागर करता है तो महत्व और भी बढ़ जाता है। आशा है यह शोधकार्य भी इसी द्रष्टि से महत्वपूर्ण एवं उपयोगी सिद्ध होगा।

## ★ प्रेरणा एवं विषय-चयन ★

काव्य विधा के प्रति बचपन से ही मेरी विशेष अभिरूचि रही है। काव्य के प्रति इस अभिरूचि का निरंतर संवर्धन होता रहा। कॉलेज काल के प्रारंभ से ही मैं गुजराती और हिन्दी काव्य रचनाएँ लिखने का प्रयास करती आ रही हूँ। काव्य के प्रति विशेष अभिरूचि के कारण ही मैंने एम.ए. और एम.फिल. के अभ्यास काल दौरान काव्य विद्या पर ही शोध-प्रबन्ध लिखा। काव्य विधा में भी विशेषतः नारी विषयक रचनाओं से मैं ज्यादा आकृष्ट हुई हूँ। अतः जब मैंने पीएच.डी. करने का निश्चय किया तो तय कर ही लिया कि मैं नारी विषयक काव्य कृति पसंद करूँ। मैंने अपने विचार आत्मीय गुरु डॉ. दक्षाबहन जोशी के समक्ष प्रस्तुत किये। इसी दौरान एक साहित्यिक संमेलन के अंतर्गत कविवर डॉ. काबराजी से डॉ. दक्षाबहन जोशी की मुलाकात हुई थी। आदरणीय

डॉ. दक्षाबहन भी काबराजी के प्रबन्ध काव्यों से प्रभावित थी ही। अतः उन्होंने मुझे डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्यों के बारे में विशेष जानकारी दी और मैंने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। डॉ. दक्षाबहन जोशी ने भी बड़े उत्साह, प्रेम एवं सौहार्द के साथ शोधार्थी के रूप में मेरा स्वागत किया। परिणाम स्वरूप “डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्य के नारी पात्र” शीर्षस्त यह शोध-प्रबन्ध आपके समक्ष प्रस्तुत है।

## ★ विषय की क्षेत्र-सीमा का निर्धारण ★

ज्ञान का सागर असीम है। शोधपरक अध्ययन करते समय विषय की तह तक पहुँचने की प्रक्रिया में शोधार्थी विषयांतर के दोष से बच सके इस हेतु शोध-प्रबन्ध के विषय की कतिपय सीमा निश्चित कर लेना शोधार्थी के लिए आवश्यक है। एक निश्चित परिक्षेत्र में कार्य करके वह प्रतिपाद्य तक पहुँच सके इसलिए भी सीमा-निर्धारण आवश्यक है।

डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्य के नारी पात्र विषय स्वतः ही नारी संबंधी चित्रण की परिसीमा निर्दिष्ट करता है। प्रस्तुत विषय के अंतर्गत आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक के समाज में नारी की स्थिति का अंकन किया गया है। हिन्दी काव्य में विभिन्न काल के कवियों के काव्य में नारी की स्थिति को चित्रित करते हुए कवियों के द्रष्टिकोण में नारी के प्रति आये क्रमिक विकास के प्रकाश में नारी के बदलते रूप एवं नैतिक मानदंडों में बदलाव चित्रित करते हुए नारी पात्रों का चित्रण ही प्रस्तुत विषय की सीमा है। साथ ही आज की समस्याओं का चित्रण एवं समाधान प्रस्तुत विषय की परिव्याप्ति है। नारी चित्रण के साथ-साथ नारी के आधुनिक क्रिया-कलापों, विचार-व्यवहार आदि के बारे में विश्लेषण कर, कवि के द्रष्टिकोण से जोड़ने का मेरा नम्र प्रयास है, जिससे नारी के बदलते हुए रूप को समाज स्वीकार करें, उसे गौरव प्रदान करें।

## ★ सामग्री संकलन के स्रोत ★

किसी भी शोधपरक अध्ययन के लिए सामग्री का होना अत्यंत आवश्यक है।

प्रस्तुत अध्ययन के सामग्री संकलन हेतु मुझे सौराष्ट्र विश्व विद्यालय पुस्तकालय, जिल्ला पुस्तकालय राजकोट, श्रीमती के.एस.एन. कणसागरा महिला कॉलेज पुस्तकालय, स्व.मीनावहन कुंडिल्या कॉलेज पुस्तकालय, गुजरात विद्यापीठ अहमदाबाद तथा अन्य स्थानीय पुस्तकालयों तथा मित्रों से सहायता प्राप्त हुई है। इन समस्त संस्थाओं के प्रबंधकों एवं पुस्तकालयाध्यक्षों का मैं अंतःकरण से आभार मानती हूँ।

## ★ प्रस्तुत शोध-कार्य के कुछ विचारबिंदु ★

हर शोधकार्य की सबसे बड़ी विशेषता उसकी मौलिकता होती है, जो गहन-अध्ययन, चिंतन, मनन और लगन का परिणाम होती है। मैं अपने श्रम और लगन के दावे के बारे में तो ज्यादा कुछ नहीं कह सकती, किन्तु इतना स्वीकार करती हूँ कि मैं अपनी क्षमता के अनुरूप ज्ञान की सीमाओं में रहकर अपने अध्ययन और अनुसंधान को जिस लक्ष्य तक पहुँचा सकी हूँ, वह मेरी आत्म-तुष्टि का व्यापार जरूर रहा है। इसका कारण यह है कि इस शोधकार्य के माध्यम से डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्य के हर नारी चरित्र को मैंने एक विशिष्ट नजरिये से जाँचने-परखने का प्रयास किया है। यह द्रष्टि मूलतः कवि की रही है लेकिन उसका विश्लेषण करते हुए मैंने नारी जीवन के संघर्षों को उनकी रचनाओं में अधिक निकट से देखा है। इन संघर्षों ने मुझे सदैव नारी मूल्यों की चोटदार हिमायत करने के लिए प्रेरित किया है। भारतीय व्यवस्था में नारी की स्थिति को कवि ने बदलते परिप्रेक्ष्य में प्राचीनता के साथ नूतनता का समन्वय करके जिस ईमानदारी के साथ उद्घाटित किया है, उसका विश्लेषण करना मेरा उद्देश्य रहा है।

शोध के निर्णायक पड़ावों में समग्रता में नारी संघर्ष एवं नारी व्यथा को जानने से लेकर नारी को अपने अस्तित्व एवं अधिकारों, कर्तव्यों और दायित्वों का बोध कराना शोधकार्य का ध्येय रहा है।

## ★ प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की विशेषताएँ ★

**प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं.....**

- समाज में नारी विषयक धारणाएँ, भ्रांतियाँ और पूर्वग्रह, जो आज भी विद्यमान हैं, इनसे समाज को मुक्त कराने का मेरा विनम्र प्रयास रहा है।
- हमारे समाज में व्याप्त नारी-विषयक परंपरागत द्रष्टिकोण में परिवर्तन लाकर नारी को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है।
- समाज में आदिम युग से आज तक नारी का अपना विशिष्ट महत्व रहा है। प्रत्येक युग में नारी का विविध रूपों में प्रदान रहा है, जिसे चरितार्थ करने का मैंने प्रयास किया है।
- समाज द्वारा निर्धारित मानदण्डों का पालन करने के लिए नारी को बाध्य किया गया है। वर्तमान युग की नारी के लिए इससे हटकर नया कल्याणकारी मार्ग प्रशस्त करना आवश्यक है वह तभी अपने आपको सार्थक मान सकेगी, जब उसके व्यक्तित्व को समाज एक स्वतंत्र

सत्ता के रूप में स्वीकार करेगा ।

- मैंने अपने निर्णयों तथा निष्कर्षों तक पहुँचने में कतिपय भ्रामक धारणाओं का खण्डन कर, सप्रमाण नई मान्यताओं को स्थापित करने का विनम्र प्रयास किया है ।
- अतीत के भव्य प्रासाद पर खड़े होकर वर्तमान को भविष्य का संदेश देने का विनम्र प्रयास किया गया है ।
- अतीत की अलौकिक घटनाओं को लौकिक बनाकर आदर्श पात्रों को भी दोष-गुण से परिपूर्ण यथार्थ मानव के रूप में चित्रित किया गया है ।
- पात्रों के चरित्र चित्रण द्वारा नाना युगीन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया गया है ।

### ★ कृतज्ञता ज्ञापन ★

प्रस्तुत शोधकार्य श्री मीनाबहन कुंडलिया कॉलेज के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ. दक्षाबहन जोशी के कुशल निदर्शन में तैयार किया गया है । विषय चयन से लेकर इसकी संपूर्णता तक डॉ. दक्षाबहन जोशी ने जिस सरलता, सहृदयता और आत्मीयता का परिचय दिया है, उसके लिए मैं सदा ऋणी रहूँगी । इस प्रबन्ध रचना में उनके अमूल्य सुझाव मेरे शोधकार्य के दिशा निर्धारण में बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए । डॉ. दक्षाबहन का सक्रिय निदर्शन मुझे यदि न मिलता तो कदाचित ही मैं अपना कार्य पूर्ण करने में समर्थ हो पाती । उन्होंने मेरा सही पथ प्रदर्शन करने के साथ-साथ अपना अमूल्य समय भी प्रदान किया है । अतः उनके प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ ।

मुझे शोधकार्य की दिशा में प्रारंभिक दिशा-निर्देश करने वाले गुरुवर्य डॉ. एस. पी. शर्मा साहब (हिन्दी विभागाध्यक्ष, सौराष्ट्र युनिवर्सिटी, राजकोट) तथा डॉ. गिरीशभाई त्रिवेदी (प्रो. सौराष्ट्र युनिवर्सिटी, राजकोट) एवं डॉ. कलासवा साहब (रीडर सौराष्ट्र युनिवर्सिटी, राजकोट) के प्रति भी मैं हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ । मेरी इस साधना में श्रीमती एस.एन. कणसागरा महिला कॉलेज, राजकोट की परम श्रद्धेया डॉ. गीताबहन दवे की मैं विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने समय-समय पर उपयोगी पुस्तकें एवं बहुमूल्य उपयोगी सुझाव देकर जिस सहृदयता के साथ मेरा पथ प्रदर्शन किया है, उसके लिए मैं उनके श्री चरणों में श्रद्धा सुमन अर्पित करती हूँ ।

मेरे अहोभाग्य से मुझे प्रबन्ध काव्य के लेखक डॉ. काबराजी के श्री चरणों में जाकर साक्षात्कार करने के कई मौके मिले हैं । उनका सद्भाव एवं सुझावों से मुझे प्रेरक बल मिला है । अतः उनकी

सहृदयता को मैं कैसे भूल सकती हूँ। उनके प्रति भी मैं हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ।

प्रस्तुत शोधकार्य को पूर्ण होने में जिन विद्वानों का अमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ है, उनकी मैं हृदय से आभारी हूँ। जिन विद्वानों के पुस्तकों का मैंने संदर्भ ग्रंथ के रूप में उपयोग किया है, उनके प्रति मैं आभार प्रकट करती हूँ। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की सामग्री संकलित करने में विविध ग्रंथालयों के ग्रंथपालों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

इस कठिन साधना में मेरे परिवार के सदस्यों को मैं कैसे भूल सकती हूँ! अध्ययन कार्य दौरान मेरे परमादरणीय माता-पिता का वात्सल्य सदा मेरा अभिसिंचन करता रहा है। उनके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित कर मैं उनके गौरव को कम नहीं करना चाहती। यह उन्हीं के अपार स्नेह की फलश्रुति है कि मैं अध्ययन की ओर अग्रसर हो सकी हूँ। इस कार्य को संपन्न करने में मेरे पति का भी बड़ा सहयोग रहा है। उनके प्रति भी मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। मेरे भाई, बहन एवं परिवारजनों की प्रेरणा, उनका स्नेह, उत्साह एवं सहयोग इस कार्य की सफलता का सदा पूरक रहा है। उनके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

प्रस्तुत प्रबन्ध को आकार देने में, दुर्लभ ग्रंथ प्राप्त करने में जिन महानुभावों, सह-कार्यकर मित्रों, सहृदयी शुभ चिंतकों ने मेरी सहायता की है, उनकी भी मैं ऋणी हूँ। अंत में प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की रूपरेखा का टंकण कार्य सुधार रूप से करने के लिए मैं 'सोफटेक कोम्प्युटर' का मैं आभार मानती हूँ।

**विनीता**

मनीषा जे. रंगाणी

# प्रथम अध्याय

डॉ. किशोर काबरा का जीवन,  
व्यक्तित्व एवं कृतित्व



---

## प्रथम अध्याय : डॉ. किशोर काबरा का जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 जन्म और बचपन
- 1.3 विवाह और पारिवारिक जीवन
- 1.4 शिक्षा-दीक्षा
- 1.5 व्यवसाय
- 1.6 व्यक्तित्व
  - 1.6.1 बाह्य व्यक्तित्व
  - 1.6.2 आंतरिक व्यक्तित्व
  - 1.6.3 साहित्यिक व्यक्तित्व
- 1.7 कृतित्व
  - 1.7.1 काबराजी का प्रकाशित साहित्य
  - 1.7.2 काव्य संग्रह
  - 1.7.3 प्रबन्ध काव्य
  - 1.7.4 बाल साहित्य
  - 1.7.5 लघुकथा संग्रह
  - 1.7.6 सतसई
  - 1.7.7 शोध प्रबन्ध एवं निबन्ध
  - 1.7.8 अनुवाद कार्य
  - 1.7.9 सम्पादन एवं संकलन
  - 1.7.10 संयुक्त सम्पादन
  - 1.7.11 पाठ्य पुस्तकें एवं लेखन - अनुवाद
  - 1.7.12 अन्य संदर्भ - साहित्य
  - 1.7.13 शोध प्रबन्ध एवं समीक्षा ग्रंथ
  - 1.7.14 इतिहास ग्रंथों और शोध - प्रबंधों में उल्लेख

1.7.15 अन्य उपलब्धियाँ

1.7.15.1 सम्मानोपाधियाँ / मानद उपाधियाँ

1.7.15.2 पुरस्कार एवं सम्मान

1.8 प्रबन्ध प्रेरणा

1.9 उपसंहार

1.10 संदर्भ-सूची

## डॉ. किशोर काबरा का जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व

### 1.1 प्रस्तावना :

आधुनिक युग के अत्यंत लोकप्रिय एवं बहुमुखी प्रतिभा संपन्न कविवर किशोर काबरा उच्चकोटि के साहित्यकार है। हिन्दी के साहित्य जगत में पौराणिकता के साथ-साथ आधुनिकता का सुभग समन्वय करनेवाले इस कवि ने अपने काव्यों में एक नूतन परंपरा का निर्माण किया है। इनकी इस अभूतपूर्व काव्यकला ने थोड़े ही समय में हिन्दी साहित्य जगत में उन्हें अनूठा एवं महत्वपूर्ण स्थान दिलाया है। ऐसा लगता है कि अतीत नूतन शृंगार में सुसज्जित होकर फिर हमारे सामने आ गया है। वेद-पुराण को आधुनिक युगबोध से जोड़ने में उन्हें अपूर्व सफलता मिली है, इसमें कोई सन्देह नहीं। उनकी रचनाएँ ही इस बात का प्रमाण हैं। उन्हें पढ़कर हम कह सकते हैं कि निश्चय ही आप आधुनिक काल के आठवें दशक के श्रेष्ठ कवि हैं।

किसी भी साहित्यकार की रचना सृष्टि की परीक्षा करने से पहले उनकी जीवन सृष्टि का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य हो जाता है। यह तो शाश्वत सत्य है कि साहित्यकार अपने बारे में कभी प्रत्यक्ष रूप से कुछ नहीं कहता है, किन्तु उनकी कृति में किसी-भी प्रकार, कहीं न कहीं कवि के विचार, भाव और सुख-दुःख अनायास ही झलकते हैं। अर्थात् डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्यों की परख करने से पहले हमें उनके जीवन एवं व्यक्तित्व की बारीकियों को जान लेना भी अत्यावश्यक हो जाता है।

### 1.2 जन्म और बचपन :

डॉ. किशोर काबरा का जन्म 26 दिसम्बर, 1934 को मध्य प्रदेश में स्थित मन्दसौर नगर (दशपुर) के एक प्रतिष्ठित माहेश्वरी परिवार में हुआ था।

‘नन्द किशोर’ नामधारी कवि श्री काबराजी का बचपन कोमलता और कठोरता के बीच पनपनेवाले पौधे की तरह बीता। आर्थिक विपन्नता के कारण शैशवावस्था से ही परिस्थितियों से संघर्ष करना आपने सिख लिया था। बचपन से ही पिता प्रभुलालजी से विरासत में मिली काव्य कला को वे अपने जीवन की अनमोल पूंजी मानते हैं। काबराजी बचपन से ही श्रम और सादगी जैसे उच्चगुणों से सम्पन्न थे।

### 1.3 विवाह और पारिवारिक जीवन :

काबराजी का विवाह 21 वर्ष की आयु में मध्य प्रदेश एवं राजस्थान की सीमा पर स्थित रतनगढ़ के संस्कारी एवं संपन्न परिवार में गीता नामक कन्या से हुआ था। गृहस्थी की डोर को पकड़कर भी कवि ने अपनी कलम को नहीं छोड़ा। आपका परिवार छोड़ा एवं सुंदर है। परिवार में आपकी पत्नी के अलावा एक पुत्र, पुत्रवधू एवं तीन बेटियाँ हैं, जिनकी शादी हो चुकी है और वे भी अपने पिता की भाँति स्वावलंबन से जीवनपथ पर अग्रसर हैं। पुत्र नीमच में रहता है, वह भी सुखी एवं संपन्न है। पुत्रवधू कुसुम ने भी एक पुत्र एवं पुत्री को जन्म दिया किन्तु दुर्भाग्यवश पुत्र इस दुनिया में ज्यादा न रह सका। जिसका दुःख पूरे परिवार में आज भी है। पुत्री खुशबू बड़ी प्यारी गुड़िया जैसी है और अपने दादाजी को बहुत चाहती है।

### 1.4 शिक्षा-दीक्षा :

डॉ. किशोर काबरा ने अपनी शिक्षा का शुभारंभ अपने गाँव से दो कोश की दूरी पर स्थित पाठशाला से किया। मध्य प्रदेश बोर्ड, भोपाल से सन् 1950 में उन्होंने द्वितीय श्रेणी में मैट्रिक पास की। वहीं से सन् 1952 में इण्टरमीडियेट भी पास की। किन्तु इण्टरमीडियेट के बाद अध्ययन पर अल्पविराम लग गया और उन्हें व्यवसाय की ओर उन्मुख होना पड़ा। किन्तु सूर्य को थाली में कितनी देर तक छिपाकर रखा जा सकता है? क्या थाली ढँक देने से उनके तेज में कोई कमी आती है कभी? नहीं। ठीक वैसे ही कविवर काबराजी की काव्य प्रतिभा भी अनेक अवरोधों के बावजूद भी बाद में चमक उठी। हिन्दी साहित्य संमेलन प्रयाग की ओर से ली जानेवाली 'साहित्य रत्न' परीक्षा आपने सन् 1962 में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। सागर विश्व विद्यालय, सागर से सन् 1965 में आपने प्रथम श्रेणी में बी.एड. की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1967 में विक्रम विश्व विद्यालय, उज्जैन में एम.ए. की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में पास की। सन् 1972 में गुजरात युनिवर्सिटी अहमदाबाद से साहित्य की सर्वोच्च उपाधि पीएच.डी. हाँसिल की।

### 1.5 व्यवसाय :

काबराजी ने कम्बल केन्द्र में खादी ग्रामोद्योग में सुपरवाइजर के पद से अपने व्यवसाय का श्री गणेश किया। तब से लेकर आज तक उनका खादी के प्रति प्रेम जारी है। कुछ अर्थों में गांधीवादी विचारधारा और सादगी का उनके जीवन पर असर रहा है। थोड़े ही समय में यह नौकरी छूट गई। पत्रकारिता का विचार करके इन्दौर गये लेकिन असफल रहे। आखिर उनमें दबा-छिपा शिक्षक उन्हें

शिक्षण जगत पर ले आया। सन् 1955 से सन् 1968 तक मध्य प्रदेश के शिक्षा विभाग के द्वारा संचालित दलौदा, कनघट्टी, मल्हारगढ़, रामपुरा आदि स्थानों के विद्यालयों में हिन्दी शिक्षक के रूप में वे कार्य करते रहे। शिक्षक के व्यवसायमें ही डॉ. किशोर काबरा को सही दिशा मिली तथा अध्यापन के साथ अध्ययन का द्वार भी खुला। सन् 1968में भोपाल रीजन में केन्द्रिय विद्यालयों ने अध्यापकों की माँग की और काबराजी का हिन्दी पी.जी.टी. (पोस्ट ग्रेज्युएट टीचर) में चयन हो गया और वे भारत के मानचेस्टर अहमदाबाद की वसुंधरा पर आए। सन् 1988में नौकरी से त्यागपत्र दे देने के बाद आजतक वे पूर्ण रूप से अपने को हिन्दी भाषा और साहित्य की सेवा में समर्पित रहे हैं।

## 1.6 व्यक्तित्व :

व्यक्तित्व ही कवित्व की पहचान होती है। व्यक्तित्व जीवन से प्राण सामग्री लेकर पनपता है। जीवन और व्यक्तित्व दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। उदात्त जीवन के लिए उदात्त व्यक्तित्व आवश्यक है और उदात्त व्यक्तित्व से उदात्त जीवन का आविर्भाव आविर्भाव होता है। व्यक्तित्व का यह गाढ़ गठबन्धन साहित्य जगत में तो स्पष्ट रूप से द्रष्टिगत होता है। कवि अपने अंतर्मन की अनुभूतियों को ही काव्य में प्रस्तुत करता है। वैयक्तिक अनुभूतियों से ही कवि सच्ची प्रेरणा पाता है। किसी भी कवि का बाह्य पक्ष आकृति, वेशभूषा, रहन-सहन, खान-पान, व्यवहार, हास-परिहास, बोलचाल आदि से संबंध रखता है। मन पर व्यक्तित्व की बड़ी गहरी छाप पड़ती है। काबराजी के व्यक्तित्व को समझना उनके लेखन को समझने में सहायक होगा। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी रुचियाँ और वृत्तियाँ होती हैं, जो किसी-न-किसी प्रकार उनकी लेखनी में प्रकट हो ही जाती हैं। काबराजी का व्यक्तित्व भी एनकेन प्रकारेण उनके काव्यों पर अंकित हुआ है।

### 1.6.1 बाह्य व्यक्तित्व :

डॉ. किशोर काबरा देखने में दूबले-पतले और लम्बे हैं। सुमित्रानन्दन पंत की तरह लंबे बाल उनके विशिष्ट व्यक्तित्व की निशानी हैं। साँवला रंग, गहरी स्वप्निल आँखें, सादगीपूर्ण वेशभूषा और संतोषी जीवन उनके व्यक्तित्व में चार चाँद लगा देते हैं। सादी सी धोती पहने हुए आँखों से सहज मुस्कान बिखेरते हुए जब वे मेरे सामने प्रथम बार आये तो प्रथम द्रष्टि में ही मुझे ऐसा लगता था कि इतने महान और यशस्वी कवि ये तो नहीं होंगे। अनजान और अपरिचित होते हुए भी मेरी सखी के साथ खड़ी मुझे तुरंत आकर पहचान गये। यही उनके सहज और सरल व्यक्तित्व का परिचायक

है। उनकी आवाज में बड़ी मधुरता है। जो हमें सुनने को बाध्य कर देती है। सत्तर वर्ष के बाद भी आज वे बड़ी स्फूर्ति से चलते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि काबराजी का व्यक्तित्व अद्भुत एवं विलक्षण गुणों से सम्पन्न है। वे अत्यंत प्रभावशाली व्यक्तित्व के स्वामी हैं।

### 1.6.2 आंतरिक व्यक्तित्व :

आंतरिक व्यक्तित्व से तात्पर्य उनके स्वभाव व आन्तरिक प्रतिभा से है। जिनसे वे कवि कहलाये। काबराजी का बाह्य व्यक्तित्व जितना प्रभावशाली एवं आकर्षक है, आन्तरिक व्यक्तित्व भी इतना ही समृद्ध एवं असाधारण है। उनके भीतरी और बाहरी व्यक्तित्व में कोई अंतर नहीं है। वे जितने अच्छे कवि हैं, उतने ही अच्छे मनुष्य भी। वे उन लोगों में से नहीं हैं, जो कथनी और करनी में अलग हो। जो साहित्यिक और व्यावहारिक जीवन में अलग-अलग नजर आते हैं। काबराजी भावुकता, निर्भीकता, नम्रताशील, सहिष्णुता, आत्मविश्वास, कर्तव्यनिष्ठा, जिज्ञासा एवं विनोदप्रियता जैसे मानवीय गुणों की साक्षात् प्रतिमा हैं। जो पाठक के हृदय पर भी अमिट छाप छोड़ जाते हैं। आपका स्वभाव मिलनसार है। वे बड़े स्पष्ट वक्ता हैं। व्यावहारिकता उनके व्यक्तित्व का आभूषण है और सच्चरित्रता उनके सरल जीवन का सौष्ठव। ईश्वर के प्रति असीम आस्था उनके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता है। काव्यों का पौराणिक कथानक ही इस बात की साख देते हैं। उनके काव्यों में मनुष्यता के गुणों के वास्तविक चित्र देखने को मिलते हैं। डॉ. घनश्याम अग्रवाल के शब्दों में -

‘किशोर काबरा व्यक्ति नहीं, कविता के मादक संस्पर्श का रोमांच है। जब-जब भी किशोर को सुना, उनकी कविता में मनुष्य और मनुष्यता का स्वर सुनाई दिया है।’<sup>1</sup>

इस प्रकार किशोर काबरा बहु आयामी व्यक्तित्व के धनी हैं। इन्हीं आयामों के माध्यम से यहाँ यह दर्शाने का प्रयास किया गया है कि श्रेष्ठ कवियों की पंक्ति में काबराजी अग्रगण्य हैं। उन्होंने अपने जीवनानुभवों, गहन चिन्तन एवं मनन के प्रभावों को अपनी कृतियों में इस प्रकार बिखेरा है कि उनका व्यक्तित्व अलग से पहचाना जा सकता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि संसार में जितनी महान विभूतियाँ हुई हैं उनमें व्यक्तित्व की महानता जरूर होती है, किन्तु वे सादगी के चाहक, पूजक, अवतार हुआ करते हैं। डॉ. किशोर काबरा भी हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठित कवि हैं, जिन्होंने अपनी लेखनी के स्पर्श से पाठकों को आकृष्ट किया है।

### 1.6.3 साहित्यिक व्यक्तित्व :

एक सफल शिक्षक होने के साथ-साथ आप उच्चकोटि के साहित्यकार भी हैं। उन्होंने अध्ययन एवं अनुभवों को साहित्य में चित्रित किया है। उनका साहित्य भी उनके जीवन की तरह सीधा-सादा एवं मर्मस्पर्शी है। जैसा सरल व्यक्तित्व है, वैसी ही सरल इनकी रचनाएँ हैं। उनके साहित्य में जहाँ प्रेम, सौन्दर्य, मानवतावाद तथा राष्ट्रप्रेम को प्रदर्शित किया गया है, वहाँ वे भारतीय गरिमा को प्रेषित करना भूलें नहीं हैं। भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं भारतीय जीवन दर्शन के प्रति वे बिल्कुल सजग हैं। रामायण, महाभारत और श्रीमद् भागवत पुराण उनकी काव्य सृष्टि के प्रेरणा स्रोत रहे हैं। किन्तु उन्होंने अपनी कृतियों में केवल पौराणिक कथाओं को ही नहीं दोहराया है, न वाल्मीकी और तुलसीदास की तरह संपूर्ण रामकथा का गान किया है, और न ही व्यासजी की तरह संपूर्ण कृष्ण की समर्थता प्रस्तुत की है, बल्कि उन्होंने अपने देशकाल और वातावरण को ध्यान में रखकर पौराणिक कथा को नितांत आधुनिक संदर्भों में प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयास किया है और उनमें वे पूर्णतः सफल हो पाये हैं।

काबराजी हिन्दी साहित्य के वे पारस हैं, जिनके कलात्मक स्पर्श से साहित्य की विभिन्न विधाएँ स्वर्णिम बन गई हैं। ऐसे लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकार के बारे में यथाशक्ति जानकारी देने का मेरा विनम्र प्रयास रहा है।

### 1.7 कृतित्व :

हिन्दी साहित्य जगत के व्यापक क्षेत्र में अपनी राशि को विपुलता से प्रदान करनेवाले कवि काबराजीने साहित्य सृजन की लम्बी यात्रा तय की है और हिन्दी साहित्य को उच्चकोटि की रचनाओं से गौरवान्वित किया है। आप भारतीय संस्कृति के प्रति अटूट श्रद्धा रखनेवाले कवि हैं, जिन्होंने अन्य कवियों से अलग हटकर हिन्दी काव्य साहित्य की परंपरा से पृथक लिखने की प्रवृत्ति प्रदान की है। वे मूलतः कवित्व शक्ति के धनी हैं फिर भी उनके साहित्यरूपी पल्लवित पेड़ से लघुकथाएँ, निबन्ध, मुक्तक, नाटक आदि फलों का रसास्वाद हमें चखने को मिलते हैं।

#### 1.7.1 काबराजी का प्रकाशित साहित्य :

#### 1.7.2 काव्य संग्रह :

- (1) जलते पनघट : बुझते मरघट (1972), अभिनव, भारती, अहमदाबाद
- (2) साले की कृपा (1975), अभिनव भारती, अहमदाबाद



- (3) सारथी, मेरे रथ को लौटा ले (1976), अभिनव भारती, अहमदाबाद
- (4) टूटा हुआ शहर (1983), साहित्य सहकार, दिल्ली
- (5) ऋतुमती है प्यास (1990), चिन्ता प्रकाशन, दिल्ली
- (6) हाशिये की कविताएँ (1995), कर्णावती प्रकाशन, अहमदाबाद
- (7) मैं एक दर्पण हूँ (1996), अविराम प्रकाशन, दिल्ली
- (8) चंदन हो गया हूँ (1979), पश्चिमांचल प्रकाशन, अहमदाबाद

### 1.7.3 प्रबन्ध काव्य :

- (1) परिताप के पाँच क्षण (1979) स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद
- (2) धनुष - भंग (प्रथम संस्करण, (1982), एस. चंद एण्ड कं., नई दिल्ली  
(द्वितीय संस्करण, (1990), एस. चंद एण्ड कं., नई दिल्ली  
(तृतीय संस्करण, (1999), पश्चिमांचल प्रकाशन, अहमदाबाद
- (3) नरो वा कुंजरो वा (1984), साहित्य सहकार, दिल्ली
- (4) उत्तर महाभारत (1990), अभिव्यक्ति प्रकाशन, दिल्ली
- (5) उत्तर रामायण (1994), अविराम प्रकाशन, दिल्ली
- (6) उत्तर भागवत (2004), अविराम प्रकाशन, दिल्ली

### 1.7.4 बाल साहित्य :

- (1) तितली के पंख (1972), अभिनव भारती, अहमदाबाद
- (2) टिमिटिम तारे (1975), अभिनव भारती, अहमदाबाद
- (3) बाल रामायण (प्र.सं., (1977), सद्विचार परिवार, अहमदाबाद  
बाल रामायण (सचित्र द्वि. सं. 1979), श्री कृष्ण जन्म संस्थान, मथुरा  
बाल रामायण (तृ. सं. 1998), पार्श्व प्रकाशन, अहमदाबाद
- (4) बाल कृष्णायन (1979), श्री कृष्ण जन्म संस्थान, मथुरा  
(द्वि. सं. 2002), पार्श्व प्रकाशन, अहमदाबाद
- (5) आज यौवन ने पुकारा देश को (1975), सद्विचार परिवार, अहमदाबाद
- (6) हम सब पंछी (1992), अविराम प्रकाशन, दिल्ली
- (7) सदाचार की कहानियाँ (1993), अरूणोदय प्रकाशन, दिल्ली
- (8) चोर की खोज (1993), अलंकार प्रकाशन, दिल्ली

- (9) खट्टे अंगूर (1994), अलंकार प्रकाशन, दिल्ली
- (10) नीति की कहानियाँ (1994), अलंकार प्रकाशन, दिल्ली
- (11) रोचक कहानियाँ (1994), अरूणोदय प्रकाशन, दिल्ली
- (12) भारत-दर्शन (1995), अभिव्यक्ति प्रकाशन, दिल्ली
- (13) भारत के दर्शनीय स्थल (1998), वरुण प्रकाशन, दिल्ली

### 1.7.5 लघुकथा संग्रह :

- (1) एक चुटकी आसमान (1986), पाण्डुलिपि प्रकाशन, दिल्ली
- (2) एक टुकड़ा जमीन (1991), शान्ति प्रकाशन, रोहतक
- (3) एक टुकड़ा जमीन (गुजराती 1995), लक्ष्मी पुस्तक भंडार, अहमदाबाद
- (4) बूँद-बूँद कड़वा सच (1997), कर्णावती प्रकाशन, अहमदाबाद
- (5) टीपे-टीपे कड़वुं सच (गुजराती, 1997), कर्णावती प्रकाशन, अहमदाबाद

### 1.7.6 सतसई :

- किशोर सतसई (1997), शान्ति प्रकाशन, रोहतक

### 1.7.7 शोध-प्रबंध एवं निबंध :

- (1) रीतिकालीन काव्य में शब्दालङ्कार (1975), जवाहर प्रकाशन, मथुरा
- (2) साहित्यिक निबंध (1994), शान्ति प्रकाशन, रोहतक

### 1.7.8 अनुवाद :

- (1) भागवत प्रसादी (1980), सद्विचार परिवार, अहमदाबाद
- (2) हरि का मार्ग (1980), सद्विचार परिवार, अहमदाबाद
- (3) पाप, प्रायश्चित और प्रभु (1986), सद्विचार परिवार, अहमदाबाद
- (4) विद्यार्थियों और युवकों से (1987), सद्विचार परिवार, अहमदाबाद
- (5) मुक्ता (1993), योगभिक्षु प्रकाशन, अहमदाबाद
- (6) गरजते सागर का मौन (1995), हिन्दी साहित्य अकादमी, गांधीनगर
- (1) नागरिक शास्त्र, कक्षा 8 (1973), गु. रा. शा., गांधीनगर
- (2) भूगोल, कक्षा 4 (1973), " "

- (3) भूगोल, कक्षा 5 (1975), " "
- (4) भूगोल, कक्षा 6 (1977), " "
- (1) वचनामृत बिन्दु (1985), सद्विचार परिवार, अहमदाबाद
- (2) अमृत बिन्दु (1994), " " "
- (3) मतदाता जागृति (1994), " " "
- (4) प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा रोग मुक्ति (2002), प्रायोग ट्रस्ट, अहमदाबाद
- (5) स्वामी कल्याण देव (2003), सद्विचार परिवार, अहमदाबाद

### 1.7.9 संपादन एवं संकलन :

- (1) पँखेरु पश्चिम के (1993), शान्ति प्रकाशन, रोहतक
- (2) बूँद-बूँद घट में (1994), शान्ति प्रकाशन, रोहतक
- (3) पछुवाँ के हस्ताक्षर (1997), शान्ति प्रकाशन, रोहतक
- (4) गवाक्ष (1997), हिन्दी साहित्य परिषद, अहमदाबाद
- (5) राष्ट्रभाषा हिन्दी (1997), गु. प्रा. रा. भा. प्र. समिति, अहमदाबाद

### 1.7.10 संयुक्त सम्पादन :

- (1) गुजरात के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज-1 (1995), हिन्दी साहित्य अकादमी, गांधीनगर
- (2) गुजरात के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज- 2 (1995), हिन्दी साहित्य अकादमी, गांधीनगर
- (3) आधुनिक गुजराती कविताएँ (1996), हिन्दी साहित्य अकादमी, गांधीनगर
- (4) आधुनिक गुजराती एकांकी (1997), हिन्दी साहित्य अकादमी, गांधीनगर
- (5) शिक्षको माटे अध्ययन पोथी, कक्षा, 7 (1972), गु. रा. शा. गांधीनगर
- (6) शिक्षको माटे अध्ययन पोथी, कक्षा, 5 (1978), गु. रा. शा. गांधीनगर
- (7) गुजरात का समकालीन हिन्दी साहित्य (2003), हिन्दी साहित्य परिषद, अहमदाबाद
- (8) राजेन्द्र शाह की कविताएँ (2004), हिन्दी साहित्य अकादमी, गांधीनगर

### 1.7.11 पाठ्य पुस्तकों का सह सम्पादन, लेखन एवं अनुवाद :

- (1) 46 पा. पुस्तकें - एस. चंद एण्ड कं. नई दिल्ली
- (2) 20 पा. पुस्तकें - पा. पु. मं., गांधीनगर
- (3) विद्यापीठ हिन्दी बाल पाठ्यवली, भाग-1, गु. विद्यापीठ, अहमदाबाद

- (4) विद्यापीठ बाल एकांकी - गु. विद्यापीठ, अहमदाबाद
- (5) हिन्दी बाल वाचनमाला, कक्षा-2, गु. रा. शा., गांधीनगर
- (6) हिन्दी कक्षा 5, गु. रा. शा., गांधीनगर
- (7) हिन्दी कक्षा 6, गु. रा. शा., गांधीनगर

### 1.7.12 अन्य सन्दर्भ - साहित्य :

### 1.7.13 डॉ. किशोर काबरा के साहित्य पर किये गए शोध-प्रबंध एवं समीक्षा ग्रंथ :

- (1) डॉ. किशोर काबरा : व्यक्तित्व एवं कृतित्व - डॉ. घनश्याम अग्रवाल
- (2) नरो वा कुंजरो वा : परंपरा और युगबोध - श्रीमती वैजयन्ती
- (3) डॉ. किशोर काबरा के खण्डकाव्य - दीपक पण्ड्या
- (4) आधुनिक मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्यमें डॉ. किशोर काबरा के प्रबंध काव्य - डॉ. सत्यनारायण कलंत्री
- (5) धनुष भंग : एक अनुशीलन - डॉ. घनश्याम अग्रवाल
- (6) डॉ. किशोर काबरा - व्यक्ति और साहित्य : एक अनुशीलन - डॉ. प्रमोद गुप्ता
- (7) डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध : एक अनुशीलन - देवीवाला
- (8) 'धनुष भंग' : एक अध्ययन - वेद व्यास
- (9) किशोर काबरा और उनका काव्य - डॉ. ईश्वरचन्द्र गर्ग

### 1.7.14 इतिहास ग्रंथों और शोध - प्रबंधों में उल्लेख :

- (1) बालगीत : इतिहास साहित्य एवं समीक्षा - निरंकार देव सेवक
- (2) हिन्दी साहित्य का इतिहास, भाग-2, डॉ. आलोक कुमारी रस्तोगी
- (3) हिन्दी के खण्ड काव्य - डॉ. शिव प्रसाद गोयल
- (4) कवि और समीक्षक : आमने - सामने - डॉ. वीरेन्द्रसिंह
- (5) नवगीत और लघुकथा - डॉ. जगदीश शुक्ल
- (6) सत्तरोत्तरी हिन्दी कविता : संवेदना और शिल्प - डॉ. मनोज सोनकर
- (7) दिक्काल सर्जना - डॉ. वीरेन्द्रसिंह
- (8) नव्य प्रबंध - काव्यों में आधुनिक बोध - डॉ. उर्वशी शर्मा

- (9) गुजरात की समकालीन हिन्दी कविता - चन्द्रपालसिंह क्षत्रिय
- (10) स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में महाभारत के पात्रों का चरित्रांकन - डॉ. जे. आर. बोरसे
- (11) हिन्दी कविता : आठवाँ दशक - डॉ. हरदयाल
- (12) गुजरात का स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी - लेखन - डॉ. रघुवीर चौधरी / डॉ. आलोक गुप्त
- (13) हिन्दी साहित्य का वस्तुपरक इतिहास (भाग-2) - डॉ. रामप्रसाद मिश्र
- (14) हिन्दी स्वातंत्र्योत्तर मिथकीय खंड काव्य - डॉ. कविता शर्मा
- (15) Reference India Part-1 Refaciment International, Delhi
- (16) Who is who? - Hindi Academy, New Delhi
- (17) गुजरात के हिन्दी साहित्यकार : परिचय पुस्तिका - डॉ. भूपतिराम साकरिया
- (18) शरतल्य - मुकुंदन
- (19) साठोत्तरी काव्य के पौराणिक पुनराख्यान - डॉ. सजन पाण्डेय
- (20) गुजरात का आधुनिक हिन्दी काव्य - डॉ. सुनीता चन्द्रात्रे
- (21) गुजरात के साठोत्तरी हिन्दी साहित्यकार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व - डॉ. इंदिरा अग्रवाल
- (22) साहित्य और साहित्येत्तर : सूत्र - डॉ. वीरेन्द्रसिंह
- (23) लघुकथा : पहचान और परख - सुवर्णा सरवटे
- (24) गुजरात के समकालीन हिन्दी कवि - डॉ. गोवर्द्धन शर्मा
- (25) गुजरात की समकालीन हिन्दी कविता - डॉ. अम्बाशंकर नागर
- (26) लघुकथा : चिन्तन और विश्लेषण - डॉ. अमरनाथ चौधरी 'अब्ज'
- (27) आधुनिक नव्य प्रबंध काव्यों में आधुनिक बोध - डॉ. उर्वशी शर्मा
- (28) Asia Pacific who's who - Ritaimento International
- (29) गुजरात का समकालीन हिन्दी साहित्य - डॉ. नागर एवं अन्य
- (30) हिन्दी साहित्यकार संदर्भ कोश भाग-2

इसके अतिरिक्त (करीब सौ के आसपास) अन्य लेखकों के सहयोगी संकलन एवं ग्रंथों में डॉ. किशोर काबरा की विभिन्न रचनाएँ, सम्मतिायँ, भूमिकाएँ आदि प्रकाशित हैं।

### 1.7.15 अन्य उपलब्धियाँ :

#### 1.7.15.1 सम्मानोपाधियाँ / मानद उपाधियाँ :

- (1) अखिल भारतीय हिन्दी प्रचार समिति से 'साहित्य मणि' (1973)

- (2) अन्तर्राष्ट्रीय सम्मानोपाधि महा विद्यालय, देवरिया से 'साहित्य कलाश्री' (1991)
- (3) अखिल भारतीय साहित्य अभिनन्दन समिति, मथुरा से 'राष्ट्रभाषा आचार्य' (1995)
- (4) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से 'विद्या वाचस्पति' (1995)
- (5) साहित्यिक सांस्कृतिक कला संगम अकादमी, प्रतापगढ़ से 'पत्रकार श्री' (1996)
- (6) अखिल भारतीय साहित्य कला मंच, चाँदपुर से 'साहित्य श्री' (1996)
- (7) आध्यात्मिक साहित्यिक संस्था, रामपुर से 'काव्य प्रज्ञ' (2002)
- (8) खानकाह सूफी दीदारशाह चिश्ती, कल्याण से 'भारत साहित्य गौरव' (2005)

### 1.7.15.2 पुरस्कार एवं सम्मान :

आपकी अधिकांश कृतियाँ पुरस्कृत हुई हैं। प्रमुखतः इस प्रकार हैं।

#### → कृति गत :

- (1) 'परिताप के पाँच क्षण' विशेष पुरस्कार, उ. प्र. हि. सं. लखनऊ (1980) 2500/- ₹.
- (2) 'नरो वा कुंजरो वा' - महाकवि राष्ट्रीय आत्मा पुरस्कार, कानपुर (1987) 2111/- ₹.
- (3) 'उत्तर महाभारत' - अर्चना पुरस्कार, कोलकाता (1992) 5000/- ₹.
- (4) 'उत्तर रामायण' - मारवाड़ी सम्मेलन पुरस्कार, मुम्बई (1996) 5000/- ₹.
- (5) 'खट्टे अंगूर' - एन.सी.ई.आर.टी. पुरस्कृत, नई दिल्ली (1997) 5000/- ₹.

#### → समग्र :

- (1) 'कादम्बिनी' नवगीत पुरस्कार दिल्ली (1976) 1000/- ₹. नकद
- (2) सार्वजनिक सम्मान, माहेश्वरी संघ, मन्दसौर (1978)
- (3) सारस्वत सम्मान, राष्ट्रीय हिन्दी प्रचार संस्थान, इलाहाबाद (1978)
- (4) लघुकथा विशेष पुरस्कार, प्रज्ञा, साँवला, हरियाणा (1982)
- (5) लघुकथा पुरस्कार, युवक साहित्यकार समिति, फैफाना (1982)
- (6) लघुकथा पुरस्कार, 'रानी माँ' वार्षिकी (1982)
- (7) लघुकथा सम्मान, युवक साहित्यकार समिति, फैफाना (1983)
- (8) विशेष सम्मान, केन्द्रीय विद्यालय, हरिद्वार (1988)
- (9) जयशंकर प्रसाद सम्मान, गु. सा. संगम, अहमदाबाद (1994)
- (10) सौहार्द पुरस्कार, उ. प. हि. संस्थान, लखनऊ (1998) 15000/- ₹. नकद

- (11) हिन्दी गरीमा सम्मान, गुजरात हिन्दी विद्यापीठ, अहमदाबाद (1999)
- (12) हिन्दी सेवी पुरस्कार हिन्दी साहित्य अकादमी, गुजरात राज्य (1999) 11000/- रु.
- (13) पं. दीन दयाल उपाध्याय पुरस्कार, पुस्तकालय, छोटीखाटू (1999) 11000/- रु.
- (14) लोकतेज हिन्दी साहित्य सेवी सम्मान, सुरत (2000) 5000/- रु.
- (15) हिन्दी कला मंच, अति विशिष्ट सम्मान, बिजनोर (1994)
- (16) नागरिक सम्मान, गु. हि. समाज विकास परिषद, अहमदाबाद (2000)
- (17) विशिष्ट सम्मान, रा. प्रा. चि. एवं योग सम्मेलन, वडोदरा (2002)
- (18) लेखकीय सम्मान, रा. प्रा. चि. एवं योग समिति, अहमदाबाद (2002)
- (19) सार्वजनिक प्रशस्ति, मित्रफुल, प्रयाग (2002)
- (20) सारस्वती समभ्यर्चना, भारती परिषद, प्रयाग (2004)
- (21) मिश्रबन्धु साहित्य सम्मान, इटौजा, लखनऊ (2004)
- (22) सारस्वत सम्मान, पर्यटन लेखक संघ, बीकानेर (2005)
- (23) स्मृति सम्मान, टैगोर पब्लिक स्कूल, जयपुर (2005)
- (24) 'स्व. श्री हरि ठाकुर स्मृति सम्मान' पुष्पगंधा प्रकाशन, वर्धा (2006)

इसके अतिरिक्त 'शब्द चित्र विद्या' उनका मौलिक प्रदान है। विविध पत्र-पत्रिकाओं में भी आपके अभ्यास लेख, समीक्षात्मक टीप्पणियाँ, ललित निबन्ध, साहित्यिक एवं शोधपरक लेख भी प्रकट होते रहते हैं। आप 'भाषा सेतु' त्रैमासिक के संपादक हैं। लेखन संपादन के द्वारा आप हिन्दी शिक्षण के प्रसारणों में बराबर संलग्न रहते हैं।

लेखन के साथ-साथ उनकी वाणी में भी अद्भूत क्षमता है। कवि सम्मेलनों में भी वे लोकप्रियता और प्रतिष्ठा के अधिकारी बनते हैं। उनकी मंचस्थ प्रतिभा से प्रभावित होकर घनश्याम अग्रवालजी लिखते हैं —

“काबराजी कवि मंच के सफल एवं जन-मन को मुग्ध करनेवाले प्रभावशाली कवि हैं कारण कि उनके कण्ठ पर उनकी कविताएँ आसमान में उड़ते हुए पंछी की तरह तैरती हैं। पूरे हाव-भाव के साथ उनकी कविताएँ उनके कण्ठ से सुनना काव्य का आत्मिक रसास्वादन करना है”<sup>2</sup>



## 1.8 प्रबन्ध प्रेरणा :

आपको प्रबन्ध काव्य लिखने की प्रेरणा साहित्यिक मित्र प्रो. भगवानदास जैन से प्राप्त हुई। एक दिन सहज भाव से जैन ने कहा - ‘काबराजी इन छोटी-मोटी काव्य कृतियों से आप चर्चित हो सकते हैं, पर प्रसिद्ध तो प्रबन्ध काव्यों से ही होंगे। अब आप प्रबन्ध काव्य लिखिए।<sup>3</sup>’ उनकी यह बात आपके भीतर तक पहुँची और आज वास्तव में प्रबन्ध काव्यों ने आपको प्रसिद्धि दिलायी।

## 1.9 उपसंहार :

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि डॉ. किशोर काबरा का व्यक्तित्व और उनकी सर्जनात्मकता किसी भी पाठक को चमत्कृत और अभिभूत करने के लिए पर्याप्त है। उनकी रचनाएँ आधुनिक समय को आर-पार देखने में समर्थ हैं। छंदोबद्ध और अछंदस-दोनों प्रकार की कविता लिखने में वे सिद्ध हस्त हैं। उनका साहित्य स्वतः ही उनके भारत-भूमि को समर्पित व्यक्तित्व को प्रस्तुत करता है। घनश्याम अग्रवाल के शब्दों में कहे तो “निर्लिप्त, तटस्थ भाव के धनी काबराजी भारतीय सभ्यता और संस्कृति के द्वारा वर्तमान युग के विशृंखल मानस को सुसंस्कृत एवं स्वस्थ बनाने में लगे हैं। यही उनके साहित्य-सृजन का लक्ष्य है, यही श्रेष्ठ भी और प्रेय भी।”<sup>4</sup>

## 1.10 संदर्भ - सूची

- 1 डॉ. किशोर काबरा : व्यक्तित्व और कृतित्व - ले. डॉ. घनश्याम अग्रवाल - विषय प्रवेश
- 2 'धनुष भंग : एक अनुशीलन' - ले. डॉ. घनश्याम अग्रवाल - पृष्ठ - 14
- 3 कवि से साक्षात्कार
- 4 'धनुषभंग : एक अनुशीलन, ले. डॉ. घनश्याम अग्रवाल, पृष्ठ' - 14

## द्वितीय अध्याय

विभिन्नकाल में नारी की स्थिति :  
(ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में)

## द्वितीय अध्याय : विभिन्नकाल में नारी की स्थिति : (ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में)

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 प्राचीन काल में नारी
- 2.3 महाकाव्य-काल में नारी
  - 2.3.1 रामायण-काल में नारी
  - 2.3.2 महाभारत-काल में नारी
- 2.4 स्मृतिकाल में नारी
- 2.5 मध्यकाल में नारी
- 2.6 आधुनिक काल में नारी
- 2.7 उपसंहार
- 2.8 संदर्भ-सूची

## विभिन्नकाल में नारी की स्थिति : (ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में)

### 2.1 प्रस्तावना :

भारतीय संस्कृति में नारी की महत्ता को सदैव उच्च स्थान दिया गया है। विभिन्न धर्मग्रंथों में भी नारी को गृहस्थाश्रम का मूलाधार माना गया है। इसी कारण भारतीय समाज में नारी एक गौरवपूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित है। इसके बिना मनुष्य का जीवन अपूर्ण है। वह विधाता की निखिल सृष्टि में चेतन जगत की सबसे रहस्यमयी प्राणी और मानव समाज की आधारशिला है। नारी के बिना किसी मानव-समाज की कल्पना नहीं हो सकती। आदि साहित्य से लेकर आधुनिककालीन साहित्य में नारी के त्याग, बलिदान, शौर्य, ममत्व, कष्ट, सहिष्णुता, उदारता एवं कर्मठ जीवन का चित्रण मिलता है। सृष्टि के प्रारंभ से ही नारी और पुरुष के द्रढ़ परस्पर संबंधों की अटूट शृंखला चली आ रही है। वैसे नारी और पुरुष दोनों सृष्टि निर्माण के लिए एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों एक दूसरे के बिना रह नहीं सकते। 'जो समाज पुरुष को साध्य और स्त्री को साधन समझता है, उसका कभी पूर्ण विकास नहीं हो सकता। क्योंकि वह नारी के सहयोग से वंचित रह जायेगा और नारी के योगदान के बिना मानव का कोई भी कार्य पूर्ण नहीं हो सकता'<sup>1</sup> नारी समाज जीवन का उतना ही महत्वपूर्ण अंश है, जितना कि पुरुष। अतः उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। प्राचीन काल से भारतीय समाज में नारी का सम्मान एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत हुआ है, जो मर्यादा के प्रतीक के रूप में सदैव पूजनीय बना रहा। 'हमारे यहाँ नारी को आदि शक्ति के नाना रूपों में देखने की अत्यंत प्राचीन परंपरा रही है।'<sup>2</sup> नारी के प्रति समाज की सहज निष्ठा और श्रद्धा हर युग में देखी गयी। नारी युग युगान्तर से एक ऐसा आदेशात्मक संदेश लेकर आयी है, जिसके कारण परिवार और समुदाय में सदा समृद्धि की कामना की गई है। भारतीय संस्कृति में नारी के आदर्श और गौरवशाली चरित्र का विशद् विवेचन मिलता है। चाहे वह धार्मिक ग्रंथ हो या लौकिक। सर्वत्र उसके मर्यादित स्वरूप के कारण उसे वंदनीय एवं पूजनीय माना गया है। मेयर ने लिखा है - 'किसान और नागरिक के बिना काव्य का काम चल सकता है, किन्तु उसमें से नारी को हटाते ही उसका जीवन नष्ट हो जाता है।'<sup>3</sup>

नारी के प्रति यह आदर और सम्मान हमारी संस्कृति की अनन्यतम विशेषता है। नारी को यह सम्मान और आदर्श ऐसे ही नहीं प्राप्त हुआ है। अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए मर्यादित जीवन

जीकर जो आदर्श उसने स्थापित किये यह मान-सम्मान उसीका परिणाम है। अतः समाज और संस्कृति के विकास में नारी की भूमिका को विस्मृत नहीं किया जा सकता। वैसे नारी की स्थिति हर युग में परिवर्तित होती रही है। उसकी अवस्था में क्रमशः वैदिक युग से लेकर आधुनिककालीन साहित्य के विभिन्न रूपों में पुरुष और स्त्री का चित्रण समान रूप से होता आ रहा है, किन्तु प्रत्येक युग में वातावरण के प्रभाव के कारण चित्रण द्रष्टि में पर्याप्त अन्तर परिलक्षित होता है। साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति काव्यों में भी नारी जीवन का चित्रण विविध प्रकार से उपलब्ध है।

हमारा सम्बन्ध 'विभिन्न काल में नारी की स्थिति' से है। अतः हम यहाँ पौराणिककाल से लेकर आधुनिककाल तक के विभिन्न कालों में नारी की स्थिति की चर्चा करेंगे।

## 2.2 प्राचीन काल में नारी :

अतीत का यह युग वैदिक युग से आरंभ होता है। प्राचीन काल में अधिकतर समाजों में नारी की स्थिति दयनीय थी, किन्तु भारतवर्ष में 'प्राचीन काल स्त्रियों की द्रष्टि से स्वर्णिम युग माना जाता है'<sup>4</sup> वैदिक ऋषियों ने नर-नारी के युगल रूप को आदि पुरुष और आदि शक्ति के रूप में माना था। वैदिक साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि उस युग में नारी का बड़ा समादर था। उस काल में स्त्रियों की स्थिति पुरुषों के समकक्ष थी और उन्हें पुरुषों की भाँति जीवन के हरक्षेत्र में समान अधिकार प्राप्त था। उस समय की नारी अध्ययन, मनन, चिन्तन तथा साहित्य सृजन करने में स्वतंत्र थी। उस समय नारियाँ यज्ञोपवीत भी धारण करती थी और सन्ध्या वन्दन भी करती थी। लड़कियों के भी उपनयन संस्कार होते थे और वे भी ब्रह्मचर्याश्रम में लड़कों के समान ही शिक्षा प्राप्त करती थी। स्त्रियों को उस समय लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों विषयों की शिक्षा दी जाती थी। स्त्रियों की शिक्षा की उत्तम व्यवस्था थी। कन्याओं को भी पुत्रों के समान ही उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था, किन्तु इतना अवश्य है कि उन्हें यह शिक्षा अपने भ्राता, भगीनी और उस प्रकार के अन्य गुरुजनों से ही प्राप्त करनी पड़ती थी। इस युग में नारियाँ वेदों का अध्ययन करती थी, कविताएँ बनाती थी और त्याग और तपस्या से अपना जीवन व्यतित करती थी। 'कुछ नारियाँ तो सैनिक शिक्षा भी प्राप्त करती थी और दूत बनकर दैत्य-कर्म भी कुशलतापूर्वक करती थी।'<sup>5</sup>

इस समय वेदों के साथ-साथ शस्त्र विद्या भी कन्या शिक्षा का एक विषय था। पति के साथ

स्त्रियाँ भी युद्ध में जाती थी और उनके रथ का संचालन करती थी। वैदिक साहित्य में कुछ ऐसे भी संदर्भ हैं कि जिससे ज्ञात होता है कि नारियों ने युद्ध क्षेत्र में पति के साथ सैनिक की भूमिका निभायी थी। प्रतिभाजी और संगीताजी के लेख से उद्धृत 'राजा खेला की पत्नी विस्याला इसका उदाहरण है। विस्याला ने युद्ध में अपना एक पैर खो दिया था जहाँ बाद में अश्वनि ने लोहे का पैर लगाया था मुद्गल की पत्नी मुद्गालिनी एक अनन्य विरांगना थी, जिसने अपने पति का रथ हाँका था। उसे यह श्रेय प्राप्त है कि उसने अपने पति के शत्रुओं को पराजित किया।'<sup>6</sup> अन्य ऐसे कई उदाहरण हैं जो महिलाओं की शूरीरता से संबंधित हैं।

वेदों में सुक्तों की रचना करनेवाली अनेक स्त्रियों का वर्णन मिलता है। जुहू, अपाला, घोषा, लोपामुद्रा, उर्वशी, विश्ववरा, लीलावती ऐसी विदुषी भी थी। लीलावती उनमें से एक गणितज्ञ थी। ऐसी मेधावी स्त्रियों के लिए ही कहा गया है —

‘यत्र नार्यस्तु पुज्यन्ते

रमन्ते तत्र देवताः।’<sup>7</sup>

ऋग्वेदकाल में कहीं भी पुत्री जन्म की उपेक्षा नहीं की जाती थी। नारी मुक्त वातावरणमें जीवन व्यतीत करती थी। युवाजन एक-दूसरे से प्रणय निवेदन कर सकते थे। इस युग में स्त्रियाँ धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, प्रशासनात्मक कार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी।

उस समय का समाज पितृसत्ता प्रधान था। आर्यलोग नारियों का बड़ा सम्मान करते थे। लड़कियों का विवाह युवावस्था में होता था और बालविवाह का प्रचलन नहीं था। लड़कियों को अपना जीवन साथी चुनने की पूर्णतया स्वतंत्रता थी। विवाह संस्कार पूर्ण हो जाने के बाद वधू पितागृह से पति गृह जाती थी। विधवाओं के पुनर्विवाह के संबंध में भी प्रतिबंध नहीं था। वह अपनी इच्छानुसार देव या अन्य पुरुष से विवाह कर सकती थी। वह किन्हीं परिस्थिति में सती भी हो सकती थी, पर सतीप्रथा का प्रचलन नहीं था। निःसंतान स्त्रियों को ‘नियोग’ द्वारा सन्तान प्राप्त करने की स्वतन्त्रता थी।

इस युग में पत्नी के रूप में स्त्री की स्थिति काफी सुदृढ़ थी। पत्नी को पति का आधा अंग माना जाता था। उस आदि शक्ति की पुनरावृत्ति आज भी सीताराम, राधेश्याम, उमाशंकर आदि नामों में की जा रही है। धार्मिक अनुष्ठानों में पत्नी का होना गृहस्थ के लिए परम आवश्यक था। शुषमा शुक्ला ने ‘वैदिक वाङ्मय में नारी’ में लिखा है — ‘शतपथ ब्राह्मण में अकेले पति को



स्वर्गलोक की भी आकांक्षा न करने को कहा गया है। वाजपेयी यज्ञ में यज्ञीय यूप के सहारे सीढ़ी पर चढ़ता हुआ पति पत्नि से कहता है कि 'आ-आ हम दोनों साथ-साथ स्वर्गारोहण करें'<sup>8</sup> नारी के अभाव में नर को यज्ञाधिकारी ही नहीं माना जाता था। रामायण में भी अश्वमेध यज्ञ के समय सीता की अनुपस्थिति में उसकी मूर्ति को रखा जाने का उल्लेख मिलता है। यज्ञ याग, राजदरबार, समारोह में नारी का स्थान पुरुषों के समान माना जाता था। 'गृहस्वामिनी की प्रसन्नता में परिवार की प्रसन्नता अंतर्भूत है और उसके दुःख में समग्र परिवार के दुःखी होने की संभावना होती है।'<sup>9</sup> शकुंतला राव शास्त्री के मत से 'इस युग में पति तथा पत्नी समाज की एक ईकाई माने जाते थे और उसके संयुक्त रूप को दम्पति की संज्ञा से विभूषित किया जाता था।'<sup>10</sup>

वैदिक साहित्य में पति-पत्नी के पारस्परिक संबंधों का भी उल्लेख मिलता है। पति के कर्तव्यों का उल्लेख करते हुए कहा है कि पति को पत्नी का समादर करना चाहिए। पति के कर्तव्यों की भाँति पत्नी के कर्तव्यों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। 'उस युग में पति परायणा और संतति ही पत्नी का मुख्य धर्म माना जाता था। उस समय स्त्री से यह आशा की जाती थी कि वह कम-से-कम दस वीर पुत्रों की माता बनें'<sup>11</sup>

अथर्ववेद के एक श्लोक के अनुसार वैदिक युग में समस्त कार्य नारी के ही संरक्षण में संपन्न होते थे। अतः वह परिवार में साम्राज्ञी बनकर रहती थी। धरों को 'पत्नीनां सदनम्' कहा जाता था। ऋग्वेद काल में एक विवाह तथा बहु विवाह दोनों ही प्रकार के विवाहों का उल्लेख मिलता है। उस समय राजाओं एवम् ऋषिओं को कई पत्नियाँ होने का उल्लेख पाया जाता है। उस युग में पति की आज्ञा के अधिन रहने पर भी पत्नी का स्थान अत्यंत प्रतिष्ठित था। पत्नी का सबसे बड़ा दायित्व पति के सहयोग से गृहस्थ धर्म का निर्वाह करना था। उस समय की पत्नी वास्तविक अर्थों में पति की सहधर्मचारिणी थी। पारिवारिक कर्तव्यों में गो-दोहन, (वस्त्र) सिलने एवं (चट्टाई) बुनने की गणना की गई है।'<sup>12</sup> वैदिक साहित्य में अन्तर्जातीय विवाह के यहाँ तक की आर्य और शुद्रा के विवाह के उदाहरण मिलते हैं। वर के गुणों में से कुल और विद्या पर सर्वाधिक बल दिया गया है। मनु का विचार है कि कन्या भले ही जीवन पर्यन्त पिता के घर में रह जाये किन्तु गुणहीन वर से उसका विवाह नहीं होना चाहिए।'<sup>13</sup> वंश, विस्तार, तर्पण, पिण्डदान आदि में लड़कों का महत्व होने के कारण लड़कियों की अपेक्षा लड़कों की स्थिति अच्छी थी पर लड़कियों के साथ बुरे व्यवहार का उल्लेख नहीं मिलता। लड़कियाँ गृहकार्य में निपूण होती थी और गृहकार्य शिक्षा में बाधारूप नहीं था। डॉ. देसाई ने वैदिक कालीन नारी के लिए प्रयुक्त होनेवाले शब्दों के बारे में लिखा है जिस पर द्रष्टे

डालने से तत्कालिन समाज में नारी की स्थिति स्पष्ट होती है।

- (1) निरुक्त में कहा गया है - “मानयन्ति एनाः पुरुषाः” पुरुष उसका सम्मान करते हैं अतः उसे ‘मेना’ कहा गया है।
- (2) नारी नर की सहयोगिनी है, अतः उसे ‘घोषा’ कहते हैं।
- (3) वह सौन्दर्य को बुनती या बिखेरती है ‘जयति सौन्दर्यम्’ अतः उसे ‘वामा’ कहा गया है।
- (4) नारी पुरुष के मन को आह्लादित करती है अतः वह प्रमदा है।
- (5) वह काम्या होने से ‘कामिनी’ रम्या होने से ‘रमणी’ सन्तति उत्पन्न करने के कारण ‘जननी’, ‘जाया’ और तेजस्विनी होने के कारण ‘भामा’ कहलाती है।
- (6) माता, पत्नी, भगिनी, पुत्री आदि सभी रूपों में पूजनीय होने से उसे ‘महिला’ कहा गया है।
- (7) पति द्वारा उसका भरणपोषण होता है, अतः वह ‘भार्या’ कहलाती है।<sup>14</sup>

अनेकानेक ग्रंथों, प्रसंगों, संदर्भों एवं लेखों के अध्ययन के दौरान अंततः हम कह सकते हैं कि वैदिककालमें पुत्री, पत्नी, माता आदि रूपों में स्त्री की भूमिका सम्माननीय थी और वह सार्वजनिक कार्यों, शिक्षा, धार्मिक अनुष्ठानों एवं कलाओं में समान स्थान रखती थी। एक ओर जहाँ विश्व की प्राचीन संस्कृतियों में नारी सम्बन्धी विचारों में संकीर्णता के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं, वहीं दूसरी ओर भारतीय परम्परा की प्रारम्भिक शताब्दियों में नारी की मर्यादा एवं प्रतिष्ठा के प्रति संतुलित एवं सहिष्णु दृष्टिकोण पाया जाता है। वैदिक नारी एक ऐसे सक्षम व्यक्तित्व के रूप में उभरती है, जिसे अपने जीवन का रास्ता बनाने की पर्याप्त स्वतंत्रता थी।

## 2.3 महाकाव्य-काल में नारी :

‘रामायण’ और ‘महाभारत’ भारतीय साहित्य के सर्वोच्च शिखर हैं। इन शिखरों से निकलकर बहनेवाले साहित्य के स्रोत ने भारतीय जन-जीवन को पुष्ट किया है। इन ग्रंथों को भारतीय मनीषा एवं जन-जीवन में भी बड़ा महत्व है। वाल्मिकि रामायण में हमें भारतीय संस्कृति, समाज, राजनीति, धर्म आदि का सर्वांगीण वर्णन मिलता है। अतः हम यहाँ रामायणकालिन नारी की स्थिति पर विचार करेंगे।

### 2.3.1 रामायणकाल में नारी :

इस काल में नारी को सम्मान दिया जाता था। पुरुषों के साथ-साथ वह भी शिक्षा प्राप्त कर सकती थी। विवाह से पूर्व ही उन्हें वैदिक कर्मकांडों, शस्त्रों, स्मृतियों एवं पुराणों की शिक्षा दी

जाती थी। कैकेयी, कौशल्या, तारा, सीता, अनसूया आदि नारियाँ शास्त्रज्ञान में निपूण थी। वाल्मीकि रामायण का अनुशीलन करने से विदित होता है कि उस समय कन्या का जन्म उत्तरदायित्वपूर्ण होने के कारण अवांछनिय माना जाता था और पुत्र प्राप्ति आनंद का विषय मानी जाती थी। फिर भी कन्या का जन्म होने को बाद उसे प्रेमपूर्वक पाला जाता था। कन्याओं को विशेषतः क्षत्रिय कन्याओं को नृत्य, संगीत, चित्रकला, आदि की तथा शस्त्रों एवं धनुर्विद्या जैसी कलाओं की शिक्षा भी प्रदान की जाती थी। इस युग की स्त्री शिक्षा के कुछ विशिष्ट आदर्श और उद्देश्य थे। कन्या शिक्षा का प्रथम उद्देश्य था उन्हें भावी गृहस्थ जीवन में आनेवाली जटिलताओं एवं समस्याओं का सामना करने के लिए कटिबद्ध करना। इस प्रकार की शिक्षा सीता जैसी राजकन्याओं को भी अल्पवय से दी जाती थी। छोटी-सी अवस्था में सीता को यह चेतावनी दी गई थी कि 'उन्हें अपने जीवन का अधिकांश भाग कष्टपूर्ण वन में व्यतीत करना होगा।' <sup>15</sup> अपने विषय में की गई भविष्य-वाणियों से प्रेरित होकर सीता ने स्वयं को संघर्षपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए मानसिक रूप से तैयार कर लिया था।

इस युग की शिक्षा के बारे में अल्तेकरजी का कथन है कि - 'रामायण युगीन शिक्षा का एक उद्देश्य स्त्री-विशेष को सभ्य समाज की एक सभ्य-नागरिक के रूप में प्रस्तुत करना था।' <sup>16</sup> इस युग में विवाह प्रायः स्वयंवरों के द्वारा माता-पिता की आज्ञा से होता था। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण, प्रजापत्य, असूर, गंधर्व, राक्षस और पैशाच आदि पद्धतियाँ भी विवाह के क्षेत्र में प्रचलित थी। गृहस्थ जीवन में पत्नि का स्थान पति के समकक्ष ही समझा जाता था। इस काल में कन्याएँ अपने पारिवारिक एवं सामाजिक दोनों प्रकार के कर्तव्यों के प्रति जागरूक थी। इस युग में पातिव्रत धर्म का विशेष महत्व था। स्त्रियाँ पति को ही देवता और परमेश्वर मानती थी। इस युग में एक पति की अनेक पत्नियाँ होती थी और पातिव्रत धर्म नारी के लिए सर्वोच्च माना जाता था। जिसके लिए सीता का चरित्र आदर्श एवं अनुकरणीय रहा है। इस विशाल भारतमें ऐसी कोई स्त्री नहीं होगी जिसने सीता की दुःखभरी कथा न सुनी हो। उस समय वह भावना द्रढ़िभूत थी कि पति की आराधना से ही स्वर्ग प्राप्ति होती है। कौशल्या ने भी वन प्रस्थान करते समय सीता को यही उपदेश दिया था —

“नातन्त्री वाद्यते वीणा नाचक्रो विद्यते रथः ।

ना पतिः सुख मेद्यते या स्यादपि शतात्मजा ॥” <sup>17</sup>

रामायण में स्त्री का महत्व पुत्रवती होने के कारण ही माना जाता था। पुत्रवती एवं सदाचारी

नारियाँ समाज में सम्मानित होती थी। नारी की चरम परिणति मातृत्व में ही मानी जाती थी। 'रामायण' में वाल्मीकि ने नारी के इस रूप की प्रतिष्ठा कायम रखी है। उनका कथन है - 'नारीत्व की चरम परिणति मातृरूप में होती है। मनुष्य के चरित्र निर्माण की सूत्रधारिणी माता है, पिता नहीं।' <sup>18</sup> वंध्यत्व नारी के लिए दुर्भाग्य एवं शाप माना जाता था। उसी तरह वैधव्य भी नारी के लिए घोर विपत्तिमय था। इसकाल में विधवा-विवाह पर प्रतिबंध लगना आरंभ हो गया था। फिर भी विधवाओं का आदर होता था। दशरथ की रानियाँ सम्मानपूर्वक अपना जीवन व्यतित करती थी। कुछ स्त्रियाँ सती भी होती थी, किन्तु सती होना अपरिहार्य नहीं था। राजा दशरथ की एक भी रानी सती नहीं हुई थी। उसी प्रकार तारा तथा मंदोदरी भी अपने-अपने पति के साथ सती नहीं हुई थी।

रामायणकाल में स्त्री पुरुषों के सम्बन्ध विषयक नीति-निर्मित हो गई थी। पुत्री, पुत्र-वधू, भ्रातृ-वधू एवं गुरु-पत्नी आदि पर कुद्रष्टि रखना घोर पाप माना जाता था। पर स्त्री को "विषाक्त भोजन" की संज्ञा प्रदान की जाती थी। धर्म, अर्थ और काम तीनों का सन्तुलन ही इसकाल के जीवन का आदर्श था। इस युग में स्त्रियों को पुरुष समाज से पृथक् रखने का नियम सर्वमान्य हो चुका था। स्त्रियाँ केवल विपत्तिकाल, युद्धों, स्वयंवरों, यज्ञों एवं विवाहों में ही जन साधारण के समक्ष उपस्थित होती थी। पर सामाजिक कार्य में स्त्रियों को प्रथम स्थान दिया जाता था। सार्वजनिक उत्सवों में भी वे निरंतर भाग लेती थी। इस युग में दासी-प्रथा, दहेज प्रथा तथा पर्दाप्रथा का भी उल्लेख मिलता है।

वाल्मीकि रामायण में जहाँ नारी की वन्दना मिलती है, वहीं निन्दा भी उपलब्ध है। दुराग्रह, अविवेकपूर्ण हठ, इर्ष्या, कठोरता, कटुवाणी, अविवेक, यौन प्रवृत्ति, पर-पुरुष आकर्षण, निराशा, अस्थिरता एवं उत्सुकता आदि स्त्री सहज दोषों का भी वर्णन पाया जाता है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि इस समाज ने भारतीय संस्कृति और जनजीवन को प्रभावित किया है। रामायणकालीन समाज ने भारतीय नारी को पवित्र आदर्शों पर चलने और यथार्थ की भूमि पर फूँक-फूँककर चरण रखने की ओर इंगित किया है।

### 2.3.2 महाभारतकाल में नारी :

महाभारत एक अद्वितीय साहित्यिक ग्रंथ है। यह भारतीय संस्कृति की आन है। यह ग्रंथ काव्य, धर्म, नीति एवं समाज-ज्ञान के सिद्धांत का आदि ज्ञानकोश है। इसमें भारतीय नारी का बड़ा ही यथार्थ एवं प्रभावपूर्ण चित्रण हुआ है।

इस काल में कन्याओं का बड़ा सम्मान था। स्त्रियों को उच्च कोटि की शिक्षा दी जाती थी। कुछ नारियाँ तो अपने ज्ञान, विद्वता एवं तर्कविद्या के लिए प्रसिद्ध थी। उस काल में शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य वर्तमान युग की भाँति ही चरित्र निर्माण करना था। पुत्र न होने पर पुत्री ही पिता की संपत्ति एवं साम्राज्य की अधिकारीणी होती थी। उसकाल की कन्याएँ शर्मिष्ठा की भाँति कुल के कल्याण के लिए बड़े से बड़ा त्याग करने के लिए भी तत्पर रहती थी। युवतियों को अपना पति चुनने का अधिकार था, फिर भी इस बात में परिवार का भी दायित्व था। प्रायः यह रिवाज था कि कन्या के पति चुन लेने के बाद पिता की स्विकृति नाममात्र की होती थी। उस काल में आठों प्रकार के विवाह होते थे, किन्तु असूर, राक्षस एवं पैशाच विवाह निन्दनीय तथा स्वयंवर आदि सम्माननीय माने जाते थे।

अपहरण की गई कन्या का सैद्धान्तिक तौर पर पुनःविवाह सम्भव था। इसीलिये अंबा को भीष्म ने अपहरण करने के बाद भी छोड़ दिया था।<sup>19</sup> परंतु व्यवहार में ऐसी अपहृता नारी से कोई भी विवाह करने को राजी नहीं होता था। इसीलिए अम्बा को शाल्व ने विवाह से इन्कार कर दिया होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि शाल्व ने भीष्म के भय से अम्बा का अस्वीकार किया होगा। महाभारत के अनुसार विवाह धर्म के अनिवार्य अंग के रूप में माना जाता था। विवाह का महत्व उपनयन संस्कार के समान था। अतः शास्त्रीय संस्कारों में भी विवाह को ही सबसे अधिक महत्व दिया जाता था। उस युग में अल्प अवस्था में विवाह का प्रचलन था। शास्त्रीय विधान के अनुसार विवाह का प्रधान उद्देश्य पुत्र लाभ है। विवाह की महत्ता पर बल देते हुए इतना कहा गया है कि “तपस्या कितनी भी की जाये, विवाह किये बिना कोई स्वर्ग नहीं जा सकता। इस संबंध में महाभारत में एक कथा प्रचलित है - ऋषि कुणिर्गर्ग की एक पुत्री थी। उसने तपस्या में सारा जीवन बिता दिया। जब वह स्वयं एक पग भी चलने में असमर्थ हो गयी, तब उसने परलोक जाने का विचार किया। उसकी देहत्याग की इच्छा देख, नारद ने उससे कहा- ‘महानव्रत का पालन करनेवाली निष्पाप नारी ! तुम्हारा तो अभी तक विवाह संस्कार भी नहीं हुआ, तुम तो अभी कन्या हो फिर तुम्हें पुण्यलोक कैसे प्राप्त हो सकता है? तुम्हारे संबंध में ऐसी बात मैंने देवलोक से सुनी है। तुमने तपस्या तो बहुत बड़ी की है, परंतु पुण्यलोकों पर अधिकार नहीं हुआ है।’<sup>20</sup> नारद के मुँह से ऐसी बातें सुनकर उसने वृद्धावस्था के शृंगवान ऋषि के साथ विवाह किया। एक रात उसके साथ रहकर वह स्वर्ग चली गई।

इस काल में भी पत्नी पति का अर्धांग मानी जाती थी। इसके भरण-पोषण का भार पति पर

होता था। महाभारतकाल में भी नारी के पातिव्रत्य धर्म एवं सतीत्व पर ही विशेष बल प्रदान किया गया है। इन्द्रसेना, सावित्री आदि नारियों ने सतीत्व के बल पर ही अपने जीवन को सार्थक किया था। सती भार्या का भी उस युग में अत्यधिक सम्मान था। पतिव्रता स्त्री कभी दूसरे पुरुषों का नाम तक नहीं लेती थी। गान्धारी अपने अन्धे पति धृतराष्ट्र के प्रति इतनी विश्वस्त थी कि कभी उसने दूसरे पुरुषों का नाम नहीं लिया। द्रौपदी भी एक अत्यंत पतिव्रता नारी थी। वह सत्यभामा को पतिव्रता स्त्री के कर्तव्यों को समझाते हुए कहती है —

‘लभ्याः प्रसादात् कुपितश्च हन्यात् ।’<sup>21</sup>

उस काल के समाज में पत्नी को तुच्छ समझा जाता था। उस युग में पत्नी पति की नीजी सम्पत्ति समझी जाने लगी थी। युधिष्ठिर द्वारा द्रौपदी को दाव पर लगाना पति के मनमाने अधिकारों का ही प्रमाण है। यद्यपि उस काल में स्त्रियों को सम्मान दिया जाता था। पतिव्रता नारी को देवी तुल्य माना जाता था, फिर भी उस समय स्त्री के प्रति हीन विचारों का भी प्रादुर्भाव होने लगा था। उस समय नारी उपभोग की वस्तु समझी जाने लगी थी और पत्नी के लिए पति की सेवा ही मानो स्वर्ग प्राप्ति का साधन बन गया था। महाभारत कालीन समाज लंपटों और उपद्रव से मुक्त नहीं था। स्वेच्छाधारी व्यक्तियों की क्लृप्ति द्रष्टि से युवतियों की रक्षा के लिए हमेशा सतर्क रहना पड़ता था। उस वक्त समाज में पर्दाप्रथा का प्रचलन नहीं था। साधारण वर्ग की स्त्रियाँ पर्दे में नहीं रहती थी। केवल राजकूल की स्त्रियाँ पर्दायुक्त पालकी या सवारियों पर जाती थी। किन्तु कभी-कभी वे इस नियम की अवहेलना भी करती थी।

उस काल में माता की बड़ी प्रशंसा की गई है। उस समय माता बनने में ही नारी जीवन की सार्थकता समझी जाती थी। माता जिस काम के लिए आज्ञा दें, पुत्र के लिए उसका पालन करना आवश्यक था। उस युग में बहुपत्नी प्रथा तथा सतीप्रथा का प्रचलन नहीं था। नारी के एक ही समय एक से अधिक पुरुषों को वरण करने के द्रष्टांत भी पाये जाते हैं। द्रौपदी ने एक साथ पाँच पति का वरण किया था, किन्तु यह स्मरणीय है कि युधिष्ठिर ने अपनी इच्छा से नहीं, अपितु माता की आज्ञा से ही द्रौपदी से विवाह किया था।

प्राचीन काल की जिन दो नारियों के बहु पति होने का उल्लेख मिलता है, उनमें एक थी जटिला और दूसरी थी वाक्षी। जटिला ने सात ऋषियों से एक साथ विवाह किया था और वाक्षी प्रचेता नामक स्त्री दस संशितव्रत पुरुषों के साथ विवाह सूत्र में आबद्ध हुई थी। वे दसों व्यक्ति आपस में भाई-भाई थे।<sup>22</sup>

वैसे सभी धर्मों में नारी को अवध्य बताया गया है। शिखंडी पहले स्त्री थी, पुरुष रूप धारण करके वह शिखंडी बन गई थी। अतः भीष्म ने उसे नहीं मारने की प्रतिज्ञा की।<sup>23</sup>

अंततः हम कह सकते हैं कि महाभारतकालीन समाज में नारी की स्थिति द्विधाग्रस्त थी। उसमें एक ओर जहाँ नारी को अनंत गौरव तथा सम्मान के पद पर आसीन किया गया है, वहीं दूसरी ओर उसे व्यभिचारिणी भी कहा गया है। उस काल में नारी निन्दा के पर्याप्त उदाहरण द्रष्टिगत होते हैं। कृष्णाजी ने अपने लेख में लिखा है - महाभारतकार का कथन है कि —

“यदि जिह्वा सहस्रं स्याजीवेच्य शरदांशतम्।

अनन्य कर्मा स्त्री दोषा ननुक्त्वा निधनं शतम्॥”<sup>24</sup>

अर्थात् यदि कोई सौ जीभों वाला हो और सौ वर्ष जिए और इस जीवनकाल में भी कोई दूसरा कार्य न हो तो भी वह स्त्रियों के समग्र दोष कहे बिना ही मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा। इतना ही नहीं वेदव्यासजी ने तो नारी को ‘ज्वलित अग्नि’, ‘साक्षात् माया’, ‘धारदार अस्तरा’, ‘कालकूट विष’ और ‘साक्षात् सर्प’ कहा है।<sup>25</sup> अतः महाभारतकालीन समाज में नारी के गुण और दोष दोनों द्रष्टिगत होते हैं।

## 2.4 स्मृतिकाल में नारी :

स्मृतिकाल तक आते-आते नारी की स्थिति और भी गिर गई थी। इस काल में उसकी वैयक्तिक स्वतंत्रता समाप्त हो चुकी थी और वह पूर्णतया पुरुष पर निर्भर हो गई थी। इस युग में उसका जो सम्मान था केवल माता के रूप में था। इस युग में विवाह की आयु घटाकर 12-13 वर्ष कर दी गई। परिणामतः शिक्षा न के बराबर हो गई। नारद, बृहस्पति, याज्ञवल्क्य, पाराशर, वशिष्ठ, व्यास आदि ने स्मृतियाँ लिखी। इन सबका नारी के प्रति उदार द्रष्टिकोण देखने को मिलता है। स्मृतिग्रंथों में मनुस्मृति का विशेष महत्व है। मनु के अनुसार स्त्री घर की शोभा है। उन्होंने नारी को पुजनीय माना है। उन्होंने पत्नी के कर्तव्य बतलाते हुए कहा है कि - पत्नी को हँसमुख, शील सम्पन्न, मर्यादा में रहनेवाली, गृहस्थ, कार्य-दक्ष, स्वच्छ एवं मितव्ययी होना चाहिए। उसे परिवार की सेवा एवं गुरुजनों का आदर करना चाहिए। साथ ही साथ नारी निन्दा भी हमें देखने को मिलती है।

इस काल में पति, पत्नी के मरने पर अथवा उसके जीवनकाल में एकाधिक विवाह कर सकता था। किन्तु नारी के लिए पुनर्विवाह की व्यवस्था नहीं थी। इस युग में सारे बन्धन पत्नी के लिए थे



और पुरुष स्वतंत्र और स्वच्छंद था। स्त्रियों का परम कर्तव्य पति की सेवा है चाहे पति किसी भी तरह का हो। स्मृतिकारों ने यह निर्देश दिया है कि स्त्री पर सदा किसी का अंकुश आवश्यक है। स्त्रियों को किसी अवस्था में स्वतंत्र न रखा जाए। बचपन में उन्हें पिता के रक्षण में, युवावस्था में पति के और वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रखना ही उचित होगा। खुद मनु का कथन है —

‘पिता रक्षति कौमार्य, मनु रक्षति यौवने,  
रक्षति स्थविरे पुत्र, न स्त्री स्वातन्त्र्य मर्हति ॥’<sup>26</sup>

अंततः कह सकते हैं कि इस युग में स्त्रियों के समस्त अधिकारों को छिन लिया गया और उनके माथे पर गुलामी थोपी गई।

## 2.5 मध्यकाल में नारी :

यह ध्यानार्थ है कि भारतीय इतिहास का मध्यकाल ठीक-ठीक वही नहीं है, जो हिन्दी साहित्य के इतिहास का मध्यकाल है। मुसलमानों के आक्रमण के साथ इस काल की शुरुआत होती है। मुसलमानों और मुगलों के राज्य के बाद भारत में स्त्रियों की स्थिति में और गिरावट आई। युगीन समाज के ब्राह्मणों ने हिन्दुधर्म एवं संस्कृति की रक्षा हेतु तथा रक्त शुद्धि बनाये रखने के लिए स्त्रियों को कठोर नियमों में जकड़ लिया गया। 5 या 6 वर्षकी अबोध कन्याओं के भी विवाह होने लगे। जिसके कारण स्त्री शिक्षा से बिल्कुल वंचित रह गयी। समाज में शिक्षा के संबंध में यह अंधश्रद्धा हो गई कि शिक्षित लड़की अपने पति के पास नहीं रहेगी। किसी के साथ भाग जाएगी। लड़की को पढ़ाने से पति की उम्र कम हो जाती है।<sup>27</sup> केवल संपन्न परिवार की स्त्रियों के लिए ही शिक्षा की व्यवस्था थी। अतः उस युग में गृहस्थी ही उनके कार्यों और आशाओं का एकमात्र केन्द्र रह गया था।

मुसलमानों की देखा-देखी में हिन्दुओं में भी पर्दा-प्रथा दाखिल हो गई। विधवा पुनर्विवाह नीची जातियों के अतिरिक्त सभी मध्य व ऊँचे वर्गों में बुरा माना जाने लगा। उन्हें घर से बाहर निकलने तक की स्वतंत्रता न दी गई। निम्नवर्ग की स्त्रियाँ ही केवल नौकरी करती थी। इस काल में धर्म के नाम पर स्त्रियों के समस्त अधिकार छिन लिये गये। उनकी स्वतंत्रता नाममात्र रह गई। उस युग में नारी को केवल मनोरंजन और विलासिता की सामग्री मात्र समझा गया।

इस युग में कन्या को वर चुनने में स्वतंत्रता न थी। पिता, माता तथा अन्य गुरुजनों का मत ही मान्य होता था। स्त्री परिवार में पूर्ण रूपेण पति पर ही निर्भर थी। उनका सर्वोच्च कर्तव्य पति



की सेवा ही था। बहु विवाह की प्रथा भी उस युग में प्रचलित थी। कन्या का जन्म दुःखदायी माना जाता था। अनेक राजपूत कन्याओं को उत्पन्न होते ही मार डालते थे। नीति और धर्म के तत्त्वों का इस युग में इतना ह्रास हो चुका था कि जाति भेद, छुआछूत, वर्णभेद, अनौचित्य की चरमसीमा तक पहुँच गया था। स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा करने हेतु हिन्दुओं ने उन्हें जन्म से मृत्यु तक पुरुष के अधीन कर दिया। हिन्दु धर्म का आधार वास्तव में कर्मवाद तथा पुनर्जन्म सिद्धांत है, परंतु भारतीयों ने केवल पुनर्जन्म पर विचार करते हुए वर्तमान जीवन की उपेक्षा, मोक्ष प्राप्ति, अध्यात्म आदि पर विशेष बल दिया।

इस प्रकार कह सकते हैं कि प्राचीनकाल में जो नारी पुरुष की सहधर्मचारी कहलाती थी उसके बदले मध्यकाल में वह अपने सारे अधिकारों को खोकर मानसिक गुलामी और शारीरिक शोषण का शिकार हो गई। उनके समस्त अधिकार और स्वतंत्रता छीनकर उन्हें चार दिवारों में कैद कर ली गई। इस प्रकार इस युग में धीरे-धीरे नारी की दशा अवनत होती गई थी और नारी केवल भोग-विलास का साधन मात्र रह गई थी।

## 2.6 आधुनिककाल में नारी :

अंग्रेजों के शासन के मध्य में आधुनिककाल शुरू हुआ। मध्यकाल में शिक्षा से वंचित, शोषित नारी ब्रिटीश राज्य के प्रभाव से पढ़ने लगी और न केवल शिक्षा के क्षेत्र में बल्कि सामाजिक जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी काफी परिवर्तन हुआ। अब यह दूर्बल या अबला न रहकर एक सशक्त सबला के रूप में उभरकर सामने आई। प्रगति की दिशा में भी प्रयत्न आरंभ हो गये।

19 वीं शताब्दि के उत्तरार्ध में समाज सुधार की प्रेरणा से कुछ कवियों ने स्त्री-पुरुष की समानता की भावना का प्रतिपादन आरंभ किया। शताब्दियों से नारी पर्दे के पीछे पड़ी हुई दलित जीवन व्यतीत कर रही थी, वह बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही स्वतंत्रता की कामना करने लगी। गांधीजी के नेतृत्व में सुदीर्घकाल तक संग्राम करते हुए भारतीयों ने सन् 1947 में भारत को राजनैतिक स्वातंत्र्य दिलाया। जिसमें तत्कालिन हजारों नारियों का भी योगदान रहा था। तब से भारत के इतिहास में एक नवीन अध्याय प्रारंभ हुआ।

बीसवीं सदी को 'महिला जागरण का युग' कहा जाता है। भारत में सामाजिक पुनर्जागरण और राजनैतिक चेतना का विकास साथ-साथ हुआ है। इसकाल में समाज को अज्ञानता, गरीबी, शोषण, दासता और अपनी प्राचीन रूढ़ियों से एक साथ संघर्ष करना पड़ा भारतीय नारी जो सदियों

से पुरुष प्रधान समाज की स्थितियों में रहने के कारण पिछड़े वर्गों में गिनी जाती थी, वह आज स्वतन्त्रता के 59 साल बाद समाज के सामाजिक, शैक्षणिक, राजकीय, सांस्कृतिक, चिकित्सा, सैन्य, सिनेमा आदि सभी क्षेत्रों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर चुकी है।

स्वतंत्रता के पश्चात् विवाह संबंध में भी नारी को स्वतन्त्रता मिली है। लड़की पिता की नीजि संपत्ति नहीं। वह अपनी मर्जी के लड़के से शादी कर सकती है। आज लड़कियों को पिता की संपत्ति पर भी बराबर हक मिलता है। आज त्यक्ता नारी की स्थिति में भी थोड़ा सुधार आया है। आज पति एक पत्नी के होते हुए दूसरी पत्नी नहीं कर सकता। अगर करना है, तो उसे बाकायदा प्रथम पत्नी को तलाक देना पड़ता है और जीवन निर्वाह के लिए उसे प्रतिमाह वेतन मिलता है। विधवा भी दूसरी शादी कर सकती है। केवल विवाह ही उसके जीवन का चरम लक्ष्य नहीं, वरन् आज की नारी अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गई है। पुरुष के हर क्षेत्र में अपना काम बढ़ाकर वह अपने सुदृढ़ व्यक्तित्व का परिचय भी देने लगी है। वह चार दिवारों में बँद रहना नहीं चाहती है। इसीलिए ही आज पुरुषों को मात करती हुई आगे निकल कर उसने अपनी प्रतिभा और अस्मिता का परिचय दिया है, वह नये युग का प्रमाण है।

इस युग में अनेक सुधारवादी संस्थाओं का उदय हुआ। राजा राममोहनराय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, केशवचंद्रसेन, महात्मा गोविंद रानडे, स्वामी विवेकानंद, दयानंद सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, महात्मा ज्योतिबा फूले, महर्षि धोण्डे, केशव कर्वे आदि अनेक समाज सुधारकों, शिक्षाविदों एवं जागरूक राजपुरुषों के प्रयत्नों के कारण देशभर में नारी उत्थान और उत्कर्ष के लिए विविध सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। इन सुधारकों ने नारी शिक्षा को प्रमुख स्थान दिया और महिला कल्याण को अपने कार्यक्रमों का प्रमुख आधार बनाया। फलस्वरूप नारी की स्थिति में परिवर्तन का दौर हुआ और अपनी मंजिल को पाने में सफल हुआ।

आधुनिक युग में हमारा संपर्क पाश्चात्य संस्कृति से हुआ। अन्य देशों में चल रही स्थिति से स्त्रियाँ वाकिफ हुईं, जिसके कारण भारतीय स्त्री में जागृति की लहर पैदा हुई और उसने भी अपना व्यक्तित्व पूरी तरह से विकसित करने के लिए अपने कदम बढ़ा दिये। शिक्षा का प्रसार बढ़ने से उनमें आत्मसम्मान की भावना जगी। अच्छे-बुरे का ज्ञान हुआ और उसे परम्परा तथा कुसंस्कारों का वैज्ञानिक द्रष्टिकोण से विचारने की शक्ति मिली। आत्म सम्मान की रक्षा में पति-पत्नी में टकराव होने लगती है। आज की शिक्षित पत्नी पति से गिड़गिड़ाकर क्षमा नहीं माँगती। सन्देह करने पर वह पतिको चुनौती भी दे सकती है।

आज संविधान ने नारी को पुरुषों के समान अधिकार प्रत्येक क्षेत्र में दे दिया है। आज वे पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा भिड़ाकर भारत के नवनिर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। राष्ट्रीय, सामाजिक परिषद ने भी नारी के स्थान को ऊँचा लाने में अपना योगदान दिया है। संसद में भी 33% बैठक स्त्रियों के लिए आरक्षित है।

आधुनिक परिस्थिति में नारी को केवल माँ, प्रेयसी अथवा पत्नी के रूप में ही नहीं परंतु इन संबंधों से पर सामाजिक रूप में भी देखा जा सकता है। वैधानिक, प्रशासनिक, राजनैतिक, शैक्षणिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में भी वे स्वयं गर्व करने लायक स्थिति, समान अवसर, समान वेतन तथा समान अधिकार के कारण हो गई। राज्यपाल, राजदूत, प्रशासक, मुख्यमंत्री से लेकर प्रधानमंत्री तक के सर्वोच्च पद पर पहुँचने में वह सफल हुई है। व्यापार, व्यवसाय, विज्ञान, अनुसंधान, आयोग, समितियाँ, कला, साहित्य सभी जगह पुरुषों के साथ चल रही है। आधुनिक शिक्षा प्रचार-प्रसार से नारी के व्यक्तित्व का यथेष्ट विकास हुआ है। शिक्षा से उन्हें नई द्रष्टि, नये विचार मिले हैं।

इस प्रकार इस काल में नारी ने पुरुष से बढ-चढ़कर अपनी क्षमता, साहस व बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है। इस सहस्राब्दी में उसने इतनी उपलब्धियाँ पायी हैं कि भावी सदी केवल नारी विकास की सदी ही नहीं नारी के वर्चस्व की सदी सिद्ध होगी। नारी की संवेदनशीलता, उसकी लगन एवं कर्मण्यशीलता नारी को गौरव के उच्चतम शिखर पर चढ़ाकर रहेगी। तभी लोग भावविभोर होकर कहेंगे - “नारी! तुम केवल श्रद्धा हो।”

इससे यह प्रमाणित होता है कि यदि स्त्रियों को समुचित मौके प्रदान किये जाए तो हर क्षेत्र में वह अपनी प्रतिभा, शक्ति और लगन से उच्चातिउच्च स्थान प्राप्त कर सकती है और उसने किये भी हैं।

आज आधुनिक काल में स्त्री को स्वतंत्रता तो मिली है, पर यह तो पूर्ण स्वतंत्रता का एक स्वप्न मात्र है। स्त्री जितनी उसके पीछे-पीछे दौड़ती जाती है, उतनी ही वह मृगजल की तरह उससे दूर होती जाती है। आज इतनी स्वतंत्र होने पर भी वह संपूर्ण स्वतंत्र नहीं रह पायी है। आज भी समाज में दहेज के नाम पर बहुएँ जलाई जाती हैं या दुःख सहन करते-करते वह खुद मर जाती है। आज भी गाँव में ऐसी स्त्रियाँ हैं, जिन्हें अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए कौन-कौन से कानून हैं यह पता नहीं है। भले ही वैज्ञानिक द्रष्टि से नारी का स्थान काफी ऊँचा कर दिया हो, पर क्या आज भी अधिकार संपन्न शिक्षित योग्य नारी की स्थिति परिवार व समाज में अच्छी है? अनेक समस्याओं के लिए नारी को जिम्मेदार ठहराया जा रहा है। समाज में विकृतियाँ बढ़ रही हैं। आज वैज्ञानिक-

औद्योगिक प्रगति ने भले ही उसको घर का काम हल्का कर दिया है, पर अधिकारों की होड़ ने और जिम्मेवारियों ने उसे पहले से अधिक बोझिल बना दिया है। उसका संपूर्ण व्यक्तित्व अब भी संतोषजनक नहीं है।

यदि हमें समाज को उन्नत बनाना है, तो स्त्री के स्थान को पुरुष के समकक्ष लाना ही पड़ेगा। इस बात को प्लेटो इस तरह कहते हैं - “समाज में नारी का स्थान और महत्व क्या है? वही जो पुरुष का है। न कम न अधिक। स्त्री और पुरुष दोनों रथ के पहियों के समान हैं। यदि एक कमजोर और घटिया हुआ तो समाज का रथ निर्विघ्न आगे नहीं बढ़ सकता। स्त्री और पुरुष नभ में उड़नेवाले पक्षी के दो डैनों के समान हैं। यदि एक छोटा या अशक्त रहा तो पक्षी नभ में विचरण नहीं कर सकता।”<sup>28</sup>

## 2.7 उपसंहार :

इस प्रकार प्रत्येक काल में नारी की स्थिति भिन्न-भिन्न है। कहीं नारी उच्चासन पर विराजमान है, कहीं देवी की महिमा से मण्डित है, तो कहीं उसे भोग्या भामिनी के रूप में। अतः समग्रतया हम कह सकते हैं कि नारी और नर दोनों के समान महत्व से ही समाज उन्नत बन सकता है।

## 2.8 संदर्भ - सूची

- 1 'हिन्दी महाकाव्यों में नायिका की परिकल्पना' ले. डॉ. उर्मिला श्री वास्तव, पृष्ठ - 52
- 2 'राजस्थान की संस्कृतिमें नारी' - ले. डॉ. विक्रमसिंह राठौड, भूमिका
- 3 "Poetey Can do without the husbandman and The burgher, but  
Take a way woman and you Cut its Very life away"  
'सेक्सुअल लाईफ इन एशियन इण्डिया' ले. मेयर प्रथम पोथी, पृष्ठ : 6]
- 4 'भारतीय स्त्री : सांस्कृतिक संदर्भ' ले. प्रतिभा जैन एवं संगीता शर्मा - पृ. 10
- 5 'संत काव्य में नारी' - ले. डॉ. कृष्णा गोस्वामी - पृ. 74
- 6 'भारतीय स्त्री : सांस्कृतिक संदर्भ' - प्रतिभा जैन एवं संगीता शर्मा - पृष्ठ 262
- 7 'मनु स्मृति' - तृतीय अध्याय - पृ. 56 [जहाँ स्त्रियाँ पूजी जाती हैं, वहाँ देवता रमण करते हैं और जिस कूल में स्त्रियाँ अपमानित होती हैं, वह कूल विनाश को प्राप्त होता है]
- 8 'वैदिक वाङ्मय में नारी' ले. डॉ. शुषमा शुक्ला - पृष्ठ - 57
- 9 'हिन्दी मराठी नाटकों में नारी' - ले. डॉ. वसुधा जोशी - पृष्ठ - 18
- 10 'बुमेन इन वैदिक एज' - ले. शकुंतला राव शास्त्री - पृष्ठ - 16
- 11 'संत काव्य में नारी' - ले. डॉ. कृष्णा गोस्वामी - पृष्ठ - 75
- 12 'वीमेन इन ऋग्वेद' (Women in Rgved) - ले. उपाध्याय - पृ. - 35
- 13 'महाभारत कालीन नारी' - ले. डॉ. श्रीमती स्कालस्टिका कुजूर - पृष्ठ - 16
- 14 'आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी' - ले. डॉ. सौ. जे. एम. देसाई पृष्ठ - 10
- 15 'वाल्मीकि रामायण' - 2.98.8]
- 16 'एज्युकेशन इन एन्शियेन्ट इन्डिया' - ले. अल्लेकर पृ. 10  
- 'रामायण में नारी', ले. डॉ. अर्चना विश्नोई से उद्धृत
- 17 'वाल्मीकि रामायण' पृष्ठ - 185
- 18 'भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व' ले. सोती विरेन्द्रचन्द्र - पृष्ठ 92 से उद्धृत
- 19 'महाभारत' - ले. वेदव्यास - आदि पर्व - पृ. 72

- 20 असंस्कृतायाः कन्यायाः कुतो लोकास्तवागधे ।  
 एवं तु श्रुतमस्माभिर्देवलोकमहाव्रते ॥  
 'महाभारत' ले. वेद व्यास 1, 9, 52, 17, 23
- 21 'महाभारत' ले. वेद व्यास : वन पर्व, पृष्ठ - 225
- 22 'महाभारत कालीन नारी' - ले. डॉ. स्कालस्टिका कुजूर, पृष्ठ - 101
- 23 "स हि स्त्री पूर्वको राजन् शिखण्डी यदि ते श्रुतः ।  
 कन्या भूत्वा पुमान् जातो न योत्स्ये तेन भारत ।"  
 'महाभारत : उद्योग पर्व,' ले. वेद व्यास - पृष्ठ - 379
- 24 'संत काव्य में नारी' - कृष्णा गोस्वामी पृष्ठ - 79
- 25 वहीं वहीं वहीं
- 26 'आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी' - ले. डॉ. सौ. जे. एम. देसाई पृष्ठ - 18
- 27 'स्त्री शिक्षणाची वाटचाल' - ले. डॉ. सरोजीनी बाबर - पृ. - 96
- 28 'भारतीय जनता तथा संस्थाए' ले. रविन्द्रनाथ मुकर्जी पृ. 339 से उद्धृत

# तृतीय अध्याय

हिन्दी काव्य में नारी की स्थिति

## तृतीय अध्याय : हिन्दी काव्य में नारी की स्थिति

- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 वीरगाथा कालीन हिन्दी साहित्य में नारी
- 3.3 भक्ति कालीन साहित्य में नारी
  - 3.3.1 ज्ञानाश्रयी शाखा
  - 3.3.2 प्रेमाश्रयी शाखा
  - 3.3.3 रामभक्ति धारा
  - 3.3.4 कृष्णभक्ति धारा
- 3.4 रीतिकालीन साहित्य में नारी
- 3.5 आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी
  - 3.5.1 भारतेन्दु काल
  - 3.5.2 द्विवेदी काल
  - 3.5.3 छायावाद काल
  - 3.5.4 प्रगतिवाद
  - 3.5.5 प्रयोगवाद
  - 3.5.6 नई कविता
  - 3.5.7 नवगीत
  - 3.5.8 साठोत्तरी कविता
  - 3.5.9 सातवें दशक की कविता
  - 3.5.10 आठवें दशक की कविता
  - 3.5.11 नवें दशक की कविता
  - 3.5.12 दशवें दशक की कविता
- 3.6 उपसंहार
- 3.7 संदर्भ-सूची



## हिन्दी काव्य में नारी की स्थिति :

### 3.1 प्रस्तावना :

हिन्दी साहित्य का इतिहास बृहद रहा है। इसमें विविध विधाओं में नारी का चित्रण यत्र-तत्र मिल जाता है। यों तो साहित्य की सभी विधाओं में नारी का चित्रण किया गया है, लेकिन नारी का सही रूप तो हमें काव्यों में ही प्राप्त होता है। काव्य साहित्य में नारी के विभिन्न रूपों का वास्तविक चित्रण हुआ है।

हिन्दी काव्य का जन्म मुसलमानों के भारत आगमन के बाद हुआ। नौ सो ईसवी के लगभग मुसलमानों ने भारतकी राजनैतिक तथा सामाजिक व्यवस्था में विशृंखला उत्पन्न कर दी। हिन्दू जाति की सभ्यता एवं संस्कृति की रक्षा के लिए समाज के रक्षकों ने अनेक नियम बनाये। स्त्रियों को मुसलमानों के अत्याचारों से बचाने के लिए अल्प आयु में ही विवाह कर दिया जाने लगा। स्त्री शिक्षा लगभग समाप्त हो गई थी। विधवा विवाह होने लगे थे और सतीप्रथा का प्रचार तेजी से होने लगा था। मुसलमानों के भय से कन्या अवांछनीय मानी जाने लगी थी और कहीं-कहीं तो कन्या का जन्म होते ही उसकी हत्या कर दी जाती थी। अशिक्षा के कारण स्त्रियाँ अंधविश्वासों में बुरी तरह जकड़ गई थी। हिन्दी काव्य का जन्म इन्हीं परिस्थितियों में हुआ।

### 3.2 वीरगाथा कालीन हिन्दी साहित्य में नारी :

हिन्दी साहित्य का आरम्भिककाल वीरगाथाकाल, चारणकाल, सिद्ध सामंत युग, आदिकाल, अपभ्रंशकाल, संधिकाल, रासोकाल आदि विभिन्न नामों से अभिहित किया जाता है। तथापि आदिकाल नाम ही आज सर्वाधिक रूढ़ हो गया है। इस काल के राज्याश्रित चारणों ने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में साहित्य का प्रणयन किया। चारण कवियों ने इन कृतियों में नारी का चित्रण वीरमाता या वीरपत्नी के रूप में नहीं किया है, बल्कि उसे पुरुष की भोग्या संपत्ति के रूप में चित्रित किया है। अधिकांश काव्यों में नारी के शारीरिक सौन्दर्य एवं नखशिख का ही वर्णन मिलता है। आदिकाल में प्रमुखतः चार प्रकार का साहित्य पाया गया है। (1) सिद्ध साहित्य (2) नाथ साहित्य (3) रासो साहित्य (4) जैन साहित्य तथा फागु कृतियाँ।

सिद्ध साहित्य में नारी को साधना मार्ग में एक निर्जीव साधन मात्र माना गया है। सिद्धि प्राप्त करने के लिए नारी का सेवन सिद्ध संप्रदाय में अनिवार्य हो गया था और स्त्रियों का उपभोग

एक अनुष्ठान माना जाता था। आर्यदेव का कथन है - “जिस प्रकार कान का जल जल से, काँटा काँटों से और वस्त्र का मैल मैली सब्जी से निकलता है, वैसे ही विषयासक्ति भी विषय की साधना से नष्ट होती है।”<sup>1</sup> सिद्धों की यह मान्यता थी कि चार प्रकार के आनन्द प्रथमानन्द, परमानन्द, विरमानन्द और सहजानन्द की प्राप्ति स्त्री द्वारा ही संभवित है।<sup>2</sup> अतः सिद्ध मानते थे कि सिद्धत्व भोग करने से ही प्राप्त होता है।

नाथ साहित्य में नारी की निन्दा और परित्याग की बात कही गई है। इस साहित्य के अनुसार नियमों की रचना नारी के लिए ही की गई, पुरुषों के लिए नहीं। नारी को साधनामार्ग की बाधा मानकर उसकी भर्त्सना की गई। अपनी साधना में इन्द्रिय-निग्रह को उन्होंने सर्वोपरि स्थान दिया और इन्द्रिय-निग्रह में सर्व प्रथम नारी को रखा —

‘जोगी सो जे मन जोगवै,  
बिल विलाइत राज भोगवै।  
कनक कामिनी त्यागै होई,  
सो जाने जोगेश्वर निरभै होई।’<sup>3</sup>

इतना ही नहीं गोखनाथ ने स्पष्टरूप से कहा है कि - “काली हांडी को हाथ में लेने से कलंक लगता ही है, उसी प्रकार नारी के संग से मनुष्य तो क्या, सनकादिक को भी कलंक लगे बिना नहीं रहता।”<sup>4</sup> उसके मतानुसार नारी साधकों के संग शोभा नहीं देती।

इस प्रकार नाथ सम्प्रदाय के अनुसार स्त्री उस नीजी धन के समान है, जिसकी रक्षा का भार पुरुष पर है। वह स्वतः आत्मरक्षा की शक्ति नहीं रखती, जिसका एकांत उपभोग पुरुष करता है और जिसे वह विरक्ति होने पर मूल्यहीन वस्तु के समान त्याग भी देता है। अतः इस काल में नारी में ऐन्द्रिकता का प्राधान्य है।

आदिकाल में रासो ग्रन्थों का सृजन बड़ी मात्रा में हुआ है। इस युग में राजाओं में युद्ध होते थे और युद्धों का कारण प्रायः नारियाँ ही हुआ करती थी। पड़ोशी राजकुमारी के सौन्दर्य का चारणों के द्वारा वर्णन सुनकर राजा उस पर अनुरक्त हो जाते थे और उसको प्राप्त करने के लिए भीषण युद्ध हुआ करते थे। उस काल में नारियाँ बरी कम जाती थी, हरी अधिक जाती थी। अतः उस समय की नारी कलह का कारण बनी थी।

वीरगाथाकालीन काव्य भी नारियों के सम्बन्ध में एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि इस काल

की नारियाँ कठिनाई के समय में अपने पतिको उचित परामर्श भी देती थी। 'हम्मीर रासो' में जब महाराज हम्मीर निराश हो जाते हैं, उस समय उनकी रानी उनसे कहती है - "संसार में व्यक्ति के धन, राज्य, वैभव, पुत्र और नारी आदि का कोई मूल्य नहीं। अतः इन सबको त्यागकर भी आपको अपने वचन का पालन करना चाहिए।"<sup>5</sup>

जैन आचार्यों द्वारा प्रणीत काव्यों में विरक्ति का स्वर मुखर है। उस में नारी के परित्याग की बात की गई है। अन्य धर्म साहित्यों की भाँति जैन साहित्य में भी वासना को काम का साधन मानकर उससे मुक्त होने और वासना के केन्द्र में नारी को त्यागने का उपदेश दिया गया है। पुरुष के सिद्धि मार्ग में बाधक होने के कारण जैन आचार्यों ने नारी को माया, मरीचिका और मृत्युपाश माना है। 'ज्ञानार्णव' के प्रणेता श्री शुभचन्द्र आचार्य के मतानुसार - "नारी की वाणी में अमृत और हृदय में विष होता है। वे कहते हैं कि स्त्री-पुरुषों को साँप की दाढ़ के समान भय और संताप प्रदान करनेवाली है।"<sup>6</sup> उसके विषय में यहाँ तक कहा गया है कि - "स्त्री के विषय में मन में विचार मात्र से मलिनता का दोष उत्पन्न होता है। नारी मोह से छुटकारा पाते ही व्यक्ति कल्याण को प्राप्त होता है। यहाँ तक कि स्त्रियों को कीचड़ की तरह बताया गया है। जो चिपकने की वृत्ति रखती है, पुरुष उनके रूप-जाल में घँसते जाते हैं।"<sup>7</sup>

इस प्रकार आदिकाल या वीरगाथाकाल में नारी को विलास की सामग्री और पुरुष की नीजी सम्पत्ति मात्र समझा गया। नारी की निजी समस्याओं को इस युग में वाणी नहीं मिली। पति से हटकर नारी के आत्म सम्मान की कल्पना इस युग में असंभव थी। इस युग की स्त्री रक्षिता, शोषिता और पुरुष की आश्रिता थी। सिद्धों ने उसे वासना की मंजूषा बना डाला और नाथों ने उसे निर्वाण पथ की बाधा माना। यत्र-तत्र कवियों ने उसमें शौर्य के भी दर्शन किये हैं। रूप सौन्दर्य के चित्रण में रासोकार अतुलनीय है। पनघट वर्णन, स्त्रीभेद वर्णन तथा शृंगार वर्णन आदि से रासो का कवि पूर्णरूप से परिचित है। समग्र रूप से कहा जा सकता है कि वीरगाथा कालिन नारी जहाँ एक ओर कर्तव्य के प्रति जागृत रहनेवाली है, वही दूसरी ओर यौवनोन्माद से आकर्षित करनेवाली प्रेमविह्वला नारी है। एक ओर वह जहाँ प्रेम शौर्य का मांगलिक दीप जलाकर अरमानों की होली खेलती है, वहाँ दूसरी ओर वह आकांक्षाओं की ज्वाला में स्वयं जलती है।

### 3.3 भक्तिकालीन साहित्य में नारी :

भक्तिकाल में प्रधानतः धार्मिक काव्य की रचना हुई है। भक्ति की प्रधानता होने के कारण

ही उसे 'भक्तिकाल' कहते हैं। प्रायः ईश्वर प्राप्ति के मार्ग का अनिवार्य संबंध भौतिक जगत से विरक्ति माना गया है। इसीलिए काम और उसके साधन नारी से पलायन की प्रवृत्ति इस युग के साहित्य में प्रधानरूप से पायी जाती है। इसकाल के कवियों ने निर्गुण और सगुण ब्रह्म का प्रतिपादन किया। ये दोनों धाराएँ भी दो-दो शाखाओं में बँट गई। इस प्रकार इस काल की कविता चार शाखाओं में विभाजित हो गई।

➡ **निर्गुण धारा:** 1 - ज्ञानाश्रयी शाखा

: 2 - प्रेमाश्रयी शाखा

➡ **सगुण धारा :** 3 - राम भक्ति धारा

: 4 - कृष्ण भक्ति धारा

साम्प्रदायिक द्रष्टि से इन चारों भक्ति धाराओं में चाहे जो भी भेद रहा हो, किन्तु नारी के सम्बन्ध में इनका द्रष्टिकोण मूलतः एक-सा है। इन सभी काव्य धाराओं में नारी का प्रायः दो रूपों में चित्रण मिलता है। एक है लौकिक और दूसरा अलौकिक। जिनमें लौकिक रूप में यथार्थ होने के कारण नारी निन्दनीय रही है, जबकि अलौकिक रूप में आदर्श होने के कारण नारी आदर का पात्र बनी है।

भक्तिकालीन साहित्य में नारी की स्थिति देखने के लिए हम विभिन्न भक्तिधारा के प्रवर्तक कवियों का नारी विषयक द्रष्टिकोण को द्रष्टिगत करेंगे।

### 3.3.1 ज्ञानाश्रयी शाखा :

निर्गुणोपासना की ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख व प्रतिनिधि कवि कबीरदासजी थे। अन्य कवियों में रैदास, गुरूनानक, दादू, सुन्दरदास, मलूकदास आदि मुख्य हैं। इन सन्त कवियों ने नारी की बड़े कठोर शब्दों में निन्दा की है। कबीरदासजी ने नागिन के साथ नारी की तुलना करते हुए लिखा है कि —

‘इक नारी एक नागिनी, अपना जाया खाय।

कबहूँ सरपट नीकसे, उपजे नाग बलाय ॥’<sup>8</sup>

इन कवियों ने नारी को सर्पिणी, बाधिनी, पैनीछुरी, विष की बेलि, झूठनी जगत की और न जाने क्या-क्या कहकर उसे अपमानित किया। यही नहीं संतो ने उसे अत्यंत कपटी और नीच माना है। जैसे —

‘कामिनी कनक कलह का भण्डा ।

ईन ठगनिन सारा अंग ठण्डा ॥’<sup>9</sup>

उन्होंने नारी के बारे में जैसी कटु उक्तियाँ कही हैं, जिसे कोई भी सम्यक् व्यक्ति सुनने को प्रस्तुत नहीं हो सकता ।

संत कवियों की इस प्रकार की नारी-भावना के पिछे तत्कालिन सामाजिक परिस्थितियाँ कारणभूत हैं । बाहरी आक्रमण, अपहरण आदि से नारी की दशा हीन थी । समाज में बाल विवाह, सतीप्रथा जैसे दूषण भी विद्यमान थे । अतः इसी हीन दशा का प्रतिबिम्ब साहित्य में है । संतो ने स्त्री से दूर रहने की सलाह सामाजिक कारणों से ही दी थी । समाज के नियमन के लिए उन्होंने नारी की निन्दा की और पतिव्रत धर्म का आदर्श रखा । वैसे संतों ने नारी के मायाविनी रूप की निन्दा की है और पतिव्रता नारी की स्तुति भी की है ।

### 3.3.2 प्रेमाश्रयी शाखा :

प्रेमाश्रयी शाखा के कवि मुसलमान थे । सूफी सिद्धांतों के अनुयायी होने के कारण वे सूफी कहलाये । जिसके प्रधान कवि जायसी हैं । इनके अतिरिक्त कुतुबन, मंझन तथा उसमान हुए । सूफी कवियों ने नारी को प्रेम साधना के साध्य रूप में स्वीकार किया है, जिससे वह प्रेम के लौकिक जीवन की निरी भोग्य वस्तु मात्र नहीं रह जाती । इन कवियों ने नारी के प्रति आदर व्यक्त किया है । उन्होंने परमात्मा को प्रेयसी का रूप देकर चित्रित किया है । जायसी का ‘पद्मावत्’ इस धारा का प्रमुख महाकाव्य है । जो सूफी काव्य परंपरा की सर्वश्रेष्ठ कृति है । जिसमें जायसी ने राजा रत्नसेन और सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती के प्रेम के बहाने आत्मा और परमात्मा के लौकिक प्रेम को भौतिक जगत की सुन्दरतम वस्तुओं का उपमान लेकर वर्णित किया है ।<sup>10</sup> यही उनकी साधना का मार्ग है, जो कबीर आदि संतो से सर्वथा उलटा है ।

संत कवियों ने नारी के सांसारिक रूप की उपेक्षा की है, वहाँ प्रेमाख्यानक कवियों ने नारी के शृंगार और प्रेम को महत्वपूर्ण स्थान दिया है । नारी को कष्ट देनेवालों की इन कवियों ने भर्त्सना की है । अतः इन कवियों ने पुरुष और नारी के बीच अद्वैत स्थापित करने का प्रयास किया है ।

### 3.3.3 रामभक्ति धारा :

सगुण भक्ति की रामभक्ति धारा के प्रतिनिधि कवि तुलसीदासजी हैं । जिन्होंने ‘रामचरित मानस’ में यथा स्थान नारियों के विभिन्न रूप की कल्पना की है । वैसे तो उन्होंने नारी के बारे में

परंपरा से चली आ रही धारणा को अपनाया है। एक साधक की द्रष्टि से उन्होंने नारी को बहुत ही हीन माना है। उन्होंने नारी के बारे में बताया है कि - “विधाता भी नारी के हृदय की गति नहीं जानता। वह कपट और अवगुण की खान होती है।” उन्हीं के शब्दों में —

“विविड न नारि हृदय गति जानी।

सकल कपट अध अवगुन खानी ॥”<sup>11</sup>

इतना ही नहीं उन्होंने नारी को ‘भ्रष्ट करनेवाली माया’<sup>12</sup> का ही साक्षात् रूप माना है। साथ ही साथ उन्होंने संतो को नारी से दूर रहने की चेतावनी भी दी है।<sup>13</sup> और उसे ‘नीच इच्छाओं की पूर्ति करनेवाली’<sup>14</sup> एवं अदम्य शक्ति कहा है। जिसे पुरुष भी समझ पाने में असमर्थ रहता है। नारी को इतना दुर्गुणों से युक्त और अविश्वसनीय मानते हुए कवि ने ढोल, गँवार और पशु तक से तुलना करके उसे ताड़ना की सहज अधिकारी बतलाया है।<sup>15</sup>

वैसे तुलसीदासजी नारियों के प्रति कुछ सीमा तक निश्चय ही कठोर है, फिर भी नारी जाति के प्रति उनके हृदय में पर्याप्त सहानुभूति है। सीता, पार्वती, तारा, मन्दोदरी, सुमित्रा आदि के द्वारा उन्होंने नारी के प्रति गौरव भी व्यक्त किया है। उनके मतानुसार नारी की मर्यादा उसके सतीत्व में निहित है। उन्होंने मर्यादा एवं आदर्श को कहीं नहीं छोड़ा है। उन्होंने नारी की मंगलकारिणी शक्ति का स्तवन किया है। पति परायणा सती और आदर्श नारी की प्रशंसा की है और असती, मंदमति और कुलटा नारियों को दण्डनीय माना है। वे रामराज्य में एक नारीव्रत को सबसे ऊँचा आदर्श मानते थे। उन्होंने लिखा है —

“एक नारी व्रत रत सब सारी।

ते मन बच क्रम पति हितकारी ॥”<sup>16</sup>

वे भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के पक्षधर हैं। उन्होंने नारी के कामिनी रूप की निंदा की है। भगीनी, माता या पुत्री के रूप की नहीं। पाण्डेयजी ने लिखा है - “वे उन्हें गलत मार्ग के भटकाव से बचाकर एक स्वस्थ समाज में प्रतिष्ठित करना चाहते थे।”<sup>17</sup> कृष्णाजी के मतानुसार तुलसीदासजी को दोष न देकर तत्कालीन समाज व्यवस्था को ही दोष देना होगा।<sup>18</sup>

अतः तुलसीदासजी का नारी विषयक द्रष्टिकोण नारी विरोधी नहीं था। वे एक आदर्श समाज व्यवस्था के समर्थक थे। उन्होंने नारी को कामुकता से दूर रखकर उसके पावनतम रूप की रक्षा की है।

### 3.3.4 कृष्ण भक्ति धारा :

कृष्ण भक्त कवियों ने अपने काव्यों में कृष्ण के साथ-साथ राधा और गोपियों का भी मनोहर वर्णन किया है। कृष्ण भक्त कवियों में सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, छीत स्वामी, गोविन्दस्वामी, नन्ददास और चतुर्भुजदास ये आठ अष्टछाप के कवि विशेष महत्वपूर्ण हैं। इन कवियों ने कृष्ण को परमात्मा तथा राधा एवं गोपियों को आत्मा का प्रतीक मानकर काव्य रचनाएँ की हैं। उन्होंने माता, प्रेयसी, सखी, स्वकीया, परकीया इत्यादि रूप में नारी का चित्रण करके कृष्ण और गोपियों की लीलाओं का वर्णन किया है।

अष्टछाप के कवियों में सूरदास की भक्ति भावना उत्कृष्ट है। उनका 'सूरसागर' प्रेम और भक्ति काव्य का सर्वश्रेष्ठ सरोवर है। सूरदासजी के पदों में सख्य भक्ति के साथ वात्सल्य एवं माधुर्य भक्ति के भाव भी अपने चरम-बिन्दु तक पहुँचते हैं।<sup>19</sup> गोपी भाव की एकांगी या ऐकान्तिक भक्ति भावना को ही माधुर्य भक्ति अथवा प्रेमलक्षणा भक्ति कहते हैं। 'सूर सागर' में कृष्ण, राधा एवं गोपियों के द्वारा रास, पनघट, दान, हिंडोला, वसंत, मान इत्यादि लीलाओं में सूर ने माधुर्य भक्ति का ही निरूपण किया है।<sup>20</sup> सूरदासजी की राधा कृष्ण की बाल सखी है। उन्होंने नारी को सामान्या और विशेषा दो रूपों में देखा है। सामान्या रूप में नारी के प्रति वहीं संतो-भक्तों की परंपरागत द्रष्टि रखकर उसकी निंदा की और पतिसेवा ही उसका धर्म बताया है। विशेषा रूप में सामाजिक बन्धनों का त्याग करनेवाली नारी को श्रेयष्कर बताया है। उन्होंने जहाँ नारी को आध्यात्मिक मार्गकी बाधा<sup>21</sup> माना है, वहाँ गोपियों को ईश्वर की आल्हादिनी शक्ति भी माना है। उनके मतानुसार ब्रज सुन्दरियाँ अनन्य एवं असाधारण हैं। उन्होंने परब्रह्म द्वारा ही उनके श्रीमुख से अपनी नित्य लीला का भूतल पर प्राकट्य-वर्णन करवाया है। श्रीकृष्ण कहते हैं : 'ये ब्रज सुन्दरियाँ साधारण नारियाँ नहीं हैं अपितु ये 'श्रुति' की ऋचाएँ हैं। मैं स्वयं और शिव, शेष, लक्ष्मी भी इनकी तुलना में साधारण हैं। प्रकृति, पुरुष, जगत सभी को अपने आप में समाकर मैं वैकुण्ठ में भुवन मोहिनी राधा के साथ रहता हूँ। वहाँ मैं अक्षर, अच्युत, निराकार, अनादि, अनन्त के रूप में नित्य रहता हूँ—

‘गोपी पद-रज-महिमा, विधि सौ कहीं।

ब्रज सुन्दरि नहिं नारि, रिचा श्रुति की आहीं ॥

मैं अरु सिव पुनि शेष, लक्ष्मी तिहिं सम नाहीं।

याहि सुनै जो प्रीति करि, सो हरि पद हिं समाहीं ॥

प्रकृति पुरुष लै भई, जगत् सब प्रकृति समाया।

रह्यौ एक वैकुण्ठ लोक, जहां त्रिभुवन राधा ॥  
 अक्षर, अच्युत, निराकार, अविगति है जोई ।  
 आदि अन्त नहीं जाहि, आदि अंतहिं प्रमु सोई ॥<sup>22</sup>

सूरदासजी ने मातृरूप में स्त्री को आदर दिया है और कहीं भक्ति न करनेवाले पुत्र को जन्म देनेवाली नारी की निंदा भी की है ।

इस प्रकार कृष्ण भक्त कवियों ने यशोदा के रूप में मातृत्व का और राधा एवं गोपियों के रूप में उज्ज्वल चरित्र की अवधारणा की है । इस शाखा में योगदान देनेवाली नारियाँ भी हुई हैं । मीरा इनमें सिरमोर है । उनके जैसी भावुक्ता एवं तल्लीनता बहुत कम कवियों में मिलती है ।

समष्टि रूप में कहा जा सकता है कि सामान्य रूप से भक्तिकाल में नारी को अनादर की दृष्टिसे देखा गया है । विशिष्ट रूप में नारी पतिव्रता, विरहिणी आदि है और उसका आदर्श सूरदासजी की गोपियाँ, तुलसीदासजी की सीता, पार्वती, कौशल्या और जायसी की पद्मावती हैं । कवियों की यह विशिष्ट भावना उनकी सामान्य नारी भावना से भिन्न है ।

### 3.4 रीतिकालीन साहित्य में नारी :

रीतिकाल में भी नारी विलास का साधन मात्र ही बनी रही । इस काल के कवियों की दृष्टि नारी के शारीरिक सौंदर्य तक ही जाती है । नारी के शरीर का प्रत्येक अंग उसके काव्य का विषय बन गया । साहित्य शास्त्र के सिद्धांतों की विवेचना के बहाने कवियों ने कामशास्त्र की सूक्ष्म व्याख्या की और अपने दुस्साहस को छिपाने के लिए आड़ ले ली राधा और गोविंद की । अनेक कृष्ण भक्त कवियों ने राधा कृष्ण की शृंगारमयी लीलाओं का चित्रण किया है । बिहारी का प्रायः काव्य ही शृंगार परक है । आलम, धनानंद, देव, मतिराम, रसखान आदि का प्रेम निरूपण बेजोड़ है । भक्त कवियों का दृष्टिकोण दार्शनिक था और दरबारी कवियों का घोर लौकिक । इन कवियों की नायिका का 'राधा' नाम होकर भी वह भक्त कवियों की राधा से बिल्कुल भिन्न है । वह रूप की खान अवश्य है, किन्तु उस रूप में हृदय की विशालता और भाव की स्वच्छन्दता की सुगन्ध नहीं, वासना की दूर्गन्ध है ! इन कवियों ने राधा कृष्ण के केवल शृंगारी घोरतम शृंगारी रूप पर ही दृष्टि केन्द्रित की है, उसके पार, उससे परे - वे कुछ देख नहीं सके - या उन्होंने देखना चाहा नहीं । इन कवियों ने नायिका भेद द्वारा स्त्री के विचारों, भावों एवं इच्छाओं का विश्लेषण करने का प्रयत्न किया था, किन्तु वह भाव शारीरिक सौन्दर्य तक ही सीमित रह गया । नारी के अन्तरतम में बसनेवाले हृदय को



वे कवि पूर्णतया नहीं छू सकें। जब राजागण भी अप्रस्फुटित कवियों से ही बँधने लगे थे, जब वृद्ध भी बालिकाओं से 'बाबा' नहीं सुनना चाहते थे<sup>23</sup>, तब तत्कालिन काव्य के अंतर्गत नारी का ऐसा रूप मिलना स्वाभाविक ही है।

रीतिकाल में जब घोर शृंगार की रचनाएँ हो रही थी तब नीति और वैराग्य की धाराएँ भी समान्तर रूप से प्रवहमान थी। कवि हेमराज, वृन्द, रहीम, गिरधर कविराय आदि कवियों के नीति विषयक उद्गार नारी को लेकर व्यक्त किये हैं। हेमराज का कथन है कि नारी को देखते ही विचार नष्ट हो जाते हैं। परिणाम परिवर्तित हो जाते हैं, अज्ञान आ जाता है और शील चला जाता है। उन्हीं के शब्दों में —

‘नारी के निहारत विचारत सब भूलि जायँ,  
नारी के निहारे परिणाम फिरे जाते हैं।  
नारी के निहारत अज्ञान भाव आय सकें,  
नारी के निहारत ही शील गुण घात है।’<sup>24</sup>

कवि वृन्द ने नारी को ओछी बुद्धिवाली कहा<sup>25</sup> कवि रहीम ने भी नारी की घोर निन्दा की है। उन्होंने कहा है —

“उरग, तुरग नारी नृपति, नीच जाति हथियार।  
रहिमन इन्हें सँभारिए, पलटत लगे न वार ॥”<sup>26</sup>

अर्थात् कवि का कहना है कि सर्प, घोड़ा नारी, नृपति, नीच जाति के लोग और हथियार आदि से सावधान रहना चाहिए क्योंकि इन्हें पलटते देर नहीं लगती। कवि घाघ, गिरधरराय आदि कवियों ने भी अपने काव्य में दुराचारिणी नारियों की निन्दा की है।

अतः हम कह सकते हैं कि रीतिकालिन कवियों की द्रष्टि में नारी एक सस्ता खिलौना मात्र है। नारी के निजी अस्तित्वको उसमें कहीं भी स्थान नहीं दिया गया है। नीति काव्य में उसे विवेकहीन और अविश्वासी कहा गया और शृंगार काव्य में आभूषणों से अलंकृत पुतली मात्र बनकर रह गई। दोनों ही में गंभीर विवेचनात्मक द्रष्टिकोण का अभाव देखने को मिलता है।

### 3.5 आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी :

बीसवीं शताब्दि नारी जागरण की सदी मानी जाती है। नारी जागरण के कार्य में साहित्य का और विशेषतः काव्यों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस सदी के कारण वैयक्तिकता, मानवता,

स्वच्छन्दता आदि प्रवृत्तियों के साथ संसार, जीवन, धर्म, प्रेम, प्रकृति, राष्ट्र तथा व्यक्ति आदि संबंध में नवीन द्रष्टिकोण का विकास आधुनिक युगीन काव्यों की महत्वपूर्ण देन है।

उन्नीसवीं सदी के भारतीय समाज ने पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के विस्तार में समाज सुधारकों को नारी के प्रति नवीन द्रष्टिकोण प्रदान किया, जिससे प्रेरणा पाकर युगों के पश्चात् नारी जागृति का शंखनाद हुआ और वह अपनी दीर्घकालीन असहाय अवस्था को भूलकर एकबार फिर अपना गौरवान्वित पद प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर हुई। जिस नारी का कार्यक्षेत्र अब तक घर तक सीमित था, उसने बाहर भी पदार्पण किया। नारी ने अपने भीतर छिपी हुई मृत शक्ति को पहचानकर उसे पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। पुरुष के आदेशों को मानने से उसने इन्कार कर दिया। उसने अपनी विवेक बुद्धि से चलना सीख लिया। अब तक रोटी, कपड़ों के लिए पुरुष की आश्रित थी लेकिन अब अपने पैरों पर खड़ा रहना उसने सिख लिया। उसमें एक नया आत्मविश्वास जगा। वह उठ खड़ी हुई और उसमें नयी चेतना, नया रंग और नयी अस्मिता का संचार हुआ।

रीतिकालीन कवियों ने नारी में केवल शृंगारिकता की ही प्रतिष्ठा की थी, पर अब उनका नीजी अस्तित्व है। उसे देवी, माँ, सहचरी, प्राण का संबोधन ही प्राप्त नहीं हुआ वरन् उसे श्रद्धा के रूप में भी देखा गया। समाज में जब स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए आंदोलन हुआ तथा उनकी परिस्थितियों में उन्नति हुई तो कवियों ने भी नारी के प्रति उदार भावना व्यक्त की। नारी जीवन की विषमता, कटुता, उपेक्षा विभिन्न समस्याएँ, संघर्ष काव्य का विषय बन गया। नारी स्वतंत्रता का स्वर कहीं आक्रोश के रूप में, कहीं स्पंदन के रूप में तो कहीं विद्रोही गर्जना के रूप में काव्य में सुनाई पड़ता है। हिन्दी काव्यों में अलग-अलग कवियों ने नारी जीवन का चित्रण विविध रूप से किया है।

आधुनिककाल के प्रारंभ से ही हिन्दी साहित्य जगत विविध विधाओं से अलंकृत हो गया और साहित्य की सहस्र धाराएँ प्रवाहित होने लगी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसकाल के इतिहास को चार चरणों में बाँटा है —

### 3.5.1 भारतेन्दु काल :

आधुनिककाल का प्रारंभ सन् 1850 से माना जाता है। यह सन् भारतेन्दुजी का जन्मकाल है और आधुनिककाल का प्रथम चरण भारतेन्दुजी से ही सम्बन्धित है। उनका युग आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रवेशद्वार है, इस आधार पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को आधुनिक साहित्य का जनक माना

जाता है और इसकाल के प्रथम चरण को भारतेन्दु युग कहा गया है।

भारतेन्दुजी जनजागृति के अग्रदूत रहे हैं। उनकी कविता का मूल स्वर समाज सुधार का रहा था। उन्होंने अपने काव्यों में सामाजिक और राजनैतिक विषयों को रखा। जिससे हमारा द्रष्टिबिंदु काव्य शास्त्रीय पद्धतियों से हटकर जीवन की ओर बढ़ा। इन्होंने खड़ी बोली गद्य को स्थिरता देकर पद्य विधाओं का प्रवर्तन किया। हाँ कहीं-कहीं उनके काव्य में नायिका के शारीरिक प्रेम की उष्णता एवं विरह व्यथा का अंकन भी मिलता है, किन्तु वे रीतिकालीन कवियों की तरह कठहरे में ही बन्द नहीं रहे। उन्होंने साहित्य एवं जीवन का संबंध भी स्थापित किया। इन कवियों का प्रमुख लक्ष्य अंग्रेजी शासन की स्वार्थपूर्ण शोषण नीतियों का विरोध करना था। साथ-साथ भारतीय समाज में नयी चेतना जगाकर उसे कुरुद्वियों, परम्पराओं एवं अंध विश्वासों से मुक्त कराना था।

भारतेन्दु और उनके समकालीन अन्य कवियों ने नारी को प्रेम और रति की शृंगारिक भूमि से ऊँचा उठाकर उसकी समस्याओं और विवशता की ओर भी देखा और अपनी रचनाओं के माध्यम से नारी के उत्थान में योगदान दिया। भारतेन्दुजी ने नारी को बन्धन से मुक्त करके उसका प्राचीन गौरव फिर से प्रदान करने की चेष्टा की है। वे स्त्री शिक्षा में कूलधर्म, पति भक्ति, पारिवारिकता आदि के तत्त्वों पर विशेष बल देते थे।

‘जो हरि सोई राधिका, जो शिव सोई शक्ति,  
जो नारी सोई पुरुष, यामै कुछ न विभक्ति।  
सीता अनसूया सती, अरुंधती अनुहारि,  
शील लाज विद्यादिगुण, लहौ सकल जग नारि।’<sup>27</sup>

इस काल के साहित्यकारों की द्रष्टि नारी के पुनरुत्थान पर ही अधिक केन्द्रित थी। उन्होंने नारी को जीवन, गति एवं सम्मान देने की दिशा में अधिक प्रयत्न किया। इस तथ्य पर भी कवियों का ध्यान गया कि अशिक्षा के कारण भारत की स्त्रियों की दशा विशेष रूप से दयनीय थी। प्रतापनारायण मिश्र ने नारी को लेकर शिक्षा की आवश्यकता की ओर लक्ष्य किया। वे स्त्री-पुरुष दोनों के लिए समान रूप से ही शिक्षा व्यवस्था के पक्षपाती थे। उन्होंने नारी के विवाह सम्बन्धी समस्याओं को भी अपने काव्य का विषय बनाया। मिश्रजी के साथ ही श्रीधर पाठक, राधाकृष्णदास, बालकृष्णदास, किशोरीलाल गोस्वामी आदि सहृदयी कवियों ने पुनर्विवाह के समर्थन के साथ-साथ बालविवाह, अनमेल विवाह, विधवाओं की दुर्दशा, जात-पाँत, अश्वस्थता, व्यसन, व्यभिचार, दंभ, पाखंड एवं सड़ी-गली रूढ़ियों व परंपरा का विरोध जैसे सामाजिक विषयों पर जमकर कविताएँ

लिखकर अंधकारपूर्ण युग को आलोकित करने का काम किया।

इस प्रकार इसकाल के साहित्यकारों ने नारी के सत् रूप के चित्रण पर विशेष बल दिया है। इन कवियों ने नारी को उसके बन्धन से मुक्त करके प्राचीन गौरव फिर से प्रदान करने की चेष्टा की है।

### 3.5.2 द्विवेदीकाल :

आधुनिक काव्यधारा का द्वितीय उत्थान आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के नाम से 'द्विवेदीयुग' कहलाता है। भारतेन्दुजी के बाद हिन्दी साहित्य को रीतिकालीन शृंगारिकता के दलदल से बाहर निकालकर राष्ट्रीयता, प्रगति एवं स्वच्छंदता की भूमि पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को है। उन्हीं के प्रयासों के फल स्वरूप खड़ीबोली का परिमार्जन हुआ और काव्यभाषा के रूप में उसे प्रतिष्ठा मिली। आचार्य द्विवेदी के नेतृत्व में हिन्दी साहित्य को मैथिलीशरण गुप्त जैसे समर्थ कवियों के कारण अन्य विधाओं की अपेक्षा काव्यविधा में अधिक सक्रियता दिखाई देती है। विविध विषयों पर कविताएँ होने लगी। प्रबन्ध काव्य के रूप में कई उल्लेखनीय कृतियाँ इस युग में सामने आईं।

इस युग की नारी चेतना स्वदेश प्रेम की भावना से ओत-प्रोत है। इस युग के कवि प्रेम से अधिक समाज सुधार पर अधिक बल देते हैं। इस समय नारी की परिधि परिवार न होकर राष्ट्र हो गई। इसी कारण 'प्रिय प्रवास' की राधा को हम युगानुरूप परिवर्तित पाते हैं। राधा प्रेमिका अवश्य है, किन्तु वह स्वार्थमय मोह की संकीर्ण गली को छोड़कर निःस्वार्थ प्रणय के प्रशस्त राजमार्ग पर आगे बढ़ती है —

‘मेरे जी में अनुपम महा विश्व का प्रेम जागा।

मैंने देखा परम प्रभु को स्वीय प्राणेश ही में ॥

पाई जाती विविध जितनी वस्तु है जो सबों में।

मैं प्यारे को अमित रंग औ रूप में देखती हूँ ॥’<sup>28</sup>

उन्होंने 'वैदेही वनवास' में सीता को वन जाने के लिए विवश नहीं की है। अपितु राम को चिंतित देखकर स्वयं ही वनवास के लिए प्रस्तुत हुई है और उसकाल में प्रसव हेतु कुलपति के आश्रम में भेजने की प्रथा भी थी। इस प्रकार उन्होंने जहाँ राम के चरित्र को दोष मुक्त करने का प्रयास किया है, वहाँ सीता की बेड़ियाँ भी काटी हैं। वह परवशिनी नारी नहीं दिखती, जिसे धोखे से

वन में छोड़ आए। अपितु वह खुद ही पति के कल्याण के लिए वन जाती है। उसे निर्जन वन में अकेला नहीं छोड़ दिया जाता, बल्कि वाल्मिकी के आश्रम तक छोड़ा जाता है। इस प्रकार हरिऔधजी ने सीता के प्रति नारी के स्वतंत्र तेज को प्रकाशित किया है।

गुप्तजी ने नारी को प्रेम, त्याग, करुणा, सेवा, शक्ति, धैर्य, क्षमता आदि उज्ज्वल गुणों से मण्डित कर एक उच्च सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया है। उन्होंने अपने काव्य ग्रन्थों में आधुनिक नारी के सुख-दुःख को वाणी दी है। उन्होंने उर्मिला एवं यशोधरा जैसी उपेक्षिता नारियों के प्रति आदर एवं श्रद्धा के भाव प्रकट किये हैं। 'विष्णु प्रिया' में उन्होंने नारी की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए लिखा है —

‘अबला के भय से भाग गए वे, उससे भी निर्बल निकले।

नारी निकले तो असती है, नर यति कहकर चल निकले ॥’<sup>29</sup>

‘जय भारत’, ‘भारत-भारती’, ‘पंचवटी’ आदि में कवि ने नारी को बड़ा सम्मान दिलाने का प्रयास किया है। नारी पर सदैव अपना आधिपत्य जमाये रखनेवाले पुरुषों की उन्होंने बड़े कड़े शब्दों में आलोचना की है। समाज में स्त्रियों की दुर्दशा देखकर उन्हें सामाजिक बन्धनों में जकड़ा हुआ पाकर उन्होंने नारी के प्रति सहानुभूति और पुरुष के प्रति खीझ व्यक्त की है। उन्होंने बतलाया है कि सभी शास्त्रों की रचना पुरुषों के द्वारा हुई है। इसीलिए उन्होंने अपने लिए सभी सुविधाएँ कर ली हैं और नारी पर सारे बन्धन लगाकर उसे उपेक्षित एवं वंचित ही रहने दिया है। कवि के ही शब्दों में —

‘नरकृत शास्त्रों के सब बन्धन हैं नारी को लेकर।

अपने लिए सभी सुविधाएँ पहले ही कर बैठे नर ॥’<sup>30</sup>

‘साकेत’ में भी उन्होंने सीता एवं उर्मिला को नये ढंग से उभारा है। उनकी नारी ‘अंचल में दूध और आँखों में पानी’ की करुणामूर्ति की प्रतिक बन गई है। रामनरेश त्रिपाठी ने नारी को पुरुष की मूल प्रेरणा शक्ति के रूप में अपनाया है।

इस प्रकार इसकाल के अधिकांश साहित्यकार स्त्री शिक्षा के पक्षपाती तो थे, किन्तु वे स्त्रियों को पुरुषों से भिन्न प्रकार की शिक्षा देने के पक्षधर थे। जिससे स्त्रियाँ सुगृहिणी बन सकें तथा पुरुषों से प्रतिस्पर्धा करने के बजाय उनसे सहयोग करें। इसयुग के कवियों ने नारी उत्थान के लिए अनेक सामाजिक कुरीतियों को दूर करने की आवश्यकता महसूस की। पर्दाप्रथा, बाल विवाह,

अनमेल विवाह, दहेज, वैश्यावृत्ति आदि सामाजिक समस्याओं पर उन्होंने अपने विचार व्यक्त किये। इस प्रकार द्विवेदीयुगीन कवि सामाजिक चेतना के साथ-साथ राष्ट्रीय उद्बोधन, जीर्ण-शीर्ण रुढ़ियों तथा परंपराओं का परित्याग कर नारी जागरण का नव संदेश लेकर आगे बढ़े।

### 3.5.3 छायावाद काल :

छायावादी कवियों ने नारी के उदात्त स्वरूप का चित्रण किया है। अंग्रेजों ने भारतीय नारी पर आरोप लगाया था कि भारतीय नारी बहुत पिछड़ी हुई एवं दुर्बल है। छायावादी कवियों ने उस आरोप का उत्तर देने के लिए नारी को देवी, माँ, सहचरी, सखी, बेटि और बहन के रूप में स्थापित किया। आधुनिक युग में नारी की गरिमा को सबसे बड़ा अर्घ्य छायावाद के सर्वोत्कृष्ट कवि श्री जयशंकर प्रसाद ने चढ़ाया है। वे नारी स्वातंत्र्य के बड़े समर्थक थे। उनके मन में नारी के प्रति विशेष सहानुभूति और करुणा है। उन्होंने अपने महाकाव्य 'कामायनी' में नारी को श्रद्धा के रूप में अंकित कर उसके औदार्य की प्रशंसा भी की है। कवि कहते हैं —

“नारी तुम केवल श्रद्धा हो,  
विश्वास रजत नग जगतल में।  
पीयूष स्रोत सी बहा करो,  
जीवन के सुन्दर समतल में ॥”<sup>31</sup>

उनकी 'बिती विभावरी' कविता नारी जागरण का संदेश देनेवाली कविता है।

आधुनिक युग के हिन्दी कवियों में पंतजी की नारी भावना बड़ी ही उदात्त एवं उच्चकोटी की है। नारी के प्रति अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए उन्होंने लिखा है —

“यदि स्वर्ग कहीं है पृथ्वी पर,  
तो वह नारी के उर के भीतर ॥”<sup>32</sup>

वे कहते हैं कि नारी आधुनिक युग में आकर मानवी बन गई हैं।<sup>33</sup> उन्होंने नारी की मुक्त का भी आह्वान किया है। उनके मतानुसार नारी योनी मात्र नहीं है, वह भी मानवी है। अतः उसे भी प्रतिष्ठित एवं स्वाधीन बनाना हमारा कर्तव्य है।<sup>34</sup> उन्होंने नारी को पावन, पुनित गंगा का रूप प्रदान करते हुए कहा है —

‘तुम्हारे छूने में था प्राण, संग में पावन गंगा स्नान।  
तुम्हारी वीणा में कल्याण, त्रिवेणी की लहरों का गान ॥’<sup>35</sup>

साथ ही साथ उन्होंने फूल, विहग, तितली, लहर और मार्जरी आदि बनकर स्वच्छन्दता से विचरनेवाली आधुनिक नारी की निन्दा भी की है। उसके मतानुसार नारी चाहे तो पृथ्वी को स्वर्ग भी बना सकती है और नरक भी।<sup>36</sup>

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि 'निराला' ने भी नारी के उदात्त रूप का चित्रण किया है। उन्होंने नारी को सांसारिक जीवन की संगिनी के रूप में देखा है, जो सूने जीवन को आनंदित कर देती है।

महादेवी वर्मा ने नारी जाति के उत्थान के लिए प्रयत्न किये हैं। उन्होंने अपने साहित्य में नारी जीवन की गंभीर से गंभीरतम समस्याओं को उखाड़कर रखा है। किन्तु काव्य में उनकी आत्मा चिरन्तन सुहागिनी, चिर विरहिणी बनकर व्यक्त हुई है। भारतीय नारी की असहायता, उपेक्षिता स्थिति का संकेत निम्न पंक्तियों में मिलता है।

“मैं नीर भरी दुःख की बदली ।  
परिचय इतना इतिहास यही  
उमड़ी कल भी मिट आज चली ॥”<sup>37</sup>

इन कवियों की यह निश्चित धारणा है कि अर्धांगिनी को शिक्षा का उतना ही अधिकार है, जितना पुरुष को।<sup>38</sup>

इस प्रकार छायावादी कवियों ने नारी को सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति ही नहीं माना है, किन्तु शीतल छाया देनेवाली जीवन शक्ति माना है।

### 3.5.4 प्रगतिवाद :

प्रगतिवादी कवियों ने नारी के प्रति श्रद्धा और सहानुभूति प्रकट की है। नारी के प्रति उनकी द्रष्टि काल्पनिक या वासनाभरी न होकर सहज, सरल और स्वस्थ रही है। प्रगतिवादी कवि नारी को नर के समान ही मानते हैं। भारतीय जीवन में नारी को नर के अधिन माना गया है। किन्तु नारी स्वातन्त्र्य और आंदोलनों के कारण उनकी स्थिति में कुछ परिवर्तन आया है। इस काल के मानवतावादी कवियों ने नारी की जटिल समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया है। वे नारी को अत्याचारों से मुक्त देखना चाहते हैं। जो नारी नर की छायामात्र ही है, ऐसी नारी की दयनीय दशा का पंतजी ने खुलकर वर्णन किया है।

“वह नर की छाया नारी! चिर नमित नयन पद विजड़ित,  
वह चकित, मीत हिरनी सी निज चरण चाप से शंकित,

मानव की चिर सह धर्मिणी, युग-युग से मुख अवगुण्ठित,  
स्थापित घर के कोने में, वह दीप शिखा सी कम्पित ।”<sup>39</sup>

प्रगतिवादी कवियों ने नारी को विशेष द्रष्टि से देखा है। उन्होंने नारी के दासी रूप का नाश करके जीवन संघर्ष में पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलनेवाली ‘जीवन सहचरी’ बना दिया। उन्होंने नारी की स्वतंत्रसत्ता का स्वीकार किया है। हाँ, इसकाल के कवियों ने नारी के विरुद्ध आक्रोश भी व्यक्त किया है, किन्तु साथ ही साथ पुरुष के द्वारा हो रहे नारी शोषण को दूर करने के लिए नारी को ललकारा भी है। श्री रामनारायण पाण्डेयने नारी के प्रति संवेदना व्यक्त करते हुए कहा है कि —

‘नारी का उर ही नारी की व्यथा जान सकता है,  
नर का उर क्या नारी की व्यथा जान सकता है ॥’<sup>40</sup>

राष्ट्रीय कविता के प्रतिनिधि कवि रामधारीसिंह ‘दिनकर’ ने नारी के प्रति अत्यधिक श्रद्धाभाव व्यक्त किया है। उन्होंने ‘उर्वशी’ में नारी और नारी जनित प्रेम का बड़ा ही सुन्दर निरूपण किया है। वे कहते हैं कि नारी महासेतु है, जिस पर चलकर नया मनुष्य उद्देश्य से द्रश्य जगत में अवतरित होता है। कवि के शब्दों में —

“नारी ही वह महासेतु, जिस पर अद्रश्य से चलकर  
नये मनुज नव प्राण सद्रश् जग में आते रहते हैं ।”<sup>41</sup>

दिनकरजी ने ‘उर्वशी’ में नारी के कई रूपों को व्यंजित किया है। आधुनिक नारी समय की माँग के अनुसार अपने रूप-यौवन को अक्षुण्ण बनाये रखना चाहती है। चिरकाल स्थायी यौवन की रक्षा के लिए वह नारी के गरिमामय रूप ‘माँ’ से भी मुँह मोहती है। कवि दिनकर नारी के इस पूजनीय रूप की वन्दना मेनका नामक अप्सरा के द्वारा करवाते हैं।

“माँ बनते ही त्रिया कहाँ से कहाँ पहुँच जाती?  
गलती है हिम शिला सत्य है, गठन देह की खोकर,  
पर हो जाती वह असीम कितनी पयस्विनी होकर?  
युवा जननि को देख शांति कैसी मनमें जगती है?  
रूपमती भी सखी! मुझे तो वही त्रिया लगती है,  
अथवा खड़ी प्रसन्न पुत्र का पलना झुला रही हो ॥”<sup>42</sup>



अज्ञेयजी का 'चिन्ता' काव्य नारी के चित्रण का ही काव्य है। उनके अन्य काव्यों में भी नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण उपलब्ध होता है।

नरेन्द्र शर्मा ने 'द्रौपदी' में नारी के विचारों को प्राधान्य दिया है। द्रौपदी के रूप में कवि ने नारी को जीवन की शक्ति का प्रतीक माना है। वे कहते हैं —

“नारी कृत्या, मृत्यु उर्वशी,  
जननी, जाया माया,  
क्षीर सिन्धु - धारिणी, तारिणी,  
महाशून्य की काया,  
ऋता, नृता-चिद-अचिद-शक्ति वह,  
नीरा-नाल-कमलिनी,  
वह हिरण्य गर्भा है जिसमें,  
सब ब्रह्माण्ड समाया।”<sup>43</sup>

उनके मतानुसार नारी तो शक्तिशाली है ही साथ ही उनके आँसुओं में भी बड़ी शक्ति होती है। वे कहते हैं कि इन्हीं आँसुओं के कारण ही महाभारत हुआ।<sup>44</sup>

इन कवियों ने नारी को उसकी समग्रता में देखा है। नारी के बाह्य रूप सौंदर्य के साथ-साथ उसके आन्तरिक पथ को कवि ने परखा है। उसके हृदय में स्थित मृदुल भावों की कवियों ने विशद चर्चा भी की है। नविनजी लक्ष्मण-उर्मिला के लिए अनेकानेक रूपों की व्यंजना करते हैं, जो कवि की नारी के प्रति असीम श्रद्धा को ही व्यक्त करती है।

“तुम हो प्रकृति-रूपिणी देवी,  
तुम हो आदि शक्ति प्रतिमा  
त्वमसि मदीया चिर-प्रेरणा,  
त्वमहिं मदीय भक्ति प्रतिमा।  
तुम मेरा साहस, बल वैभव,  
तुम मम हास-विलास, प्रिये,  
तुम मम नेह सरणि, तुम मेरा,  
नव सन्देशोल्लास, प्रिये॥”<sup>45</sup>

स्त्री पुरुष सम्बन्धों को अभिव्यक्त करते हुए कवि कहते हैं कि यदि नर खड़ी दुपहरी है, तो नारी उसकी शीतल छाया है। नर और नारी के दो रूप बनाकर प्रभु की लीला प्रकट हुई है। कवि के शब्दों में —

“नर यदि है खर दोपहरी, तो नारी है शीतल छाया।

नर नारी दो रूप बनाकर, प्रकटी है विभु की माया ॥”<sup>46</sup>

इस युग के समस्त काव्य नारी सुधार की द्रष्टि लिए हुए है, किन्तु कुछ काव्य ऐसे भी है, जो बिल्कुल सीधे ढंग से सामाजिक समस्याओं को लेकर नारी पर प्रकाश डालता है। अयोध्यासिंह उपाध्याय, गोपालशरणसिंह, मैथिलीवियोगी हरि, रामेश्वर शुक्ल आदि का ध्यान इस ओर विशेष रूप में आकर्षित हुआ। इन कवियों ने वैवाहिक समस्याओं, विधवा के कष्टों, पर्दाप्रथा के दुष्परिणामों, नारी शिक्षा की अनिवार्यता आदि को अपने काव्य का विषय बनाकर इन समस्याओं का यथातथ्य निरूपण करते हुए नारी गौरव की स्थापना की है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रगतिवादी कवियों ने नारी को विविध द्रष्टिकोण से देखा है। इन्होंने कहीं नारी प्रेम की महिमा प्रतिस्थापित की हैं, कहीं पुरुषों के द्वारा शोषित नारियों का चित्रण किया है, तो कहीं किशान, मजदूरनी आदि निम्नवर्ग की शोषित-पीड़ित नारियों की दयनीय अवस्था का भी चित्रण किया है। इन कवियों ने कल्पना का सहारा न लेकर नारी जीवन के यथार्थ चित्र अंकित किये हैं।

### 3.5.5 प्रयोगवाद :

प्रयोगवादी कविता पर मनोविज्ञान के सिद्धांतों का गहरा प्रभाव है। क्योंकि प्रयोगवादी कविता के मुख्य प्रेरणा स्रोत डॉ. सिगमंड फ्रायड है। उनके मतानुसार समस्त कला-सृजन के मूल में कलाकार की दमित और कुंठित काम वृत्तियों की सत्ता होती है। ये वृत्तियाँ विविध प्रकार की बाह्य जिज्ञासाओं के कारण कलाकार के अवचेतन अथवा अचेतन मन में दबी पड़ी रहती है और अवसर आने पर उसकी कला द्वारा अपने निकास का मार्ग खोज लेती है। व्यक्ति के अवचेतन में दबी इन्हीं दमित एवं कुंठित काम-वृत्तियों की सत्ता वस्तुतः प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क में होती है। अपनी जिन इच्छाओं के कारण अभिव्यक्त नहीं कर पाता, वे सब उसके अवचेतन अथवा अचेतन मन में एकत्र होती रहती है और इस प्रकार विविध मानसिक रोगों तथा विकृतियों को जन्म देती है। कलाकार के पास कला का माध्यम होता है तथा वह अपनी इन दमित वृत्तियों को अपनी कला के

माध्यम से उदात्त रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करती है।<sup>47</sup> फ़्रोयड की सामान्य मान्यताओं का प्रत्यक्ष-परोक्ष निर्णय निकालकर हिन्दी के प्रयोगवादी कवि उनकी सहायता से अपनी विचार प्रक्रिया विकसित करते और अपने काव्य का स्वरूप निर्माण करते दिखाई देते हैं। इसकाल के कवियों के काव्य में ज्यादातर अवचेतन मन की कुंठाओं का चित्रण देखने को मिलता है। इसकी अभिव्यक्ति में वे यथार्थवादी बन गये हैं। प्रयोगवादी कवियों में अज्ञेय, गजानन माधव मुक्तिबोध, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा, केदारनाथ अग्रवाल, नैमिचन्द्र प्रमुख हैं। ये कवि व्यक्तिवादी विचारधारा के कवि हैं ! जो नये-नये प्रयोगों और कला चमत्कारों द्वारा अपनी वैयक्तिक कुण्ठाओं का प्रकाशन कर, पाठकों को चमत्कृत कर अपनी ओर आकर्षित करने में अत्यंत पटु हैं। ये कवि नारी को वासनापूर्ति का साधन मानते हैं। इस भावना की अभिव्यक्ति करनेवाले केवल 'अंचल' हैं। उनके काव्य में काम-वासना एवं नारी के यौन-संबंधों का मुक्त चित्रण मिलता है। एक ओर वे नारी के रूप की मादकता का वर्णन करते हैं और दूसरी ओर उसमें छलतापूर्णता भी देखने लगते हैं।

“किन्तु नारी, सिर्फ नारी है। तुम्हें मैं जानता हूँ,  
तुम प्रणय की हो खेलाड़िन मैं तुम्हें पहचानता हूँ।”<sup>48</sup>

अज्ञेय इस काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं। उनके काव्य में घोर वैयक्तिकता एवं निराशावादिता एवं यौन भावनाओं का उन्मुक्त अंकन मिलता है। उन्होंने यौन प्रतिकों के द्वारा सामाजिक वर्गचेतना पर व्यंग करते हुए लिखा है —

“घिर गया नभ, उमड़ आये मेघ काले,  
भूमि के कंपित उरोजों पर झुका-सा  
विशद, श्वासाहत, चिरातुर,  
छ गया इन्द्र का नील वक्ष,  
वज्र-सा यदि तड़ित-सा झुल सा हुआ सा  
आह मेरा श्वास है उत्ताप्त  
धमनियों में उमड़ आयी है लहु की धार  
प्यार है अभिशप्त  
तुम कहाँ हो नारी।”<sup>49</sup>

प्रयोगवादी कवि प्रेम को मुक्त हृदय की अवस्था मानते हैं तथा इसकी अभिव्यक्ति में किसी

भी बाधा को स्वीकार नहीं करते हैं। धर्मवीर भारती ने प्रेम के इसी उन्मुक्त रूप का समर्थन करते हुए भोग को किसी प्रकार का पाप या शाप मानने से इन्कार किया है।

“अगर मैंने किसी के होठ के पाटल कभी चूमे  
अगर मैंने किसी के नयन के बादल कभी चूमे  
महज् इससे किसी को प्यार मुझ पर पाप कैसे हो।  
महज् इससे किसी का स्वर्ग मुझ पर शाप कैसे हो।”<sup>50</sup>

कुछ कवियों ने अपनी वासनाओं की अभिव्यक्ति को स्वाभाविक मानकर नारी को शारीरिक भूख की तृप्ति का साधन बना लिया है। कवि चाहते हैं कि प्राप्त क्षण को जीवनभर की अनमोल याद बना लिया जाये। इन बातों से कवि की नारी के प्रति कोमल भावना द्रष्टिगत होती है। यथा —

“फिर सहसा कस जायें हाथ कुछ और  
डूब से उभर साथ कुछ और पाये  
हम-तुम अपने को  
नरम दूब पर  
स्वच्छन्द धूप में दो क्षण और नहायें  
बाहै किसी भरम से पुलकें  
ओठ गरम हो जायें।”<sup>51</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रयोगवादी कवि मनोविज्ञान से कभी कम तो कभी ज्यादा प्रभावित रहे हैं। मनोविज्ञान के प्रभाव से कुछ कवियों ने नारी की नग्न प्रकृति का चित्रण किया है। कुछ कवियों ने अपनी वासनाओं की अभिव्यक्ति की तृप्ति का साधन माना है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इस काव्यधारा के कवियों ने अनेक प्रयोगों द्वारा अपने मन की अनिश्चित मनोदशा को प्रकट किया है।

### 3.5.6 नई कविता :

नयी कविता के प्रारंभ संबंधी विभिन्न विद्वानों में मतभेद हैं। रामेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी के मतानुसार ‘नयी कविता’ का प्रारंभ सन् 1940 के आसपास हो गया था। प्रयोगवादी कविताओं में जो नारी को लेकर भद्दा और वासनात्मक चित्रण की प्रधानता थी, वह नयी कविता तक आते-आते कम होने लगी। इस काल में नारी को नये नज़रिये से देखने का प्रयत्न किया गया। नये कवियों

ने उसे रूढ़ियों से मुक्त कर नयी सामाजिक चेतना प्रदान की। उक्त काल के कवियों में गिरिजाकुमार माथुर, गजानन माधव मुक्ति बोध, शमशेर बहादूरसिंह, धर्मवीर भारती, अज्ञेय, नरेश महेता, कुँवर नारायण, जगदीशचंद्र गुप्त, दुष्यंत कुमार, केदारनाथ सिंह आदि प्रमुख हैं।

धर्मवीर भारती की 'कनुप्रिया' नारी अस्मिता से संबंधित सशक्त रचना है। इस कृति में कवि ने नारी जागृति, नारी चेतना, नारी अस्मिता एवं नारी समस्या के द्रष्टिकोण को प्रस्तुत करने का यथेष्ट प्रयत्न किया है। 'कनुप्रिया' के माध्यम से कवि ने आधुनिक नारी की पीड़ा को प्रकाशित किया है। 'कनुप्रिया' की राधा अपनी प्रणयवाली स्थिति और कृष्ण की युद्धनीति में किसी तरह ताल-मेल नहीं बिठा पाती है। उसके लिए कनु ही सर्वस्व है। वह उसका सखा है, बन्धु है, रक्षक है, लक्ष्य है, आराध्य है, सहचर है, शिशु है और स्वयं उसकी सखी है, राधिका है, रक्षिका है, वधू है, सहचरी है, माँ है। राधा इतिहास का सृजन नये सिरे से करना चाहती है। वह मानव समस्याओं का हल युद्ध से नहीं, प्रेम से करना चाहती है। राधा कृष्ण के प्रणय में बँधकर दिगकाल की सत्ता को नियंत्रित करना चाहती है। वह अपने अस्तित्व के प्रति सचेत है। नारी केलि-सखी बनकर बाँहों का प्यार तो पा सकती है, किन्तु सामाजिक प्रतिष्ठा क्यों नहीं पा सकती? अपने मन के इसी भाव को वह कनु से पुछती है —

“सुनो मेरे प्यार !

प्रगाढ़ केलिक्षणों में अपनी अन्तरंग

सखी को तुमने बाहों में गूँथा

पर उसे इतिहास में गूँथने से हिचक क्यों गये प्रभु !

बिना मेरे कोई भी अर्थ कैसे निकल पाता

तुम्हारे इतिहास का...?”<sup>52</sup>

राधा के माध्यम से हम कह सकते हैं कि आधुनिक नारी अपने सामाजिक स्वरूप के प्रति अत्यधिक सचेत है। इस तथ्य से वह भली-भाँति परिचित है कि वह समाज का एक आवश्यक अंग है। समाज में अपनी स्थिति को कायम रखने के लिए प्रयत्नशील भी है, जो उसके मानसिक विकास को उजागर करता है। इस प्रकार राधा के माध्यम से कवि ने आधुनिक युगीन अपने-आप में सिमटकर पड़ी हुई नारी का द्रष्टिकोण प्रस्तुत किया है।

कवि शमशेर बहादूरसिंह की गणना पिछले पचपन वर्षों की हिन्दी कविता में शीर्ष स्थानीय कवियों में सादर की जाती है। वे उन पहले कवियों में रहे हैं, जिन्होंने हिन्दी कविता को नये प्रयोग

करने की साहसिकता प्रदान की। उनकी आवाज में सच्चापन और खरापन है। क्योंकि उन्होंने अनेक भौतिक कष्ट सहकर भी बौद्धिक उपेक्षा की परवाह किए बिना अपनी आवाज को दबने नहीं दिया। उनकी 'टूटी हुई बिखरी हुई' की 'चूका भी हूँ मैं नहीं' में उनके आवाज़ की असर देखिए —

“चूका भी हूँ मैं नहीं  
कहाँ किया मैंने प्रेम  
अभी  
जब करूँगा प्रेम  
पिघल उठेंगे  
युगों के भूधर  
उफन उठेंगे  
सात सागर  
किन्तु मैं हूँ मौन आज  
कहाँ सजे मैंने साज  
अभी।”<sup>53</sup>

उनकी 'प्रेयसी' कविता भी प्रस्तुत संदर्भ में उल्लेखनीय हैं -

“तुम मेरी पहली प्रेमिका हो  
जो आइने की तरह साफ  
बदन के माध्यम से ही बात करती हो  
और शायद (शायद)  
मेरी बात साफ-साफ  
समझाती भी हो  
प्यारी तुम कितनी प्यारी हो  
वह काँसे का चिकना बदन हवा में हिल रहा है  
हवा हौले-हौले नाच रही है  
इसलिए ” .....<sup>54</sup>

दिनकरजी ने 'रश्मिर्थी' में एक ओर नारीगत दुर्बलताओं का चित्रण किया है, वहीं दूसरी ओर नारी के साहस एवं निर्भीकता जैसे गुणों को भी प्रकट किया है। नवजात शिशु के प्रति अपनाई

गई कठोरता के पीछे कुन्ती नारी की दयनीय अवस्था को जिम्मेवार ठहराती है। वह कहती है —

“बेटा धरती पर बड़ी दीन है नारी।  
अबला होती, सचमुच यौषिता कुमारी।  
है कठिन बंद करना समाज के मुख को,  
सिर उठा न पा सकती पतिता निज सुख को।”<sup>55</sup>

किन्तु नारी के प्रति पूज्यभाव रखनेवाले दिनकरजी को नारी की दयनीय अवस्था कतई मंजूर नहीं है। वही कुन्ती कर्ण द्वारा स्वयं के कृत्यों से लज्जित होकर समाज के नियमों और मर्यादाओं के प्रति विद्रोह व्यक्त करने के लिए तैयार हो जाती है। यहाँ कवि की नारीगत चेतना एवं जागृति व्यक्त हुई है। कुन्ती के चित्रण द्वारा कवि ने आधुनिक नारी के मनोभावों को वाचा दी है। कुन्ती समाज के बन्धनों के प्रति विद्रोह करने को तैयार होती है। वह कहती है —

“भागी थी तुझको छोड़ कभी जिस भय से,  
फिर कभी न हेरा तुझको जिस संशय से,  
उस जड़ समाज के सिर पर कदम धरूँगी,  
डर चुकी बहुत, अब और न अधिक डरूँगी।”<sup>56</sup>

नारी के प्रति संवेदनशील, नारी मन के ज्ञाता कवि मैथिलीशरण गुप्त ने ‘जय भारत’ में नारी को उच्चासन पर बिठाया है। उनके मतानुसार सुखी दाम्पत्य जीवन के पीछे नारी का बहुत बड़ा योगदान होता है। पाँच पतियों के होते हुए भी द्रौपदी के जीवन में मधुरता है। सत्यभामा द्रौपदी के सुखी दाम्पत्य जीवन का रहस्य जानना चाहती है। द्रौपदी उसके सम्मुख जो रहस्य बताती है, वह आधुनिक परिवेश में भी उतना ही उपादेय एवं महत्वपूर्ण है।

“बाहर चूर-चूर होकर नर बहुधा घर आता है,  
नारी का मुख वहां निरख वह फिर नवता पाता है।  
यदि ऐसा न हुआ तो समझो दोनों बड़े अभागी,  
दोनों की ही सदगृहस्थता अब भागी तब भागी।”<sup>57</sup>

केदारनाथ मिश्र ‘प्रभात’ ने ‘कैकेयी’ में नारी को गरीमा प्रदान की है। उन्होंने कैकेयी को कलंक से बचाया है। उनके शब्दों में —

“वन की ओर राम का जाना

मानवता की जय है  
 आर्य-सभ्यता की, चिर मानव  
 स्वतन्त्रता की जय है।”<sup>58</sup>

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इस काल के कवियों ने नारी को उन्नत बनाने का प्रयास किया है। इन्होंने अपने काव्यों में नारी को भी अपने विचारों को व्यक्त करने का सुअवसर प्रदान किया है। कहीं-कहीं समाज के रिवाजों-मान्यताओं के प्रति नारियों में विद्रोह का भाव भी पाया जाता है। अतः कहा जा सकता है कि इन कवियों ने नारी को उच्च स्थान दिलाया है।

### 3.5.7 नवगीत :

मानव हृदय की अनुभूतियों को प्रकट करने का माध्यम है गीत। प्रकृति के द्वारा गीतों की ध्वनि निरंतर प्रस्फूर्ति होती रहती है। जिसका मानव मन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। मनुष्य प्रकृति प्रेमी जीव है। अतः प्रकृति के लालित्य से प्रभावित होकर गीतों की स्फूर्णा होना अत्यन्त साहजिक है। प्रकृति, प्रेम, साहस, शौर्य आदि भावों को नवगीतकारों ने अपने गीतों में व्यक्त किया है।

इसका प्रारम्भ लगभग ‘50 से हुआ। सर्वप्रथम ‘58 में परम्परागत शब्द ‘गीत’ नवगीत के नाम से अलंकृत हुआ।<sup>59</sup> विभिन्न नवगीतकारों के सहयोगी संकलन ‘गीतांगिनी’ के प्रकाशन से नवगीत ने आंदोलन का रूप ले लिया। तत् पश्चात् विभिन्न गोष्ठियाँ, पत्रिकाओं, आलोचनात्मक कृतियों और गीत संकलनों द्वारा लगभग ‘60 तक स्थिर स्वरूप और एक दिशा प्राप्त कर सका। गीतों की समसामयिकता, उसकी तत्कालिक लोकप्रियता और उसके क्षणिक मन बहलाव की प्रतिक्रिया रूप में युगबोध से जुड़ने का संकल्प लेकर नवगीत ने जन्म लिया। सौ प्रथम ‘निराला’ गीत में नवगीत की विशेषताओं को लेकर आये। तत्पश्चात् बच्चन, ‘अंचल’, ‘सुमन’ के गीतों में भी इन विशेषताओं के दर्शन होते हैं। तीनों सप्तकों के कवि भी अपने गीतों में नवगीतकारों के रूप में प्रस्तुत हुए। बाद मुक्त गीतकार छायावादोत्तरकाल के सम-सामयिक भावबोध से गीत-धारा को प्राणवान बनाने के प्रयत्न कर रहे थे। ‘अंचल’, बच्चन, भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र, नीलकंठ तिवारी, नेपाली, सोहनलाल द्विवेदी के अतिरिक्त अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, नागार्जुन और त्रिलोचन आदि ने गीत-धारा को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। लेकिन ‘वाद द्रष्टि’ के आग्रह से प्रभावित होने के बाद गीत-धारा के सामने एक चुनौती उपस्थित हो गई।



आजादी के पश्चात् अनेक बाद मुक्त गीतकारों ने अपनी रचनाओं द्वारा गीत-विधा को समृद्ध किया। जिनमें बलवीरसिंह 'रंग', 'नीरज', रमानाथ अवस्थी, शिशुपालसिंह, नीलकंठ तिवारी, विरेन्द्र मिश्र, तन्मय बुखारिया आदि प्रमुख हैं। गीतकारों ने गीतों के माध्यम से प्रेम और प्रणय की अनुभूतियों को भी अभिव्यक्त किया है। बच्चन, 'नीरज', शंभुनाथसिंह, शान्ति स्वरूप 'कुसुम', पद्मा 'सुधि', बालस्वरूप 'राही', भारत भूषण अग्रवाल, रामदरश मिश्र, रवीन्द्र 'भ्रमर' आदि कवि प्रणय की सुन्दर भावना के कतिपय प्रमुख गायक हैं। प्रणय की अनुभूति, स्त्री-साहचर्य की कामना, विगत प्रणय की स्मृति आदि स्थितियों को उनकी कविताओं में देखा जा सकता है, जिसमें विगत प्रेम की अनुभूतियों को प्रकृति के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है।

“गीत की आखिरी मीठी लकीर सी

प्यार भी डूबेगा गोरी सी बाहों में

ओठों में, आँखों में

फूलों में डूबे ज्यों

फूल की रेशमी-रेशमी छाहें

आज हैं - केसर रंग रंग बन।”<sup>60</sup>

दूसरे तार सप्तक में संकलित भारती की 'गुनाह का गीत' और 'गुनाह का दूसरा गीत' नामक कविताओं में भी प्रेम की कुण्ठित भावना की अभिव्यक्ति की गई है। देखिए —

“इन फरोजी होठों पर बरबाद।

मेरी जिन्दगी।

तुम्हारे स्पर्श की बादल-धुली कचनार नरमाई!

तुम्हारे वक्ष की जादुभरी मदहोश गरमाई!

तुम्हारी चितवनों में नरगिसों की पात शरमाई!

किसी भी मोल पर मैं आज अपने को लुटा सगता!

सिखाने को कहा मुझसे प्रणय के देवताओं ने

तुम्हें आदिम गुनाहों का अजब-सा इन्द्र धनुषी स्वाद!

इन फरोजी होठों पर बरबाद!

मेरी जिन्दगी बरबाद।”<sup>61</sup>

यहाँ नारी का सौन्दर्य प्राकृतिक सुषमाओं का पर्याय बन जाता है। देवताओं को भी नारी चरणों के प्रति इर्ष्या जगती है।

काम-प्रसंगों का उन्मुक्त किन्तु कलात्मक, भावनात्मक एवं गहरा चित्रण भारतीजी की प्रणयानुभूति से संबंधित कविताओं की खासियत है। प्रणय के इन क्षणों में मधुरता एवं मादकता कम नहीं है —

“छूरही मेरे शील कपोल  
किसी की हलकी-हलकी साँस  
नये फूलों की शहजादी  
नींद में बेसुध मेरे पास।”<sup>62</sup>

वीरेन्द्र मिश्र के ‘स्पर्श-स्मृति’ नवगीत में इन भावों को इस प्रकार प्रकट करते हैं -

“थरथराता एक माँसल स्पर्श  
ठंडी हवाओं में  
एक रुठन लँगकर आती दशा  
एक मधुवर्णी मनौती की निशा  
संधिपत्र लिए खड़ा है मेघ  
विद्युत सिमाओं में  
गंध जो तरु के तले खोई हुई  
झुलती है बेखबर सोई हुई  
फरफराता एक निर्झर  
चन्द्रमा की कलाओं में  
क्या कहूँ वर्षों-ऋणों की भीड़ है  
अन लिखे आमंत्रणों की भीड़ है  
चक्रवर्तिनी हो तुम्हीं  
अभिव्यक्ति की सब विधाओं में।”<sup>63</sup>

इस प्रकार यहाँ नारी की चक्रवर्तिनी स्थिति को प्रकट किया गया है। नई कविता में नारी को सखी माना गया, वहाँ नवगीत में नारी का परम्परागत स्वरूप प्रकट होता है।

### 3.5.8 साठोत्तरी कविता :

सन् 1960 के पश्चात् प्रकाश में आनेवाली कविताओं को 'साठोत्तरी कविता' कहा गया है। सन् 1960 तक आते-आते नयी कविता में एक प्रकार की निश्चलता आ गयी और 1960 से 1970 तक काव्य के क्षेत्र में विभिन्न काव्यांदोलनों का प्रादुर्भाव हुआ। सन् 1960 के बाद ही इन विभिन्न काव्यांदोलनों से सम्बन्धित विभिन्न पत्रिकाओं के प्रकाशन प्रारम्भ हुए। प्रत्येक पत्रिका किसी नवीन काव्यांदोलनों से सम्बन्धित होती थी। इस कालावधि में 'नयी कविता' में विविध नूतन प्रयोग करने का काल है। प्रबुद्ध व उत्साही कवियों ने अपनी सोच को दिशा देते हुए सामयिक कविता को विविध नामकरणों से सज्जित किया है। साठोत्तरी कविता में 'अकविता' की अधिक बोलबाला थी। अकविता का प्रारम्भ जगदीश चतुर्वेदी द्वारा संपादित (1961 में प्रकाशित) चौदह कवियों के संकलन 'प्रारम्भ' से माना जाता है। इस संग्रह में जगदीश चतुर्वेदी, कैलाश बाजपेयी, नरेन्द्र वीर, राजकमल चौधरी, केशु, ममता अग्रवाल, श्याम परमार, विष्णुचन्द्र शर्मा, श्याम मोहन श्री वास्तव, मनमोहिनी रमेड़ गौड़, राजीव सक्सेना, स्नेहमयी चौधरी और नर्मदा प्रसाद त्रिपाठी इन चौदह कवियों की कविताएँ संकलित हैं।

अकविता के बाद 'बीट कविता', 'भूखी पीढी की कविताएँ', 'स्मशानी पीढी की कविताएँ', 'ताजी कविता', 'सांप्रतिक कविता', 'युयुत्सावादी कविता', 'अति कविता', 'निर्दिशायामी कविता', 'सहज कविता', 'सनातनी सूर्योदयी नूतन कविता', 'पोस्टर कविता', 'साठोत्तरी कविता' आदि कविताओं का संकलन हुआ। साठोत्तरी कविता में जिन छः कवियों को संकलित किया गया, उनमें सुरेश सलिल, बैजनाथ गुप्त, ललित शुक्ल, चन्द्रेश गुप्त, सलिल गुप्त और जीवन शुक्ल हैं। इस कविता में 'आधुनिकता की प्रक्रिया' को अपनी रचना का एक अंग माना गया है। इस कविता के तीन चरण हैं।

- (1) सन् 1961 से 1970 तक का पहला चरण है। जिसे 'सातवें दशक की कविता' भी कह सकते हैं। इस चरण में 'अकविता' नामक आंदोलन विशेष रूप से चर्चित रहा है।
- (2) सन् 1971 से 1980 तक का दूसरा चरण है। जिसे कुछ समीक्षक 'आठवें दशक की कविता' भी कहते हैं। इस चरण में 'विचार कविता' नामक आन्दोलन विशेष रूप से सामने आया है।
- (3) सन् 1981 से 1990 तक का तीसरा चरण है। जिसे अधिकांश समीक्षकों ने 'नौवें दशक

की कविता' कहा है। इस चरण में कोई विशेष काव्यांदोलन द्रष्टिगत नहीं होता है।

साठोत्तरी कवियों ने नारी को अपने-अपने ढंग से व्याख्यायित किया है। इन कवियों ने प्रेम को गंभीर एवं जटिल विषय के रूपमें न लेकर एक प्रक्रिया के स्तर पर ही स्वीकार किया है। इस काल के कवियों में ज्यादातर कवि ऐसे हैं, जो नारी को भोग की वस्तु मानते हैं। इस काल में नारी की अवदशा देखने को मिलती है।

अब हम साठोत्तरी कविता का क्रमशः दशकों के आधार पर अध्ययन करेंगे।

### 3.5.9 सातवें दशक की कविता :

सातवें दशक की कविता को स्वरूप प्रदान करने में रामदेव आचार्य, दूधनाथ सिंह, राजीव सक्सेना, रघुवीर सहाय, रवीन्द्रनाथ त्यागी, कैलास बाजपेयी, रामदरश मिश्र, कुन्तल कुमार सेन, रामरतन नीरव, उमाचरण महमिया, हरिठाकुर, अशोक बाजपेयी, ओमानंद रू. सारस्वत आदि का नाम उल्लेखनीय है। इस दशक की कविता पर विचार किये जाने पर यह तो स्वतः स्पष्ट है कि “नए कवियों का एक ऐसा वर्ग उभरा है, जिसने प्रत्येक स्थिति के प्रति अनास्था, प्रत्येक चिन्ता के प्रति अनाग्रह, प्रत्येक परंपरा और प्रत्येक संस्कार के प्रति अनादर प्रकट किया है।”<sup>64</sup> सातवें दशक के कवि को लगता है कि आज भी नारी की स्थिति एक बच्चे पैदा करनेवाली मशीन से अधिक नहीं है। मोना गुलाटी तथा मणिक मोहिनी नारी की विवश स्थिति से असन्तुष्ट होकर समस्त पुरुष समाज को ही अपने विद्रोह तथा आक्रोश के घेरे में समेट लेती हैं। श्री रामकिशोर अग्रवाल ‘मनोज’ के ‘सियविजन वनवास’ में नारी जागरण का स्वर स्पष्ट है। वनवास के आदेश को सीता मौन होकर ही नहीं स्वीकारती प्रत्युत्त वह राम के सम्मुख उनके आदेश को अन्यायपूर्ण भी सिद्ध करती है।

“न्याय धर्म क्या राजधर्म का आमुख अंग नहीं है।

मुझे प्रजा से पृथक समझना क्या यह व्यंग नहीं है।

X X X

ऐसा न्याय प्रजा को देंगे जैसा मुझे दिया है,

तो क्या यश रह पाएगा जो अब तक प्राप्त किया है।”<sup>65</sup>

दिनकर की ‘उर्वशी’ नारी के कई रूपों को व्यंजित करती है। आधुनिक नारी अपने रूप-यौवन को बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील है और अपने यौवन की रक्षा के लिए वह नारी के गरिमामय रूप माँ से मुँह मोड़ती है। कवि दिनकरजी ने नारी के इस पूजनीय रूप की बंदना मेनका

नामक अप्सरा के द्वारा करवाई है।

“माँ बनते ही त्रिया कहाँ से कहाँ पहुँच जाती?  
गलती है हिम शिला, सत्य है गठन देह की खोकर,  
पर हो जाती वह असीम कितनी पयस्विनी होकर?  
युवा जननि को देख शांति कैसी मन में जगती है?  
रूपमति भी सखी ! मुझे तो वही त्रिया लगती है,  
जो गोदी में लिये क्षीण मुख शिशु को सुला रही हो,  
अथवा खड़ी प्रसन्न पुत्र का पलना झुला रही हो।”<sup>66</sup>

दुष्यंत कुमार कृत ‘एक कंठ विषयापी’ में नारी चेतना पौराणिक धरातल के माध्यम से युगीन चेतना को व्यंजित करती है। इसमें कवि ने नारी के परम्परागत उज्ज्वल रूप, पति के प्रति एक निष्ठता को व्यक्त किया है। पति का सम्मान भारतीय पत्नी को अपने सम्मान से अधिक प्रिय है। सती अपने पिता के घर में पति शिव का यज्ञ में स्थान नहीं देखती है तो वह असंतुष्ट हो जाती है। क्योंकि

“स्वामी !  
पत्नी की मर्यादा  
पति की मर्यादा से होती है।  
और आपके इस आयोजन में  
सभी देवताओं के बीच  
कहीं शंकर का स्थान नहीं।  
सती  
अथवा कोई भी नारी  
यह कैसे सह सकती है ?।”<sup>67</sup>

गजानन माधव मुक्तिबोध ने ‘चाँद का मुँह ठेढ़ा है’ में नारी को विभिन्न रूपों को प्रस्तुत किया है। उन्होंने असंगति बोध, विकृत यौन सम्बन्ध आदि को उद्घाटित किया है।

“सड़कों के पिछवाड़े  
टूटे-फूटे द्रव्यों में,

गन्दगी के काले नाले के झाग पर  
बदमस्त कल्पना सी फैली थी रात-भर  
सैक्स के कष्टों के कवियों के काम ।

X X X

नंगी सी नारियों के  
उधरे हुए अंगों की  
विभिन्न पोजों में  
लेटी थी चाँदनी  
सफेद  
अण्डवीयर सी, आधुनिक प्रतिकों में,  
फैली थी  
चाँदनी ।  
करफ्यु नहीं यह पसन्दगी..... सन्दली  
किंग्सवे में मशहूर रात है जिन्दगी ।”<sup>68</sup>

इसी के साथ-साथ कवि ने नारी वर्ग के प्रति संवेदना एवं सहानुभूति प्रकट किया है । शोषकों के प्रति कवि को विशेष सहानुभूति है । वे जहाँ पर उसके चित्र प्रस्तुत करते हैं, वहाँ उनमें चार चाँद लग जाते हैं । देखिए —

“उर में सँभाले दर्द  
गर्भवती नारी का  
कि जो पानी भरती है वजनदार घड़े से,  
कपड़ों को धोती है भाड़-भाड़,  
घर के काम, बाहर के काम सब करती है,  
अपनी सारी थकान के बावजूद  
मजदूरी करती है,  
घरकी गिरस्ती के लिए ही  
पुत्रों के भविष्य के लिए सब ।”<sup>69</sup>

सातवें दशक के मध्य में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिदृश्य ने अनेक प्रमुख

घटनाओं के व्यापक स्तर पर जन-असंतोष को जन्म दिया। तब प्रत्येक स्थिति का लोग तार्किकता के साथ ताल-मेल बिठाने का प्रयत्न करते हैं। सीता की अग्नि परीक्षा के बारे में भी जन समुदाय का प्रश्न करना स्वाभाविक ही है। लोग कवि के माध्यम से राम से पुछते हैं - सीता की अग्नि परीक्षा क्या उसके सतीत्व की पवित्रता के लिए पर्याप्त नहीं थी? कितनी बार सीता के रूप में नारी अग्नि परीक्षाएँ देती रहेगी? देखिए कवि के शब्दों में —

“यदि मैं धरती पर होता तो  
नूतन प्रश्न उठाता  
राम ! तुम्हारे न्यायालय में  
तुमको आज बुलाता।  
इसीलिए क्या तुम सीता को  
लंका से लाये थे।  
औ अवतार ! राज्य करने ही  
क्या तन घर आये थे।”<sup>70</sup>

अतः हम कह सकते हैं कि इस दशक में नारी को अपने स्वत्व का परिचय हो गया था इसीलिए उसने अपने उपर होनेवाले अन्याय, अत्याचार का डटकर विरोध किया। सातवें दशक की कई कविताओं में समय की, दुनिया की तस्वीर दिखाई देती है। कहीं विद्रोह और आक्रोश भी द्रष्टिगत होता है, किन्तु ज्यादातर कवि ने अपनी कविता में मानवतावादी द्रष्टिकोण और मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए उनकी निरन्तर चिन्ता की है।

### 3.5.10 आठवें दशक की कविता :

सातवें दशक की कविताओं में विद्रोह और आक्रोश के जो स्वर उभरकर आए थे, आठवें दशक के कवियों ने भी अपनाया। किन्तु उनकी द्रष्टि में परिवर्तन द्रष्टिगत होता है। कविता सामान्य आदमी से जुड़कर अन्याय के प्रति पक्ष में खड़ी होती दिखाई देती है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह परिवर्तन किसी आन्दोलन या संकलन के प्रकाशित होने से नहीं घटित हुआ, यह परिवर्तन घर, समाज, परिवार के संघर्ष से जुड़े साधारण अनुभवों के आधार पर ही हुआ मानसिक परिवर्तन है। इस दशक के कवियों में कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, नरेन्द्र मोहन, प्रणयव कुमार बन्धोपाध्याय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, नागार्जुन, केदारनाथ, जगदीश चतुर्वेदी, कैलास बाजपेयी, चन्द्रक्रान्त देवताले, लीलाधर जगूडी, सोहन शर्मा, सुधा गुप्ता, धूमिल, रघुवीर सहाय, ओमानंद सारस्वत,

बलदेव वंशी, अज्ञेय, जगदीश चतुर्वेदी, नरेश मेहता, भवानी प्रसाद मिश्र, डॉ. किशोर काबरा आदि के नाम परिगणित किये जा सकते हैं, इनके साथ-साथ राजकमल चौधरी, मंगलेश डबराल, राजेश जोशी, अशोक बाजपेयी, विष्णु खरे, ऋतुराज, कुभंज, ज्ञानेन्द्र, प्रयाग शुक्ल, सोमदत्त, कृष्ण इब्बार रब्बी, असद जैदी, उदय प्रकाश, अरूण कमल, कुमार विकल, विनोद कुमार शुक्ल आदि भी इस दशक के उल्लेखनीय कवि हैं।

इस दशक की कविता में अपने समय की पहचान है। वह कल्पना के वायवी आवर्तों में चक्कर नहीं काटती, उसमें आज के संघर्ष करते आदमी की सच्ची तस्वीर झलकती है। डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के अनुसार “समकालीन कविता में जो हो रहा है उसका सीधा खुलासा है। इसे पढ़कर वर्तमान काल का बोध हो सकता है, क्योंकि उसमें जीते, संघर्ष करते, लड़ते बौखलाते, तड़पते-गरजते तथा ठोकर खाकर सोचते वास्तविक आदमी का परिद्रश्य है। आज की कविता में काल अपने गत्यात्मक रूप में हैं। ठहरे हुए क्षण अथवा क्षणांश के रूप में नहीं। यही काल क्षण नहीं काल प्रवाह की, आघात और विस्फोट कविता है।<sup>71</sup> इस दशक की कविता की विशेषता यह भी है कि इसमें प्रगतिशील परम्परा की तीनों पीढ़ियाँ एक साथ सृजनरत है।

**प्रौढ पीढ़ी :** रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह, कुँवर नारायण, रामदरश मिश्र, लक्ष्मीकांत वर्मा, मणिमधुकर, श्रीकांत वर्मा आदि।

**मध्य पीढ़ी :** धूमिल, लीलाधर जगूड़ी, चन्द्रकान्त देवताले, वेणु गोपाल, सोमदत्त, बलदेव वंशी, प्रयाग शुक्ल, रमेशचन्द्र सार, राजेन्द्र कुमार, मान बहादुरसिंह, सौमित्र मोहन, रमेश दबे, मलयज, निलाभ, विनोद चन्द्र पाण्डेय, देवेन्द्र कुमार आदि।

**युवा पीढ़ी :** राजेश जोशी, अरूण कमल, गोरख पाण्डेय, उदय प्रकाश, मंगलेश डबराल, राजकुमार, कुम्भज, विनोददास, ज्ञानेन्द्रपति, असर जैदी, मनोज, सोनकर, आदि।

इस दशक के कवि प्रतीकों का सहारा लेकर अपना मन्तव्य स्पष्ट करता हैं। दिनकरजी ने औशीनरी को पतिव्रता स्त्रियों का प्रतीक माना है। जो पति की हर इच्छा, अनिच्छा, उचित, अनुचित, करणीय, अकरणीय कार्य को मौन और उदार स्वीकृति देती आई है, लेकिन वह महसूस करती है कि पति के निकट इस औदार्य का कुछ भी मूल्य नहीं है। जब पुरुखा औशीनरी को धर्मपरायण रहने का संदेश भिजवाकर उर्वशी के संग चला जाता है, तब भी औशीनरी की सहनशीलता सराहनीय है। जब शाप भ्रष्ट उर्वशी वापस लौट जाती है, तो पुरुखा भी सन्यास ग्रहण



कर लेते हैं और औशीनरी को सुचित भी नहीं करते हैं, तब औशीनरी का सारा धैर्य टूट जाता है। वह यह कहने को मजबूर हो जाती हैं —

“वाणी का वर्चस्व रजत है, किन्तु मौन कंचन है,  
पर क्या मिला, अन्त में जाकर, मुझको इस कंचन से।”<sup>72</sup>

‘एक पुरुष और’ में डॉ. विनय ने मेनका के द्वारा आधुनिक विद्रोहिणी नारी को प्रस्तुत किया है। मेनका के विचार पुरुष वर्ग के प्रति विद्रोह व्यक्त करते हैं। नारी चेतना की आधुनिक संघर्ष मयी अभिव्यक्ति मेनका के वक्तव्यों में पूर्णतः प्राप्त होती है। पश्चिमी विचारों का प्रभाव मेनका के इस कथन में स्पष्ट परिलक्षित होता है। यहाँ आधुनिकता का भाव स्पष्ट होता है।

“मेनका को नहीं चाहिए आश्रय  
पत्नीत्व और सौभाग्य  
वह इन स्थितियों से मुक्त  
बनी रहना चाहती है स्त्री  
आद्यान्त उसने झेली है यंत्रणा।”<sup>73</sup>

इतना ही नहीं वह विश्वामित्र से सारे नियम एवं बन्धनों को तोड़ देने के लिए आह्वान करती है।

“तुम चुप क्यों हो महामुनि...।  
तोड़ते क्यों नहीं शताब्दियों का चक्रव्यूह  
अपनी हूँकारों से  
काट क्यों नहीं देते आवरण की लकीरें।”<sup>74</sup>

वह कनुप्रिया की राधा की तरह अपने अस्तित्व के प्रति भी सजग है। वह विश्वामित्र से कहती हैं —

“मैं अकेली केवल प्रतिष्ठापित आज्ञाओं की कठपुतली बनकर  
नहीं जीना चाहती  
मुझे भी मिलनी चाहिए अर्थवत्ता  
.... मेरे शरीर की  
मेरे अस्तित्व की —

मेरा पाप-पुण्य विवशता  
जो कुछ भी है —  
तुम्हें समर्पित है महामुनि  
सिर्फ उसे एक अर्थ दो।”<sup>75</sup>

प्रत्येक युग में नारी को भिन्न-भिन्न परीक्षाओं से गुज़रना पड़ता है। ‘महाप्रस्थान’ में कवि ने इस यथार्थ बोध को सहजता से स्वीकारा है कि ऐसी परीक्षाओं के पश्चात् नारी पुरुष के लिए अप्राप्य हो जाती है। द्रौपदी इस युगीन यथार्थ को सीता एवं स्वयं के संदर्भ में इस प्रकार प्रस्तुत करती है —

“सीता की अग्नि परीक्षा से  
राम को क्या प्राप्त हुआ  
जो तुम  
अपनी कृष्णा की हिम परीक्षा ले रहे हो ?  
पार्थ !  
प्रत्येक ऐसी परीक्षा  
पत्नी के प्रति अविश्वास ही है,  
और ऐसी परीक्षा के बाद  
पुरुष के लिए अप्राप्य हो जाती है।”<sup>76</sup>

चन्द्रकान्त देवताले ने नारी के पति परायणता व परतन्त्र रूप पर अपना द्रष्टिकोण निम्नलिखित पंक्तियों में प्रस्तुत किया है —

“वह ऊँची सीढ़ी पर था  
और देखकर इस तरह पत्थर अपनी औरत को  
काफूर हो गया उसका प्रेम  
नशा वैसा ही रहा थिगा हुआ  
आकाश में ऊँचे ठिठकी पतंग की तरह  
केवल बर्फ के टुकड़े की तरह पिघल गया उसका धैर्य।”<sup>77</sup>

आज के मध्यमवर्गीय परिवार में नारी को भी नौकरी में लगना पड़ता है। तब वह दुहरी

भूमिका निभाती है। एक ओर उसे ऑफिस के कामों में उलझना पड़ता है, तो दूसरी ओर उसे घर-गृहस्थी व बच्चों को सँभालना पड़ता है। वह ऑफिस से थककर आती है, फिर भी उसे घर के कामों में लग जाना पड़ता है। गृहस्थी के कामों से अपरिचित पति चाहकर भी उसके काम में हाथ नहीं बँटा सकता है, क्योंकि उसे पत्नी को मदद करने के लिए भी पत्नी की मदद माँगनी पड़ेगी। राजेश जोशी ने नारी की इस दूहरी भूमिका को इस प्रकार व्यक्त किया है —

“साड़ी का पल्लू कमर में खोसती हुई वो आती है  
मुझे हटाते हुए कहती है - ‘हटो, तुम्हें नहीं मिलेगी कोई चीज’।  
होठों को तिरछा करती अजीब ढंग से मुस्कुराती है  
मुश्किल है उस मुस्कुराहट का ठीक ठीक अर्थ समझा पाना  
जैसे कहती हो मेरी सृष्टि है  
तुम नहीं जान पाओगे कभी  
कि किन बादलों में रखी है, बारिशें, किनमें रखा है कपास।”<sup>78</sup>

आधुनिक कृत्रिमता में पल रही नारी को कृत्रिम मुस्कुराहट भी आनी चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं कर पाती है, तो वह कहीं की नहीं रहती है। यह भाव मंगलेश ड़बराल की कविता में देखिए —

कि आलीशान दुकान में सामान बेचती  
एक दूबली-सी लड़की  
जो कुछ सोचती हुई - सी बैठी थीं  
एक दिन एक ग्राहक के सामने मुस्कुराना भूल गयी  
शाम को उसे नौकरी से अलग कर दिया गया  
यह बात जब उसका पति उससे अलग हुआ  
उससे एक दिन बाद की है।”<sup>79</sup>

असद ज़ेदी की ‘बहनें’ कविता में आम लड़की की व्यथा को वाचा दी गई है। देखिए —

“माँ देखो हम पतिलियाँ है।  
हमारी कालिख धोयी जायेगी, नहीं धोया जायेगा हमें तो  
हम बन कालिख / बढ़ती रहेंगी और चीथड़े।  
भरती रहेंगी शरीर में जब तक है गोलापन और स्वाद।

हम सूखेंगी अपनी रफ्तार से  
 हम सूख जायेंगी / हम खड़ खड़ाएँगी इस धरती पर सन्नाटे में  
 मोखों में चूल्हों पर दोपहरियों में  
 अपना कटोरा बजाएँगी हम / हमारा कटोरा भर देना ।

X X X

कोयला हो चूकी है हम /  
 बहनों ने कहा रेत में घँसते हुए  
 कोयला हो चूकी  
 कहा जुतों से पिटते हुए  
 कोयला / सुबकते हुए  
 बहनें सुबकती है : राख है हम ।”<sup>80</sup>

कवि ने कोयला और राख के माध्यम से उनकी इच्छाओं-आकांक्षाओं के शेष हो जाने का वर्णन किया है । आज के भौतिकवादी युग में नारी के मन का विषाद दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाता है । इसीलिए वह आर्त स्वर में कहती है —

“शोभा, शोभा ?  
 हाँ, नारी तो शोभा ही है  
 उससे तो शोभा ही माँगी जाती है  
 गुरुदेव,  
 क्या इस राज्य में सत्य का कोई स्थान नहीं  
 सब कुछ शोभा के ही लिए है  
 और उस शोभा का सारा भार  
 एक नारी के ही ऊपर है?”<sup>81</sup>

कवि ने सीता के द्वारा नारी के प्रेम की प्रतिष्ठा को प्रकट किया है । वह कहती है —

“नारी जिसे प्यार करती है, उसके दोष नहीं देखती  
 मैंने सोचा, कभी तो वह दिन आयेगा  
 जब राम मुझे समझेंगे  
 और उसीकी प्रतीक्षा में मैं सांसे गिनती रही ।”<sup>82</sup>

आज प्रेम की परिभाषा में भी परिवर्तन आ गया है। आकांक्षाओं की पूर्ति का सक्षम माध्यम प्रेम मान लिया जाता है, इसीकारण लड़कियाँ भागती हैं। वास्तव में कम, स्वप्नों में ज्यादा।

“वह कोई पहली लड़की नहीं है  
जो भागी है  
और न वह अन्तिम लड़की होगी  
अभी और भी लड़के होंगे  
और भी लड़कियाँ होंगी  
जो भागेंगे मार्च के महिने में।”<sup>83</sup>

ईश्वरने नारी की रचना क्यों की ? क्या है उसका अपना अस्तित्व ? सांसारिकता में लिप्त नारी अब कार्यों से मुक्त होती है ? या यों कहें कि जब बच्चों को माँ की आवश्यकता नहीं होती, तब वह घर के लिए अनावश्यक हो जाती है तो उसका क्या अस्तित्व रहता है ? जीवन की अग्नि परीक्षाओं में उत्तीर्ण, अनुत्तीर्ण, सफल-असफल, जैसी भी नियती रही हो, उसे वहन करती हुई जीवन के अंतिम अध्याय तक पहुँचते-पहुँचते एकदम खोखली-खाली सी हो जाती है। द्रौपदी द्वारा कवि ने नारी की इस स्थिति को प्रकट किया है।

“स्त्री  
सांसारिकता से  
क्यों नहीं ऊपर उठ पाती महाराज !  
क्यों नहीं ?  
इसी सांसारिकता के लिए  
एक दिन।”<sup>84</sup>

यद्यपि डॉ. किशोर काबरा के गीतों में प्रणय की मादकता के द्रश्य नहीं मिलते हैं, किन्तु उसका दबा हुआ रूप कहीं-कहीं मिल जाता है, जिससे लगता है कि कवि के हृदय में भी प्रेम का कोई अतृप्त रूप पड़ा है।

“तन के तट पर मिले हम कई बार, पर  
द्वार मन का अभी तक खुला ही नहीं।  
डूबकर गल गए हैं हिमालय, मगर-

जलके सीने पे एक बुलबुला ही नहीं ।”<sup>85</sup>

नारी जीवन पथ पर पुरुष का हरदम साथ देती है, किन्तु जहाँ उसका अपमान होता है, या कोई उसे ठुकराता है, तो वह मर जायेगी किन्तु उसकी ओर मुड़कर दुबारा कभी नहीं देखती हैं। काबराजी ने इस बात को निम्न प्रकार रखा है —

“स्त्री लता है जो निकट के  
वृक्ष का लेती सहारा ।  
बाँध लेती है उसीको  
प्यार से जिसने पुकारा ।  
पर किया अपमान तरू ने  
तो छिटककर गिर पड़ेगी  
जल मरेगी, किन्तु देखेगी नहीं  
मुड़कर दुबारा ।”<sup>86</sup>

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आठवें दशक की कविता में जीवन को सही रूप में समझने का प्रयास किया गया है। इसीलिए मानवीय अनुभवों की तरह कविताओं का रचना संसार भी व्यापक है। माँ, पिता, पुत्र आदि की स्मृतियों के साथ घर, परिवार व रोजमर्रा की चीजें भी काव्य का हिस्सा बन सकी है। इस दशक की कविता मनुष्य के सुख-दुःख से प्रतिबद्ध है। अंततः कहा जा सकता है कि आठवें दशक के कवियों ने नारी के बहुआयामी रूपों का वास्तविक चित्रण किया है। इस दशक में नारी जो पूर्व काल में बंदिनी बनाकर रखी गयी थी, उसे मुक्त रूप से गगन विहार करने का सुअवसर प्रदान किया गया है।

### 3.5.11 नवें दशक की कविता :

नवें दशक की कविताओं में आक्रोश, विद्रोह तथा व्यंग का समन्वित रूप द्रष्टिगत होता है। इस काल के कवियों में विष्णु प्रभा, डॉ. रामकुमार वर्मा, सुधा गुप्ता, डॉ. भगवत शरण अग्रवाल, निरज कुमार, सं. डॉ. खेलचंद आनंद, अमित, डॉ. जीवन प्रकाश जोशी, सुरेश यादव, कृष्णकुमार विद्यार्थी, डॉ. किशोर काबरा आदि प्रमुख हैं। इस दशक के कवियों ने समाज पर आक्रोश के साथ करारा व्यंग्य करते हुए युवा वर्ग को जागृत करने का सफलता के साथ प्रयास किया है। इन कवियों की कविताओं में भ्रष्ट सामाजिक परिवेश के प्रति आक्रोश व्यक्तिगत स्तर पर व्यक्त न होकर

सामाजिक स्तर पर समान द्रष्टि के बदलाव की भूमिका बनकर उभरा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नारी चेतना का जागरण हुआ। धीरे-धीरे वे वह अपने अधिकार, 'स्व' एवं अस्मिता के प्रति जागरूक और जुझारु होती गई। नवें दशक में उनका तेवर अपेक्षाकृत अक्रामक हुआ है। उन्हें अपनी दयनीयता, हीनता का बोध सालता है, तो महानता, उच्चता के प्रति चेतित भी करता है। नारी मुक्ति के लिए प्राणवन से बुझती नारी का कवि ने चित्रण किया है। देखिए —

“जब भी किसी औरत को  
मरते देखती हूँ  
तो एक मुक्ति का  
आभास होता है।  
एक गहन पीड़ा की  
आह के संग  
मन अन्दर ही अन्दर रोता है।”<sup>87</sup>

इस पीढ़ी के रचनाकारों में एक पीढ़ी उन रचनाकारों की है, जो विगत दशकों से सृजन के शिखर पर है, जिनमें सर्व श्री नागार्जुन, केदारनाथ, त्रिलोचन, देवराज, शील आदि हैं। दूसरी पीढ़ी के गिरिजाकुमार माथुर, रघुवीर सहाय, डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, कुँवर नारायण, चन्द्रकान्त देवताले, विजयेन्द्र, रामदरश मिश्र आदि हैं। तीसरी पीढ़ी के रचनाकारों में डॉ. केदारनाथ सिंह, बलदेव वंशी, नरेन्द्र मोहन नचिकेता, माहेश्वर तिवारी, वेणु गोपाल, कुमारेन्द्र, पारसनाथ सिंह, नन्दकिशोर सोमदत्त आदि हैं। चौथी पीढ़ी मंगलेश डबराल, प्रयाग शुक्ल, अरुण कमल, कुमार विकल, यतीन्द्र तिवारी, गोरख पाण्डेय, ऋतुराज मलय, आलोक, उदय प्रकाश, मधुसूदन, विष्णु नागर, विनोद भारद्वाज, धन्वा, दिविक रमेश, योगेन्द्र महेन्द्र, कार्तिकेय आदि हैं। युवा रचनाकारों में श्री राम तिवारी, विष्णु खरे, स्वदेश भारती, विकास द्विवेदी, प्रतीक मिश्र, सुरेश अवस्थी, देवेन्द्र कुमार आदि को परिगणित किया जा सकता है। इन सभी ने अपने काव्यों में सामाजिक एवं राजनैतिक अन्तर्विरोधों को समझने परखने और उनके प्रतिरोध का स्वर मुखर करने की चेष्टा की है। इस दशक के कवियों ने सामाजिक प्रश्नों एवं विसंगतियों को ज्यादा बहेतर ढंग से समझा है। इन्होंने माँ, पत्नी, लड़की आदि रूप में नारी को चित्रित किया है। इस दशक की कविता में घर, परिवार और समाज में लड़कियों और महिलाओं की स्थिति, उनकी रोजमर्रा जिन्दगी की तकलीफों और साथ ही उमंग एवं छोटी-छोटी खुशियों की भी चर्चा पायी जाती है। ‘मैं तुमसे अलग तो नहीं’ शशि शर्मा का प्रकाशित

काव्य संग्रह हैं, जिसमें सारी कविताएँ नारी पर ही केन्द्रित हैं। माँ की विराटता एवं महत्ता के सम्बन्धित 'स्त्री' कविता की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं —

“तुम्हारे रक्त से  
विकसित होती है मिट्टी  
टूटती है चट्टाने, तुम्हारे प्यार से आलोकित होता है  
अंधेरा संसार,  
बनकर अर्थवान।”<sup>88</sup>

सुबह से उठकर रात तक काम करते रहने के बावजूद भी स्त्री की ऐसी दुर्दशा को देख कवि व्यथित हो जाते हैं। कवि की व्यथा देखिए —

“नारी गमले का एक पौधा है  
जिसे नहीं मिलता खुला आकाश  
जिसे फैलना है  
दीवारों के भीतर।”<sup>89</sup>

माँ का दुःख भी इन कवियों से सहा नहीं जाता है। ये अनुभव करते हैं कि पहले माँ अपने कलेजे का टुकड़ा पराए हाथ में दे देती थी और साथ ही अनेक नसीहतें एवं आशीष भी देती थी, माँ की एक नसीहत देखिए —

“लड़की होना  
पर लड़की जैसा दिखाई मत देना।”<sup>90</sup>

यहाँ स्त्री की स्थिति पर कवि ने हमें सोचने के लिए बाध्य कर दिया है। पुरुष प्रधान समाज में नारी का शोषण होता है, उसे यातना और अपमान पूर्ण जीवन जीने के लिए मजबूर होना पड़ता है, नारी की ऐसी विभिन्न पीड़ा को सुधा गुप्ता ने अपने काव्य में चित्रित किया है। देखिए —

“मोमबती आज भी जल रही है लगातार  
मेरे मन की हथेली जाने कबसे उस मोमबती पर टिकी है,  
कितनी जली कितनी बची,  
न कोई हिसाब न कोई अहसास।”<sup>91</sup>

गिरिजाकुमार माथुर ने नारी के प्रति जो कवि धर्म निभाया है, वह उनकी मध्यकालीन



मानसिकता का प्रमाण है।

“तुम्हें नहीं मालूम  
तुम एक जादुई खजाना हो  
जो बहुत धीरे-धीरे  
इंच-इंच खोकर मिलता है।  
तुम्हें नहीं मालूम  
तुम्हारी आंखों में जो घूमती तरलता है  
उसमें डूबकर  
हर चीजें मीठास में बदल जाती है।  
तुम पहले मिल जाती  
तो जिन्दगी  
और ज्यादा जीने लायक हो जाती  
लेकिन इस बात को भी  
अब थोड़ी देर हो गई है।”<sup>92</sup>

धर्मवीर भारतीजी ने नारीके चरित्र में दया, ममता, स्नेह जैसे मूल्यों की प्रतिष्ठा कर अपना उत्तर दायित्व निभाया है। कृष्ण को शाप देने के उपरांत गांधारी का पश्चाताप, उसकी द्वन्द्वशील-तर्कशील मानसिकता का परिचायक है।

“कोई नहीं मैं  
अपने पुत्रों के लिए  
लेकिन कृष्ण तुम पर  
मेरी ममता अगाध है।  
कर देते शाप यह मेरा अस्वीकार  
तो क्या मुझे दुःख होता  
मैं तो निराशा में भी कटु थी  
पुत्र हीना थी।”<sup>93</sup>

द्रौपदी के नारी हृदय की व्यथा कोई समझ नहीं पाया हैं, यही उसके जीवन की करुणा है, यही उसकी विवशता है, यही उसके जीवन की दुःखद कथा है। एक सहज नारी की तरह जीने की

आकांक्षी द्रौपदी के मन की अभिलाषा को कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है।

“स्त्री स्वयं यदि नहीं चाहे,  
एक पति को भी समर्पित हो नहीं पाती।  
आह,  
मैं अपने पृथक् गुण-धर्मवाले पाँच पतियों की  
विषम पंचाग्नियों के कुंड में  
कैसे समर्पित हो सकी मैं जानती हूँ।”<sup>94</sup>

अतः हम कह सकते हैं कि नवें दशक की कविता में नारी जागरण, नारी चेतना एवं नारी मुक्ति का स्वर मुखरित हुआ है। नारीपीड़ा के चित्रण के साथ साथ नारी के संघर्षगाथा की भी मार्मिक अभिव्यक्ति पायी जाती है। तमाम युग व दशक की भाँति माता रूप की भरपेट प्रशंसा की गई है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नवें दशक के माध्यम से नारी में नई चेतना जगाने का सफल प्रयास किया है।

### 3.5.12 दशवें दशक की कविता :

दशवें दशक की कविता यानि कि 1991 से 2000 के दौरान पुस्तकों या पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाशित हुई कविता। इस दशक की कविताओं का अध्ययन करने के लिए विपुल सामग्री प्राप्य नहीं है। फिर भी यथा-योग्य प्रयास किया गया है।

इस काल के कवियों में अम्बाशंकर नागर, डॉ. रामकुमार गुप्त, डॉ. भगवतीशरण अग्रवाल, भगवानदास जैन, शेखादम आबुवाला, डॉ. किशोर काबरा, डॉ. रघुवीर चौधरी, रामचंद्र शर्मा, सुलतान अहमद, हसित बुच, द्वारिका प्रसाद साँचीहार, सुधा श्री वास्तव, अंजना संधीर, घनश्याम अग्रवाल, रमाकांत शर्मा, उत्तर चीनुभाई, रघुवीर सहाय, नरेश मेहता, धर्मवीर भारती, श्रीकांत शर्मा, केदारनाथ सिंह, अशोक बाजपेयी, राजेश जोशी, मंगलेश डबराल आदि का नाम उल्लेखनीय है।

इस काल के कवियों ने नारी के प्रति सहानुभूति प्रकट की है। नारी पर अत्याचार एवं शोषण होते देखकर इन कवियों का हृदय द्रवित हो उठता है। ‘यह वह धरती है’ में विजय लक्ष्मी कोटंगी ने नारी के प्रति हो रहे अन्याय के प्रति करुणा व्यक्त की है। देखिए —

“खुली सड़क पर दिन में ही जब

किया जाता है नारी के प्रति  
 असभ्य व्यवहार  
 तब उसे देखकर खुशी मनाते  
 नागरिकों से पूछा मैंने —  
 तुम लोगों में नहीं बचा क्या  
 कोई संस्कार ?  
 तब कहा उन्होंने हँसते-हँसते  
 यह वह धरती है जिस पर  
 भरी सभा में विवस्त्र होती  
 नारी को निर्लज्ज देखकर  
 कलीवों ने राज किया था ।

X      X      X

पत्नी के गले के हारों को  
 गिरवी रखकर ताश खेलते  
 पतिदेव से पूछा मैंने —  
 क्या है यही कर्तव्य तुम्हारा ?  
 झट उसने दिया है उत्तर —  
 यह वह धरती है जिस पर  
 अपनी पत्नी का दाँव लगाकर  
 उसे हारकर, धर्म निभाकर  
 धर्मराज ने राज किया था ।”<sup>95</sup>

अतः कवि को नारी के प्रति ज्यादा सहानुभूति है । नारी का दर्द एवं पीड़ा कवि को अपना ही दर्द लगता है । उत्तिमा केशरी ने भी ‘नारी चेतना’ शीर्षक कविता में नारी जाति की वेदना को वाणी प्रदान की है । उसमें कवयित्री के मतानुसार कि नारी ही इस सृष्टि की प्रेरणा रही है । वह हमेशा अन्याय, अत्याचार और शोषण को सहन करती रही है । प्राचीन काल से ही नारी को देवी की उपमा दी जाती रही हैं । इस देवीने कभी चंडी, कभी दुर्गा और कभी झाँसी की रानी का रूप धारण किया है । परंतु हर युग में उसे बलिदान देना पड़ा है, परीक्षा देनी पड़ी है और उसकी उपेक्षा की जाती रही

है। नारी की स्थिति का वर्णन करते हुए कवयित्री बताती है —

“जननी हूँ, प्रेरणा हूँ सृष्टि की  
झेलती हूँ अन्याय, दमन, शोषण  
पर अधखिले फूल-सा / असहाय खिलने को  
विवश होती रही हूँ  
अनादिकाल से पूजा की देवी हूँ  
पर हर युग में / उपेक्षित रही हूँ...  
हर बार मुझे ही / परीक्षा देनी पड़ी है...  
मेरे त्याग - बलिदान की गाथा से  
इतिहास के पन्ने भरते आए हैं  
पर आज भी / वहीं की वहीं हूँ हाशिये पर।”<sup>96</sup>

केसरीजी ने भी नारी पीड़ा को प्रकट किया है। अतः हम कह सकते हैं कि इस दशक के कवियों ने नारी स्वातंत्र्य एवं नारी चेतना पर बल दिया है। युगों से नारी अन्याय झेलती हुई आई है किन्तु अब इन कवियों ने उसकी मुक्ति की कामना की।

### 3.6 उपसंहार :

इस प्रकार वीरगाथा काल में नारी को नीजी सम्पत्ति मात्र समझा गया, भक्तिकालिन कवियों ने नारी का अनादर किया। रीतिकालिन कवियों की द्रष्टि में नारी मात्र खिलौना बनकर रह गई। और आधुनिक काल में विभिन्न कवियों ने नारी को मानवी रूप प्रदान कर के नारी के महत्व को और भी बढ़ा दिया। इन कवियों ने नारी के प्रति सहानुभूति पूर्ण द्रष्टिकोण से देखने का प्रयास किया है। माता के रूप में तो नारी का महात्म्य और भी बढ़ गया है। समग्रतया कह सकते हैं कि आधुनिक काल के कवियों ने नारी के संघर्ष की गाथा व्यक्त करते हुए नारी जीवन को उच्चस्थान प्रदान किया है।

### 3.7 संदर्भ - सूची

- 1 'संत काव्य में नारी' ले. डॉ. कृष्णा गोस्वामी - पृष्ठ - 86
- 2 वही वही वही
- 3 'भगवती चरणवर्मा के उपन्यास के नारीपात्र' टोपीक 'हिन्दी उपन्यासों में नारी के रूप' -  
अध्याय - 4 परमार शिल्पा सी - पृ. 59 से उद्धृत  
गोरखतानी - 'हिन्दी काव्य में नारी' ले. डॉ. वल्लभदा तिवारी, पृ. - 175
- 4 'संत काव्य में नारी' ले. डॉ. कृष्णा गोस्वामी, पृष्ठ - 87
- 5 वही वही पृष्ठ - 88/89
- 6 वही वही पृष्ठ - 81
- 7 'जैन आगम में नारी' - ले. डॉ. (श्रीमती) कोमल जैन, पृष्ठ - 40
- 8 'कबीर साखी संग्रह' - पृष्ठ - 126
- 9 'हिन्दी निर्गुण संत काव्य और भक्ति' ले. डॉ. कृष्णा रैना पृष्ठ - 103
- 10 'सूफी मत और पद्मावत' प्रो. प्रवीणा एम. रावल (थीसीस) पृष्ठ - 80
- 11 'रामचरित मानस' ले. तुलसीदास - 1
- 12 वही वही द्वितीय सोपान दोहा - 48 पृष्ठ - 176
- 13 वही वही "यद्यपि ..... अवगाहूँ" - दोहा 28 पृष्ठ - 168
- 14 वही वही तृतीय सोपान दोहा 77 पृ. - 320
- 15 वही वही पाँचवा सोपान - पृष्ठ - 366
- 16 वही वही 7/22/08
- 17 'गोस्वामी तुलसीदास' ले. डॉ. माया प्रकाश पाण्डेय, पृष्ठ - 72
- 18 'संत काव्य में नारी' ले. डॉ. कृष्णा गोस्वामी, पृष्ठ - 92
- 19 'सूरदास और नरसिंह महेता : तुलनात्मक अध्ययन' ले. डॉ. भ्रमरलाल जोशी, पृष्ठ 134-  
135
- 20 'हिन्दी कृष्ण काव्य में भक्ति एवं वेदान्त', ले. डॉ. संतोष पाराशर, पृ. - 125

- 21 'सूर सुधा', ले. सूरदास, 'काम-क्रोध .... और ।' पद - 17, पृष्ठ - 8
- 22 'सूर सारावली' ले. सूरदास, ['हिन्दी कृष्ण-काव्य में भक्ति एवं वेदान्त' ले. डॉ. संतोष पाराशर, पृष्ठ 134 से उद्धृत]
- 23 "केशव केसनि असिकरी, वैरहु जसन कराहि ।  
चन्द्र बदन मृगलोचनी, बाबा कहि कहि जाहि ॥"  
'केशव चन्द्रिका' ले. केशवदास
- 24 'नीति काव्य का विकास' ले. हेमराज, पृष्ठ - 464
- 25 'औछी बुद्धि युवतीन की, कहै विवेक भुलाय ।  
दशरथ रानी के वचन, वन पठए रघुराय ॥'  
'नीति काव्य का विकास' - वृन्द, पृष्ठ - 470
- 26 'रहीम सतसई' ले. रहीम दोहा 108
- 27 'बाल बोधिनी' ले. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृष्ठ - 51
- 28 'प्रिय प्रवास' ले. हरिऔध, पृष्ठ - 242
- 29 'विष्णु प्रिया' - ले. मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ - 57
- 30 'पंचवटी' ले. मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ - 33
- 31 'कामायनी', ले. जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ - 106
- 32 'ग्राम्या' - 'स्त्री', ले. सुमित्रानन्दन पंत, 'पंत ग्रंथावली भाग - 2', पृष्ठ - 166
- 33 'स्त्री नहीं आज मानवी बन गई तुम निश्चित'  
'चिदंबर', ले. सुमित्रानन्दन पंत, पृष्ठ - 94
- 34 'युगवाणी', ले. सुमित्रानन्दन पंत, पृष्ठ - 58  
'योनी नहीं रे ..... नर पर अवसित ।'
- 35 'पल्लव', 'आँसू', ले. सुमित्रानन्दन पंत, पृष्ठ - 65
- 36 'पल्लव', 'नारी रूप', ले. सुमित्रानन्दन पंत, पृष्ठ - 18
- 37 'महादेवी वर्मा : कवि और गद्यकार', ले. गौतम, पृष्ठ - 18

- 38 “सम है दोनों नर नारी, ज्ञान प्राप्ति के अधिकारी ।  
एक वृक्ष के दो फल है, एक डाल के दो दल है ॥”  
‘पराग - स्त्री शिक्षा’, ले. रूपनारायण पाण्डेय, पृष्ठ - 110
- 39 ‘युगवाणी’ - ‘नर की छाया’, ‘पंत ग्रंथावली’ भाग - 2, पृष्ठ - 101
- 40 ‘जोहर’, ले. श्याम नारायण पाण्डेय, पृष्ठ - 102
- 41 ‘उर्वशी’, ले. दिनकर, पृष्ठ - 116
- 42 वही वही प्रथम अंक, पृष्ठ - 14
- 43 ‘द्रौपदी’, ले. नरेन्द्र शर्मा : पंचम सर्ग, पृष्ठ - 71
- 44 “कुरुक्षेत्र ढह गया आह से, स्वर्ण द्वारिका डूबी ।  
है नारी के अश्रु बिन्दु में, पारावार प्रलय का ॥”  
‘द्रौपदी’ ले. श्री नरेन्द्र शर्मा, पृष्ठ - 51
- 45 ‘उर्मिला’, ले. बालकृष्ण शर्मा ‘नवीन’, द्वितीय सर्ग, पृष्ठ - 109
- 46 वहीं वहीं पृष्ठ - 6/12
- 47 समकालीन हिन्दी कविता - अज्ञेय और मुक्तिबोध, ले. डॉ. शशि शर्मा - पृ. - 21
- 48 लाल चूनर : नारी, ले. रामेश्वर शुक्ल ‘अंचल’ पृ. - 24
- 49 अज्ञेय : एक अध्ययन, ले. भोलाभाई पटेल, पृ. - 16
- 50 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य आन्दोलन - गिरिजाकुमार माथुर के विशेष संदर्भ में, डॉ. जयप्रकाश शर्मा, पृ. - 116/117 से उद्धृत
- 51 अन्तिम दो क्षण, पृ. - 29
- 52 कनुप्रिया : इतिहास ले. धर्मवीर भारती : पृ. - 78
- 53 टूटी हुई बिखरी हुई : चूका भी हूँ मैं नहीं, ले. शमशेर बहादुर सिंह, पृ. - 112 (स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य विधाएँ, डॉ. बापूराव देसाई, पृ. - 35 से उद्धृत)
- 54 वही, प्रेयसी, पृ. - 98 (वही, पृ. - 36)
- 55 रश्मिरथी, ले. दिनकर, पंचम सर्ग - पृ. - 79
- 56 वहीं वहीं वहीं - पृ. - 80

- 57 जय भारत, ले. मैथिलीशरण गुप्त, द्रौपदी और सत्यभामा, पृ. - 190
- 58 कैकेयी, ले. श्री केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' सर्ग, 112 - पृ. 132
- 59 छायावादोत्तर हिन्दी कविता में बिम्ब विधान, ले. डॉ. उषा जैन, पृ. - 53
- 60 तार सप्तक (सं. अज्ञेय / गिरिजाकुमार माथुर) समकालीन हिन्दी कविता, अज्ञेय और मुक्तिबोध, ले. डॉ. शशि शर्मा, पृ. - 150 से उद्धृत
- 61 वही वही वही पृ. - 151
- 62 धर्मवीर भारती व्यक्ति और साहित्यकार, ले. डॉ. पुष्पा वास्कर - पृ. - 61
- 63 स्पर्श स्मृति, ले. विरेन्द्र मिश्र, पृ. - 75
- 64 लहर-फरवरी 1968 अंक : 8 , स्व. राजकमल चौधरी का लेख, पृ. - 51
- 65 सियविजन वनजास, ले. श्री रामकिशोर अग्रवाल, पृ. - 15
- 66 उर्वशी, ले. दिनकर, प्रथम अंक, पृ. - 14
- 67 एक कंठ विषपायी, ले. दुष्यंत कुमार, पृ. - 33
- 68 चाँद का मुँह टेढ़ा है, ले. मुक्तिबोध, पृ. - 36
- 69 चाँद का मुँह टेढ़ा है, ले. गजानन माधव मुक्तिबोध, पृ. - 238
- 70 भूमिजा : अरण्य रोदन, ले. रघुवीर शरण 'मित्र', पृ. - 22/23
- 71 समकालीन हिन्दी कविता - अज्ञेय और मुक्तिबोध, ले. डॉ. शशि शर्मा, पृष्ठ - 38 से उद्धृत
- 72 उर्वशी, रामधारी सिंह दिनकर, पृ. - 150
- 73 एक पुरुष और, ले. डॉ. विनय, पृ. - 125
- 74 वही वही वही
- 75 वही वही पृष्ठ - 116
- 76 महाप्रस्थान, नरेश मेहता, पृ. - 70
- 77 वह आज़ाद थी सुबकने के लिए, ले. चन्द्रकान्त देवताले, पृ. - 32
- 78 दो पंक्तियों के बीच : उसकी गृहस्थी, ले. राजेश जोशी, पृ. - 12
- 79 हम जो देखते हैं : अमरिका में कविता, ले. मंगलेश डबराल पृ. - 76
- 80 समकालीन हिन्दी कविता में आम आदमी, ले. मृदुल जोशी, पृ. - 58/59 से उद्धृत



- 81 अग्निलीक, ले. भारत भूषण अग्रवाल, पृ. - 39
- 82 वहीं वहीं, पृ. - 48, वहीं
- 83 भागी हुई लड़कियाँ, ले. आलोक धन्वा, पृ. - 43 दुनिया रोज बनती है ले. आलोक धन्वा, पृ. - 43
- 84 महाप्रस्थान, ले. नरेश मेहता, पृ. - 86/87
- 85 ऋतुमती है प्यास, ले. डॉ. किशोर काबरा, पृ. - 26
- 86 परिताप के पाँच क्षण, ले. डॉ. किशोर काबरा, पृ. - 106
- 87 नवें दशक की हिन्दी कविता में नारी - सन्दर्भ, ले. डॉ. यतीन्द्र तिवारी, पृष्ठ - 53
- 88 'मैं तुमसे अलग तो नहीं' ले. शशि शर्मा, नवें दशक की हिन्दी कविता में नारी-संदर्भ, ले. डॉ. यतीन्द्र तिवारी, पृष्ठ - 59 से उद्धृत
- 89 'बारिश थम चुकी है' ले. विद्या भंडारी पृष्ठ - 9  
वहीं वहीं पृष्ठ - 54
- 90 साठोत्तरी हिन्दी कविता में अनास्था बोध, ले. डॉ. (श्रीमती) रंजना राजदान पृ. - 278
- 91 'चाँद की करील' ले. सुधा गुप्ता, - 'नवें दशक की हिन्दी कविता में नारी - सन्दर्भ' ले. डॉ. यतीन्द्र तिवारी पृ. - 133 से उद्धृत
- 92 वहीं वहीं पृ. - 64 से उद्धृत
- 93 अंधा युग, ले. धर्मवीर भारती, पृ. - 103
- 94 नरोवा कुंजरो वा, ले. डॉ. किशोर काबरा, चतुर्थ सर्ग, पृ. - 96
- 95 समकालीन भारतीय साहित्य, सितम्बर - अक्तूबर 1999 पृ. - 127
- 96 वैचारिकी, फरवरी 98 - पृ. - 49

## चतुर्थ अध्याय

काव्य के विभिन्न रूप एवं  
डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्य

## चतुर्थ अध्याय : काव्य के विभिन्न रूप एवं डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्य

### 4.1 प्रस्तावना

### 4.2 काव्य और कवि

### 4.3 कविता की परिभाषा

#### 4.3.1 संस्कृत विद्वानों की काव्य परिभाषा

#### 4.3.2 हिन्दी विद्वानों की काव्य परिभाषा

#### 4.3.3 पाश्चात्य विद्वानों की काव्य परिभाषा

### 4.4 काव्य के भेद

#### 4.4.1 श्रव्य काव्य

#### 4.4.2 द्रश्य काव्य

#### 4.4.3 प्रबन्ध

#### 4.4.4 मुक्तक

### 4.5 प्रबन्ध काव्य के भेद

#### 4.5.1 महाकाव्य

##### 4.5.1.1 संस्कृत विद्वानों के मत

##### 4.5.1.2 हिन्दी विद्वानों के मत

##### 4.5.1.3 पाश्चात्य विद्वानों के मत

#### 4.5.2 खंडकाव्य

##### 4.5.2.1 संस्कृत विद्वानों के मत

##### 4.5.2.2 हिन्दी विद्वानों के मत

##### 4.5.2.3 पाश्चात्य विद्वानों के मत

#### 4.5.3 एकार्थ काव्य

### 4.6 डॉ. किशोर काबरा के प्रबंध काव्य

#### 4.6.1 खंडकाव्य

4.6.1.1 परिताप के पाँच क्षण

4.6.1.2 धनुष-भंग

4.6.1.3 नरो वा कुंजरो वा

4.6.2 महाकाव्य

4.6.2.1 उत्तर महाभारत

4.6.2.2 उत्तर रामायण

4.6.2.3 उत्तर भागवत

4.7 उपसंहार

4.8 संदर्भ - सूची

## काव्य के विभिन्न रूप एवं डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्य

### 4.1 प्रस्तावना :

डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्यों का अनुशीलन करने के लिए यह आवश्यक ही नहीं अनिवार्य हो जाता है कि हम काव्य के स्वरूप पर यथोचित प्रकाश डालें। वैसे मैं अल्पज्ञानी हूँ, फिर भी अपने ज्ञान की सीमा में रहकर मैं यथायोग्य प्रयास करना चाहूँगी।

साहित्य को जीवन की प्रतिच्छाया माना गया है। जैसे व्यक्ति होंगे, जैसा समाज-जीवन होगा, साहित्य में उसका वैसा चित्रण मिलेगा। कवि बड़ा ही संवेदनशील प्राणी होता है। समाज की विभिन्न घटनाओं एवं परिस्थितियों का उनके हृदय पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है और वह कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी रूप में उन परिस्थितियों का चित्रण अपनी कृति में कर ही देता है। अतः जीवन और काव्य का बड़ा गहरा संबंध है। काव्य के बिना जीवन की कल्पना नहीं हो सकती। क्योंकि आज हम देखते हैं कि मनुष्य ने विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में काफी प्रगति की है। वह चंद्र और अन्य ग्रहों के संशोधन में भी रत है। पक्षियों की भाँति वह आकाश में भी उड़ने लगा है। समंदर में भी वह रास्ता बनाने लगा है, किन्तु क्या इनके माध्यम से वह मनुष्य के दील तक पहुँच सका है क्या? यदि हम 'हाँ' कहे तो उसका श्रेय कवि के हिस्से में जाता है। 'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि' के अनुसार कवि कविता के माध्यम से मनुष्य की भीतरी संवेदनाओं तक पहुँच सकता है। शास्त्र और विज्ञान तो जीवन का निष्कर्ष देते हैं, किन्तु जीवन का यथार्थ रूप देने का कार्य काव्य का ही है। काव्य बाह्य जगत् के साथ-साथ हमारे भीतर के रहस्यों को भी उद्घोषित करता है। काव्य के माध्यम से हमें सही दिशा मिलती है। अतः हम कह सकते हैं कि काव्य का जीवन के साथ घनीष्ठतम सम्बन्ध है।

### 4.2 काव्य और कवि :

काव्य शब्द 'क्व' धातु से बना है। विभिन्न विद्वानों ने इसकी व्युत्पत्ति विभिन्न प्रकार से बतलाई है। किसी ने इसकी व्याख्या 'क्वनीयम् काव्यम्' लिखकर की है। किसी ने "कवेरिदम् काव्यम् भावो इति काव्यम्" कहकर इसकी व्युत्पत्ति बतलाई है। इसके साथ-साथ कवि शब्द की उत्पत्ति भी जान लेना जरूरी है, क्योंकि काव्य जिसका कर्म है, उसके स्वरूप को समझे बिना

उसके कर्म को समझना असम्भव है। संस्कृत के अमरकोष में कवि शब्द की उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि सर्वज्ञ और सब विषयों के वर्णन करनेवाले को 'कवि' कहते हैं। वेद में कवि शब्द का प्रयोग परमेश्वर के अर्थ में किया गया है। भागवत् में कवि शब्द ब्रह्मा के हृदय के हेतु प्रयुक्त हुआ है। कुछ अन्य स्थलों पर इसका प्रयोग व्यास और वाल्मीकि के लिए हुआ है। इस प्रकार साधारणतया कवि शब्द प्रतिभा संपन्न शब्दार्थकार के लिए प्रयुक्त हुआ है। ऐसे काव्य का मानवजीवन में बड़ा महत्व है।<sup>1</sup> आचार्य आनन्द वर्धन ने भी कवि को अपने अपरिमित काव्य संसार का प्रजापति कहा है। आचार्य अभिनव गुप्त एवं मम्मट ने उसे प्रजापति ब्रह्मा से भी श्रेष्ठ माना है। युगानुरूप कवि कर्म परिवर्तित होता है। 'जीवन की बिखरी अनुभूतियों को समेटकर जब कवि उन्हें शब्द एवं अर्थ के माध्यम से एक कलापूर्ण रूप देता है, तब काव्य का जन्म होता है। ऐसा तभी होता है, जब कवि अभिव्यक्ति के लिए व्यग्र हो उठता है। अनुभूत तथ्य का आनन्द इसके हृदय में अंटाने नहीं अंटता, वह कहने को व्याकुल हो उठता है। उसकी इस व्यग्रता में अपनी अनुभूतियों को केवल व्यक्त-भर कर देने की आकांक्षा नहीं होती, प्रत्युत पाठक तक उन्हें पहुँचा देने की, उन्हें एक सार्वभौम रूप देने की भावना भी उसके पीछे छिपी रहती है।<sup>2</sup>

## 4.3 कविता की परिभाषा :

काव्य की परिभाषा स्पष्ट करने से पहले 'काव्य' और 'कविता' का अर्थ स्पष्ट करना आवश्यक है। व्यावहारिक अर्थ में पद्यबद्ध कविता को ही काव्य की संज्ञा प्रदान की गई है। "काव्य एवं कविता में कोई तात्त्विक भेद नहीं है। दोनों के मूल उपादान एक ही होते हैं। अन्तर केवल रूप का होता है। काव्य को जब छंदों की शृंखलाओं में विधिवत् बांध दिया जाता है, तभी उसे कविता कहने लगते हैं। छंद विधान वास्तव में कविता की सबसे बड़ी विशेषता है।"<sup>3</sup> विभिन्न विद्वानों ने कविता की विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं, जो इस प्रकार हैं।

### 4.3.1 संस्कृत विद्वानों की काव्य परिभाषा :

भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' काव्य शास्त्र का सबसे प्रथम ग्रन्थ माना जाता है। रस, गुण, अलंकार, भाव, अभिनय आदि काव्य के अनेक अंगों का विवेचन उसमें है। उन्होंने काव्य को इस प्रकार व्याख्यायित किया है —

“मृदुललित पदाद्यं गूढं शब्दार्थ हीनं,  
जनपद सुखं बोध्यं युक्तिमन्तृत्य योज्यम्।

बहुकृतरसमार्ग सन्धि संधान युक्तं

समवति शुभ काव्यं नाटक प्रेक्षकाणाम् ।”<sup>4</sup>

अर्थात् जो कोमल और ललित पदों से युक्त हो, गूढ़ शब्द और अर्थ से बिरहित सर्वग्राह्य, सबको सुख देनेवाला, नृत्य में प्रयुक्त किए जाने योग्य, रस की विविध धाराएँ प्रवाहित करनेवाला, संधियों के संधान से युक्त हो, वही सर्व श्रेष्ठ काव्य कहा जाता है।

आचार्य विश्वनाथ के ‘साहित्य दर्पण’ में **“वाक्यं रसात्मकं काव्यं”** अर्थात् रसात्मक वाक्य को ही काव्य कहा गया है। पंडितराज जगन्नाथ ने ‘रस गंगाधर’ में **“रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्”** कहा है। अर्थात् रमणीय अर्थ के प्रतिपादन का रूप ही काव्य है। संस्कृत की सर्वाधिक प्रसिद्धि प्राप्त करनेवाली काव्य की परिभाषा आचार्य मम्मट की है —

“तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुजावनलंकृति पुनः क्वा पि ।”

अर्थात् शब्द और अर्थ का वह समन्वित रूप जो दोष रहित हो और गुण अलंकार सहित हो, तथा कहीं अलंकार स्पष्ट भी न हो, काव्य कहलाता है।

संस्कृत के विभिन्न आचार्यों के मत को जानने के पश्चात् हिन्दी के विद्वानों का काव्य संबंधी मत जानना आवश्यक है।

#### 4.3.2 हिन्दी विद्वानों की काव्य परिभाषा :

आचार्य केशव ने काव्य की कोई परिभाषा न देते हुए काव्य की शोभा अलंकार से ही मानते हैं। उनका कथन है कि

“यद्यपि जाति सुलच्छनी ; सुबरन सरस सुवृत्त ।

भूषण बिना न सोहई, कविता बनिता मित्ति ।”<sup>5</sup>

आचार्य चिन्तामणि ने ‘कवि कुलकल्पतरु’ में **“बतकहाउ रसमै जु है कबित कहावै सोय”** कहकर रस से युक्त वाक्य को काव्य कहा है। उन्होंने ‘काव्य प्रकाश’ में कविता के लक्षण इस प्रकार दिया है।

“सगुण अलंकारन सहित, दोष रहित जो होई।

शब्द अर्थ वारौ कवित, बिबुध कहत सब कोई ॥”<sup>6</sup>

‘चिन्तामणि’ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य की परिभाषा देते हुए कहा है - “जिस

प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है, हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य को वाणी, जो शब्द विधान करती आयी है, उसे कविता कहते हैं।<sup>7</sup>

जयशंकर प्रसाद के अनुसार “काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है जिसका सम्बन्ध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है। वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा है।”<sup>8</sup>

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने ‘रसरंजन’ में कविता को इस प्रकार स्पष्ट किया है।

1. कविता प्रभावशाली रचना है जो पाठक अथवा श्रोता के मन पर आनन्ददायी प्रभाव डालती है
2. मनोभाव शब्द का रूप धारण करते हैं वही कविता है चाहे वह पद्यात्मक हो अथवा गद्यात्मक हो।
3. अन्तः करण की वृत्तियों के प्रकाशन का नाम कविता है।<sup>9</sup>

### 4.3.3 पाश्चात्य विद्वानों की काव्य परिभाषा :

मैथ्यु आर्नल्ड के मतानुसार “काव्य जीवन की आलोचना है।” डॉ. जोन्सन के अनुसार “कविता सत्य एवं आनंद के मिश्रण की अभिव्यक्ति है। जिसमें बुद्धि की सहायता हेतु कल्पना प्रयुक्त होती है।” हेजलिट के अनुसार ‘कविता कल्पना की भाषा है।’<sup>10</sup>

उपर्युक्त विधानों की धारणाओं पर आश्रित काव्य की परिभाषाएँ जानने के बाद हम कह सकते हैं कि काव्य में शब्द, अर्थ, रस, गुण, अलंकार आदि का होना अत्यंत जरूरी है। साथ ही साथ आनंद रमणीयता, कल्पना, विचार, अनुभूति, अभिव्यक्ति आदि बातें भी आ जाती हैं। अतः सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की अभिव्यक्ति ही काव्य है।

## 4.4 काव्य के भेद :

हमारे प्राचीन आचार्यों ने काव्य के मुख्य दो भेद किए हैं —

### 4.4.1 श्रव्य काव्य 4.4.2 द्रश्य काव्य

जिसे कानों से सुनकर आनंद की प्राप्ति होती है, वह श्रव्य काव्य है और जिसे अभिनीत रूप में देखकर आनंद की प्राप्ति हो वह द्रश्य काव्य कहलाता है। जैसे कि रूपक, नाटक, एकांकि आदि। प्राचीनकाल में मुद्रण कला के अभाव में काव्य रसिक सुनकर या सुनाकर काव्य का रसास्वादन करते थे। इसीकारण तत्कालीन परिस्थितियों के आधार पर काव्य विधा का नाम श्रव्य काव्य रखा होगा। आधुनिक युग में मुद्रण यंत्रों तथा कम्प्यूटर की सुलभता के कारण काव्य पढ़कर



भी उसका रसास्वादन किया जा सकता है। द्रश्यकाव्य का संबंध मुख्य रूप से रंगमंच से है। जिसमें नट-विभिन्न चरित्र नायकों के अभिनय द्वारा दर्शकों के हृदय को रसाप्लावित करते हैं। आज द्रश्य काव्य भी श्रव्य काव्य की तरह पढ़े तथा सुने जा सकते हैं। परंतु निश्चय ही इसका संबंध मूल रंगमंच से है।

श्रव्य काव्य का आकार के आधार पर तीन मुख्य भेद किए गए हैं —

(1) गद्य (2) पद्य (3) चम्पू

कविता मुख्य रूप से पद्य से सम्बंधित है। छन्दबद्ध रचना पद्य कहलाती है और छन्दहीन रचना गद्य है। पद्य में छन्दों के नियमों का पालन होता है, उसके अन्तर्गत एक नियमित गति या लय का निर्वाह होता है, यह लय काव्य को एक आकर्षण, संगीतात्मकता एवं स्मरणीयता प्रदान करती है। गद्य में अर्थ की स्वाभाविकता के लिए व्याकरण के नियमों का पालन होता है। पद्य में यह नियम अनिवार्य नहीं होता। पद्य में अर्थ से भी ज्यादा महत्व छन्द के नियमों की पर्याप्त शिथिलता देखी जा सकती है। किन्तु इस शिथिलता में भी गति के सूक्ष्म नियम काम करते हैं और इसी कारण सामान्य गद्य से यह कविता अलग है।

पद्य काव्य के प्रमुख दो भेद माने गये हैं।

#### 4.4.3 प्रबन्ध :

प्रबन्ध का अर्थ है जो बन्ध सहित हो। अर्थात् जो काव्य शृंखलाबद्ध रूप में किसी प्रकार के वर्णन को हमारे समक्ष उपस्थित करता है। यहाँ आवश्यकता सिर्फ इतनी है कि शृंखलाएँ क्रमशः एक-दूसरे के साथ सम्बद्ध होनी चाहिए। प्रबन्ध काव्य की एक विशेषता होती है कि उसकी एक घटना दूसरी घटना से सम्बन्धित हो। किसी कथा की अन्योन्य घटनाओं को बिना पूर्वापर सम्बन्ध के प्रबन्ध में रख देने मात्र से कवि का कौशल नहीं होता। प्रत्युत वे अपनी क्रमबद्धता में ही प्रबन्ध कहलाने की क्षमता रखती है। प्रबन्ध काव्य पूर्वापर निरपेक्ष होकर सापेक्ष होता है। प्रबन्धकार के पास एक बृहद् भावभूमि होती है, जिस पर वह अपनी कल्पना के सहारे विभिन्न रंग भरता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने प्रबन्ध काव्य को परिभाषित करते हुए लिखा है कि - प्रबन्ध काव्य में मानव जीवन का एक पूर्ण द्रश्य होता है। उसमें घटनाओं की सम्बद्ध शृंखला और स्वाभाविक क्रम में ठीक-ठीक निर्वाह के साथ-साथ हृदय को स्पर्श करनेवाले, उसे नाना भावों का रसात्मक अनुभव करानेवाले प्रसंगों का समावेश होना चाहिए। इतिवृत्त मात्र के निर्वाह से रसानुभव

नहीं कराया जा सकता। उसके लिए घटना-चक्र के अन्तर्गत ऐसी वस्तुओं और व्यापारों का प्रतिबिम्बवत् चित्रण होना चाहिए, जो श्रोता के हृदय में रसात्मक तरंगें उठाने में समर्थ हो।”<sup>11</sup>

#### 4.4.4 मुक्तक :

मुक्तक काव्य वह पद्य रचना है, जिसके छन्द स्वतः पूर्ण और स्वतन्त्र रहते हैं और किसी भी क्रम से संचालित किये जा सकते हैं। वे क्रम के किसी आन्तरिक नियम से बँधे नहीं होते हैं।”<sup>12</sup> प्रबन्ध काव्य में पूर्वापर तारतम्य होता है, जबकि मुक्तक में इसका अभाव होता है। प्रबन्ध में छन्द एक दूसरे से कथानक की श्रृंखला में बँधे रहते हैं। उनका क्रम उलटा-पलटा नहीं जा सकता है। मुक्तक छंद पारस्परिक बंधन से मुक्त होते हैं, अतः वे स्वतः पूर्ण होते हैं। साहित्य दर्पणकार ने दो-दो और तीन-तीन छन्दों के भी मुक्तक माने हैं। प्रबन्ध काव्य के सामूहिक प्रभाव पर अधिक ध्यान रखा जाता है जबकि मुक्तक में एक छन्द की अलग-अलग साज-सम्याल की जाती है।

### 4.5 प्रबन्ध काव्य के भेद :

प्रबन्ध काव्य के मुख्य दो भेद माने गये हैं - (1) महाकाव्य (2) खण्ड काव्य

#### 4.5.1 महाकाव्य :

महाकाव्य उच्चकोटि की काव्यविधा है, जो प्रबन्ध काव्य का एक प्रकार है। प्रबन्धकाव्य का अर्थ है, जो विस्तार से कथा कहता है और जिसकी कथा आदि मध्य तथा अन्त के सूत्रों में विधिवत् बंधी हुई है। अर्थात् महाकाव्य यानि जो महान काव्य है वह। अतः महाकाव्य जीवन का सर्वांग चित्रण करनेवाला, युगव्यापी संदेश देने वाला, रसात्मकता से परिपूर्ण एवं कथानक, उद्देश्य और शैली की दृष्टि से जो महत् हो वही महाकाव्य हो सकता है। पश्चिम में संस्कृत एवं हिन्दी के प्राचीन काव्य में महाकाव्य की विधा विशेष प्रचलित रही है। संस्कृत, हिन्दी तथा पाश्चात्य काव्य शास्त्र के मनीषियों ने इसके लक्षणों पर मनोयोग से विचार किया है।

##### 4.5.1.1 संस्कृत विद्वानों के मत :

महाकाव्य-सम्बन्धी धारणा का पूर्ण विकास ‘साहित्य-दर्पण’ में दिये हुए लक्षणों में देखने को मिलता है, जो निम्नांकित हैं —

सर्गबंधो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ॥ 315 ॥

सद्वंशः क्षत्रियोवापि धीरोदात्तगुणान्वितः ।

एकवंशभया भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा ॥ 316 ॥

शृङ्गारवीरशांतानामेकोऽगी रस इष्यते ।

अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसंधय ॥ 317 ॥

इतिहासोद्धवं वृतं अन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ।

चत्वारः तस्य वर्गस्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ॥ 318 ॥

आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ।

कूचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम् ॥ 319 ॥

एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्त कैः ।

नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिकाः इह ॥ 320 ॥

नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ।

सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ॥ 321 ॥

सन्ध्या सूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वांतवासराः ।

प्रातर्मध्याह्न मृगया शैलर्तु वनसागराः ॥ 322 ॥

संभोगविप्रलम्भौ च मुनिः स्वर्ग पुराध्वराः ।

रण प्रयाणोपाय मंत्रपुत्रोदयादयः ॥ 323 ॥

वर्णनीया यथायोग्यं सांगोपांगा अमी इह ।

कर्वेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ॥ 324 ॥

नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्वनाम तु ।

अस्मिन्नार्षे पुनः सर्गा भवन्त्याख्यान संज्ञकाः ॥ 325 ॥

प्राकृतैर्निर्मिते तस्मिन्सर्गा आश्वाससंज्ञकाः ।

छन्दसा स्कन्धकेनैतत्क्वचिद्गलितकैरपि ॥ 326 ॥

अपभ्रंश निबद्धेऽस्मिन्सर्गा कुण्डवकाभिधाः ।

तथाप्रभ्रंशयोग्यानिच्छदांसि विविधान्यापि ॥ 327 ॥<sup>13</sup>

साहित्यदर्पणकार के अनुसार महाकाव्य के लक्षण इस प्रकार है ।

- ◆ इसका नायक देवता, सद्वंश जात क्षत्रिय होता है ।
- ◆ इसका प्रधान रस श्रृंगार, वीर या शांत होता है ; अन्य सभी रस गौण रूप में होते हैं ।
- ◆ कथा ऐतिहासिक या किसी महापुरुष, सज्जन की वास्तविक जीवन-गाथा के आधार पर होनी चाहिए ।
- ◆ धर्म-अर्थ, काम, मोक्ष - इनमें कोई इसका फल होता है ।
- ◆ आरंभ में आशीर्वाद, नमस्कार या वर्ण्यवस्तु निर्देश होता है ।
- ◆ कहीं खलों की निंदा और सज्जनों का गुणवर्णन होता है ।
- ◆ न बहुत छोटे न बहुत बड़े आठ से अधिक सर्ग होते हैं । उनमें प्रत्येक में एक ही छंद होता है किन्तु प्रत्येक सर्ग का अन्तिम छंद भिन्न होता है ।
- ◆ इसमें संध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अंधकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, समुद्र, ऋतु, वन, संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह, मंत्र, प्रेम, अभ्युदय आदि का यथासंभव सांगोपांग वर्णन होता है ।

महाकाव्य के स्वरूप एवं धारणा विषयक विचार करते हुए अग्निपुराण में लिखा है -

सर्गबन्धो महाकाव्यमारब्धं संस्कृतेन यत् ॥ 24 ॥

तादात्म्यमजहत्तत्र तत्समं नातिदुष्यति  
इतिहास कथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम् ॥ 25 ॥

मंत्रद्यूत प्रयाणाजि नियतं नातिविस्तरम् ।  
शक्क्याऽतिजगत्याऽतिशक्क्या त्रिष्टुभा तथा ॥ 26 ॥

पुष्पिताग्रादिभिर्वक्त्राभिर्जनैश्चारुभिः समैः ।  
मुक्ता तु भिन्नवृत्तान्ता नातिसंक्षिप्त सर्गकम् ॥ 27 ॥

अतिशक्करिकाष्टम्यामेकं संकीर्णकैः परः ।  
मात्रयाऽप्यपरः सर्गः प्राशस्त्येषु च पश्चिमः ॥ 28 ॥

कल्पोऽतिनिन्दितस्तस्मिन्विशेषानादरः सताम् ।  
नगरार्णवशैलर्तु चन्द्रार्काश्रमपादयैः ॥ 29 ॥

उद्यानसलिलक्रीडा मधुपानरतोत्सवैः ।

दूती बचन-विन्यासैरसती चरिताद्भुतैः ॥ 30 ॥

तपसा मरुताऽप्यन्यैर्विभावैरतिनिर्भरैः ।

सर्ववृत्तिप्रवृत्तं च सार्वभावप्रभावितम् ॥ 31 ॥

सर्वरीतिरसैः स्पृष्टं पुष्टं गुणविभूषणैः ।

अतएव महाकाव्यं तत्कर्ता च महाकविः ॥ 32 ॥

वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम् ।

पृथक् प्रयत्नं निर्वित्य वाग्विक्रमगिरसाद्वपुः ॥ 33 ॥

चतुर्वर्गफलं विश्वविख्यातं नायकाख्यया ।

समान्वृत्ति निर्व्यूढः कैशिकी वृत्तिकोमलः ॥ 34 ॥<sup>14</sup>

उपर्युक्त महाकाव्य संबंधी धारणाओं में से निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं ।

- ◆ महाकाव्य सर्गबन्ध रचना हैं, ये सर्ग विभिन्न वृत्तांतवाले एवं विस्तृत होते हैं ।
- ◆ उसका कथानक इतिहास प्रसिद्ध अथवा किसी महात्मा, सज्जन व्यक्ति के वास्तविक जीवन पर आश्रित उसका कथानक होता है ।
- ◆ उसमें शकरी, अतिशकरी, जगती, अति जगती, त्रिष्टुप जातिवाले पुष्पिताग्रादि छन्दों का प्रयोग होता है ।
- ◆ उसमें नगर, वन, पर्वत, चन्द्र, सूर्य, आश्रम, वृक्षा, उपवन, जल-क्रीडा, मधुपान उत्सव आदि का वर्णन होता है । समस्त रीतियों, वृत्तियों और रसों का भी समावेश होता है ।
- ◆ उक्ति वैचित्र्य की प्रधानता होने पर भी उस में प्राण के रूप में रस ही व्याप्त रहता है ।
- ◆ उसमें विश्व विख्यात नायक के नाम से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-चतुर्वर्ग की प्राप्ति दिखायी जाती है ।
- ◆ महाकाव्य का प्रारम्भ संस्कृत से किया जाता है उसमें तद्भव और तत्सम प्राकृतों का प्रयोग नहीं होना चाहिए

आचार्य हेमचन्द्र ने 'काव्यानुशासनम्' में महाकाव्य का अत्यंत संक्षेप में यह लक्षण दिया

है —

पद्यं प्रायः संस्कृत प्राकृतापभ्रंश ग्राम्य भाषानिबद्ध भिन्नान्त्यवृत्त सर्गोश्वास संध्यवरस्कंधबंधं सत्संधिशब्दार्थ वैचित्र्योपेतं महाकाव्यं ।<sup>15</sup>

इसमें छन्द, सर्गबन्धता, संधि संगठन, अलंकार, उक्ति वैचित्र्य, वर्णन और भाव, रस आदि की विशेषताओं का संकेत मिलता है ।

आचार्य दंडी ने भी महाकाव्य विषयक लगभग इन्हीं लक्षणों को प्रकट किया है ।

सर्ग बन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम् ।

आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम् ॥ 14 ॥

इतिहास कथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम् ।

चतुर्वर्गफलोपेतं चतुरोदात्त नायकम् ॥ 15 ॥

नगरार्णव शैलर्तु चन्द्रार्कोदयवर्णनैः ।

उद्यानसलिलक्रीडा मधुपानरतोत्सवैः ॥ 16 ॥

विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः ।

मंत्रद्यूत प्रयाणाजि नायकाभ्युदयैरपि ॥ 17 ॥

अलंकृत संक्षिप्तं रसभाव निरन्तरम् ।

सगैरनतिविस्तीर्णैः श्रव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः ॥ 18 ॥

सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तरूपेतं लोकरंजकम् ।

काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायते सदलंकृतिः ॥ 19 ॥<sup>15</sup>

आचार्य दंडी द्वारा दिये गए महाकाव्य विषयक लक्षण इस प्रकार है ।

- ◆ महाकाव्य सर्गबन्ध रचना है ।
- ◆ प्रारम्भमें आशीर्वचन, स्तुति या कथावस्तु का संकेत होना चाहिए ।
- ◆ कथा इतिहास अथवा किसी सज्जन के सच्चरित्र पर आश्रित रहती है ।
- ◆ उदात्त गुणों से युक्त चतुर नायक की चतुर्वर्ग की प्राप्ति का वर्णन इसमें होता है ।
- ◆ इसमें नगर, पर्वत, चन्द्र, सूर्योदय, उपवन, जलक्रीड़ा, मधुपान से युक्त उत्सवों आदि का वर्णन होता है ।

- ◆ महाकाव्य विविध वृत्तांतों से युक्त लोकरंजक होना चाहिए ।
- ◆ उसमें प्रस्तुत काव्य, युगों और कालों तक अमर होना चाहिए ।

उपर्युक्त लक्षणों में बहुत-सी विशेषताएँ अग्निपुराण के लक्षणों की हैं। साथ ही साथ बहुत-सी नवीन और व्यापक धारणाओं को स्पष्ट करनेवाली विशेषताएँ भी सम्मिलित हैं।

#### 4.5.1.2 हिन्दी विद्वानों के मत :

आधुनिक समीक्षकों में रामचन्द्र शुक्ल ने महाकाव्य के चार तत्त्वों को महत्व दिया है - इतिवृत्त, वस्तुव्यापार वर्णन, भाव व्यंजना तथा संवाद ।

महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने महाकाव्य की विवेचना करते हुए लिखा है कि “वर्णानानुगुण से जो काव्य पाठकों को उत्तेजित कर सकता है, करुणाभिभूति, चरित स्तम्भित, कौतूहली और अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष कर सकता है, वह महाकाव्य एवं उसका रचयिता महाकवि ।..... महाकाव्य में एक महाचरित होना चाहिए और उसी महाचरित्र का एक महत् कार्य और महदनुष्ठान होना चाहिए ।”<sup>17</sup>

बाबू गुलाबराय के मतानुसार “महाकाव्य वह विषय प्रधान काव्य है। जिसमें कि अपेक्षाकृत बड़े आकार में जाति में प्रतिष्ठित और लोकप्रिय नायक के उदात्त कार्यों द्वारा जातीय भावनाओं, आदर्शों और आकांक्षाओं का उद्घाटन किया जाता है ।”<sup>18</sup>

#### 4.5.1.3 पाश्चात्य विद्वानों के मत :

पश्चिम में महाकाव्य ‘एपिक’ के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसकी परिभाषा विशद रूप में ‘अरस्तु के काव्यशास्त्र’ में मिली है। उनके मतानुसार “जो नियम दुखांत या ट्रेजेडी के हैं, वे ही महाकाव्य के लिए अपेक्षित हैं ।”<sup>19</sup> अरस्तु के मत से ट्रेजेडी और एपिक में बहुत कुछ साम्य है।

हिगेल ने कथा की घटनाओं को महत्वपूर्ण माना है। उनके मतानुसार कथा इतिहास प्रसिद्ध होनी चाहिए और उसकी घटनाओं का ऐतिहासिक तथ्यों से पूर्ण साम्य होना चाहिए ।<sup>20</sup>

फ्रांसीसी और अंग्रेजी साहित्य में महाकाव्य के सिद्धान्त पर अधिक महत्वपूर्ण बातें प्राप्त नहीं होती। सामान्य उक्तियाँ ही अधिकतर मिलती हैं। “ब्यायलू” के विचार से महाकाव्य के नायक की विशेषता उसके साहस और सद्गुणों में निहित होती है ।<sup>21</sup>

इस प्रकार संस्कृत, हिन्दी और पाश्चात्य विद्वानों के महाकाव्य संबंधी विचारों को जानने के

बाद आमतौर पर निम्नलिखित विशेषताएँ द्रष्टिगत होती हैं।

- ◆ महाकाव्य के सर्ग न छोटे होने चाहिए, न बड़े। आठ से कम नहीं और तीस से ज्यादा नहीं।
- ◆ उसमें उदात्त चरित्रवाले किसी महापुरुष का नायक रूप में वर्णन रहना चाहिए।
- ◆ उसमें किसी महत् कार्य का वर्णन होना चाहिए।
- ◆ साहित्यिक रस के संदर्भ में शृंगार, वीर, शान्त में से कोई एक अंगी रूप में प्रतिष्ठित किया जाना चाहिए। शेष रस गौण रूप में अपनाएँ गए हो।
- ◆ इसमें कहीं-कहीं पर सज्जनों की प्रशंसा और खलों की निंदा होती है।
- ◆ प्रकृति वर्णन के रूप में संध्या वर्णन, सूर्योदय, चन्द्रोदय आदि का वर्णन होता है।
- ◆ उसमें पंच संधियों आदि की योजना होनी चाहिए।
- ◆ उसमें सांस्कृतिक सम्बद्धता होनी चाहिए।

## 4.5.2 खण्डकाव्य :

प्रबन्ध काव्य का दूसरा भेद खण्डकाव्य या खण्ड प्रबन्ध है। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें कथावस्तु संपूर्ण न होकर उसका एक अंश ही होता है। जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना या द्रश्य का मार्मिक उद्घाटन होता है। वैसे संस्कृत काव्यशास्त्र में खण्डकाव्य के लक्षणों पर अधिक विस्तार से किसी आचार्य ने उल्लेख नहीं किया है। केवल आचार्य विश्वनाथ ने खण्डकाव्य विषयक अपनी मान्यताओं को प्रकट की है।

### 4.5.2.1 संस्कृत के विद्वानों के मत :

साहित्यदर्पणकार पंडितराज विश्वनाथ ने खण्डकाव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है।

“भाषा-विभाषा नियमात्काव्यं सर्ग समुज्झितम्।

एकार्थप्रवणैः पद्यैः संधिसामग्र्यवर्जितम् ॥ 328 ॥

खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैक देशानुसारि च।”<sup>22</sup>

अर्थात् खण्डकाव्य महाकाव्य का एक देशीय रूप होता है।

### 4.5.2.2 हिन्दी विद्वानों के मत :

डॉ. भगीरथ मिश्र ने ‘हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास’ में खण्डकाव्य विषयक अपना मत



प्रकट किया है - उनके मतानुसार खण्डकाव्य में “प्रायः जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना या द्रश्य का मार्मिक उद्घाटन होता है और अन्य प्रसंग संक्षेप में रहते हैं - इसमें भी कथा संगठन आवश्यक है, सर्गबद्धता नहीं। इसमें भी वस्तु-वर्णन, भाव-वर्णन एवं चरित्र का चित्रण किया जाता है, पर कथा विस्तृत नहीं होती।”<sup>23</sup>

डॉ. बलदेव उपाध्याय के मतानुसार - “वह काव्य जो मात्रा में महाकाव्य से छोटा परन्तु गुणों में उससे कथमपि शून्य न हो, खण्डकाव्य कहलाता है। महाकाव्य विषय-प्रधान होता है, परन्तु खण्डकाव्य मुख्यतः विषयी-प्रधान होता है, जिसमें लेखक कथानक के स्थूल ढाँचे में अपने वैयक्तिक विचारों का प्रसंगानुसार वर्णन करता है।”<sup>24</sup>

डॉ. निर्मला जैन ने खण्डकाव्य को महाकाव्य का लघु-रूप ही माना है। इस संदर्भ में उनका कहना है कि - “महाकाव्य में व्यक्ति विशेष या अनेक व्यक्तियों के संपूर्ण जीवन अथवा युग विशेष की समग्रता का चित्रण होता है। अतः अंश विशेष का अनुसरण करने का अभिप्राय है एक घटना या खण्ड विशेष अनुसरण। सीमित विषय की अभिव्यक्ति तदनुकूल सीमित क्लेवर में ही उचित होगी। अत एव खण्डकाव्य महाकाव्य की समग्रता और महत्ता की तुलना में आकार की दृष्टि से उसके एक खण्ड या अंश के समान होगा। उसमें वर्णन-विस्तार, सर्ग विभाजन, सभी विषयानुकूल होंगे।”<sup>25</sup>

बाबू गुलबाराय खण्डकाव्य के विषय में लिखते हैं - “खण्डकाव्य में एक ही घटना को मुख्यता दी जाकर उसमें जीवन के किसी एक पहलू की झांकी-सी मिल जाती है।”<sup>26</sup>

हिन्दी साहित्य कोश में भी प्रायः इन्हीं विशेषताओं को रेखांकित किया गया है - “खण्डकाव्य एक ऐसा पद्यबद्ध कथा काव्य है, जिसके कथानक में इस प्रकार की अन्विति हो कि उसमें अप्रासंगिक कथाएँ सामान्यतया अन्तर्भुक्त न हो सके, कथा में एकांगिता-साहित्य दर्पणकार के शब्दों में एकदेशीयता हो तथा कथा-विन्यास क्षेत्र में क्रम, आरंभ-विकास-चरम सीमा और निश्चित उद्देश्य में परिणति हो।”<sup>27</sup>

### 4.5.2.3 पाश्चात्य विद्वानों के मत :

पश्चिम में खण्डकाव्य जैसी कोई विद्या स्थिर नहीं की गई है, हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार - “पाश्चात्य देशों में प्रबंधों (Narratives) के दो रूप महाकाव्य और कथाकाव्य (रोमांस) बहुत पहले ही मान लिए गए थे। किन्तु लघु प्रबंध-काव्यों (खण्डकाव्य) को भिन्न नाम दिया गया,

उसे 'नैरेटिव पोयट्री' (Narrative Poetry - प्रबन्ध काव्य) ही कहा जाता था, रोमांस कथा काव्य (रोमांस) नहीं।<sup>28</sup>

युनानी साहित्य में सर्वप्रथम प्लेटो का काव्य विभाजन द्रष्टिगत होता है। उन्होंने काव्य के तीन भेद किए —

- (1) अनुकरणात्मक काव्य (नाटक)
- (2) प्रकथनात्मक काव्य (आख्यान)
- (3) मिश्रकाव्य (मिश्र)

अरस्तु ने कवि व्यक्तित्व, काव्य-विषय, काव्य माध्यम - रीति, अनुकरण जैसे पाँच आधार ग्रहण कर काव्य, रूप का विस्तार से विवेचन किया है। विषय को आधार बनाकर उन्होंने - महाकाव्य, त्रासदी, कामदी, रौद्रस्त्रोत व संगीत काव्य - काव्य के ये पाँच भेदों का उल्लेख किया है। अनुकरण रीति से समाख्यान काव्य व द्रश्य काव्य महाकाव्य के लघुरूप तक उनकी कल्पना शक्ति नहीं पहुँच पाई।<sup>29</sup>

विलियम हेनरी हडसन ने काव्य के विषयीगत (Subjective) और विषयगत (Objective) दो भेद किये हैं। विषयीप्रधान काव्य को प्रगीत (Lyrics) तथा विषय प्रधान काव्य को एपिक (Epic) की संज्ञा दी। एपिक का पुनर्विभाजन - Narrative (आख्यान काव्य) में तथा Dramatic (रूपक काव्य) में किया।<sup>30</sup>

इस प्रकार पाश्चात्य विद्वानों के काव्य विभाजन को देखकर हम कह सकते हैं कि Epic Narrative (आख्यान) ही भारतीय खण्डकाव्य की समीपवर्ती विधा है।

अंततः संस्कृत, हिन्दी एवं पाश्चात्य विद्वानों के खण्डकाव्य सम्बन्धी मतों को देखकर हम खण्डकाव्य की निम्नलिखित विशेषताएँ बता सकते हैं।

- ◆ खण्डकाव्य प्रबन्ध काव्य का एक दूसरा प्रकार है।
- ◆ खण्डकाव्य की कथावस्तु इतिहास-प्रसिद्ध, कल्पित, किसी भी प्रकार की हो सकती है।
- ◆ इसमें समग्र जीवन को न लेकर जीवन के एक खण्ड या पहलू को महत्व दिया जाता है। अवांतरित कथाओं का प्रायः अभाव होता है।
- ◆ इसमें निश्चित उद्देश्य की भावना निहित होती है।

- ◆ खण्डकाव्यकार अपने उद्देश्यानुसार नायक देव, दनुज, ख्यात, कल्पित, धीरोदात्त, धीरललित, धीर प्रशांत, धीरोदत्त में से किसी भी प्रकार के नायक का चयन कर सकता है। खण्डकाव्य नायक प्रधान या नायिका प्रधान भी होते हैं।
- ◆ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से किसी एक फल की प्राप्ति होनी चाहिए।
- ◆ इसमें सभी सन्धियाँ नहीं होती, कथा विन्यासवक्रता तथा प्रकृति एवं लोकरीति का आंशिक चित्रण होता है।
- ◆ इसमें सर्गबद्धता अनिवार्य नहीं है और सर्ग रखे जाए तो भी उनकी संख्या निश्चित नहीं
- ◆ खण्डकाव्य एक छंद में भी लिखें जाते हैं और विभिन्न छंदों में भी।
- ◆ कुछ खण्डकाव्यों में मंगलाचरण और फलश्रुति मिलती है, किन्तु यह अनिवार्य नहीं है।
- ◆ खण्डकाव्य की रचना यह अनिवार्य नहीं कि परिनिष्ठित भाषा में ही हो। खड़ी बोली, अवधी, ब्रज, राजस्थानी आदि भाषाओं में भी खण्डकाव्य लिखे गए हैं।
- ◆ खण्डकाव्य सर्गबद्ध और सर्गरहित भी हो सकता है। इसमें सर्ग सीमा भी निश्चित नहीं है।

### 4.5.3 एकार्थ काव्य :

एकार्थ काव्य में महाकाव्य की भाँति व्यक्ति के समग्र जीवन का चित्रण किया जाता है। उसमें घटना-वैविध्य मिलता है। काव्य का विभाजन सर्गों में किया जाता है। साथ ही संधियों का विधान नहीं होता और एक ही अर्थ या उद्देश्य को लेकर पद्यबद्ध काव्य रचा जाता है। साहित्य-दर्पणकार ने इसे इस प्रकार व्याख्यायित किया है —

“द्रष्टव्य-भाषा-विभाषा नियमात् काव्यं सर्ग समुत्थितम्  
एकार्थ प्रवणैः पद्यैः संधि समग्र भव वर्जितम् ॥”<sup>31</sup>

पुराणों के सर्गों में सृष्टि, प्रलय, वंश परम्परा, मन्वन्तर तथा विशिष्ट वंशीय महापुरुषों के चरित्रादि वर्णित होते हैं। पुराणों के उपपुराण तथा महापुराण आदि भेद किये गये हैं।

चरित काव्य का सृजन जीवन चरित्र की शैली पर होता है। नायक का जन्म से मृत्यु पर्यन्त तक का जीवन चरित काव्य में होता है। पूर्वजन्मों की कथा, वंशावली वर्णन, जन्म का कारण और नगर इत्यादि का विस्तृत वर्णन होता है।

आख्यायिका प्रबन्ध काव्य की ही विधा है। जिसमें कथासूत्र पर विशेष बल नहीं दिया

जाता। इसमें भाव की प्रधानता होती है। इसके भी तीन भेद देखने को मिलते हैं।

(1) प्रेमाख्यान (2) नित्याख्यान (3) साहसिक आख्यान

प्रेमाख्यान के भी दो भेद मिलते हैं।

(1) शुद्ध तथा (2) रूपात्मक रोमांस।

काव्य के विभिन्न रूपों का परिचय प्राप्त करने के बाद हमें डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्यों का परिचय प्राप्त करना भी आवश्यक है। अतः अब हम काबराजी के प्रबन्ध काव्यों पर प्रकाश डालेंगे।

## 4.6 डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्य :

काबराजी ने कुल छः प्रबन्ध काव्य लिखे हैं। उसमें तीन महाकाव्य और तीन खण्डकाव्य हैं। अब हम काबराजी के प्रबन्ध काव्यों का परिचय प्राप्त करेंगे।

### 4.6.1 खण्डकाव्य :

#### 4.6.1.1 परिताप के पाँच क्षण :

‘परिताप के पाँच क्षण’ काबराजी का सर्व प्रथम खण्डकाव्य है, जो सन् 1979 में प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत काव्य में कवि ने महाभारत के साधारण स्त्री पात्र अम्बा को असाधारणत्व प्रदान किया है। समस्त कथा को कवि ने पाँच सर्गों (क्षणों) में विभाजित किया है। कवि ने काव्य नायक भीष्म के अंतर्मन की व्यथा का मार्मिक चित्रण किया है। शरशैय्या पर लेटे हुए भीष्म अनेकों प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ने का प्रयास कर रहे हैं किन्तु उसे कोई उत्तर नहीं मिल पाते हैं तो वे कुंठित एवं व्यथित होकर रह जाते हैं और शरशैय्या पर पड़े हुए परिताप के क्षणों को भुगत रहे हैं। काव्य नायिका अम्बा के माध्यम से कवि ने नारी अपमान की गाथा को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

द्वितीय क्षण में कवि ने मत्स्यगंधा के पात्र का चरित्रांकन किया है। भीष्म ने अपनी माँ मत्स्यगंधा के परिताप को देखकर प्रतिज्ञा की थी कि वे अपने भाई विचित्रवीर्य के लिए तीन कन्याओं का अपहरण करके उसे उपहार में देंगे।

“तुम्हारे अंश को कुरुवंश का आधार मैं दूंगा !

हरण कर

एक-दो क्या तीन

रति - सी उर्वशी - सी और रंभा - सी  
नवोद्भूत राजकन्याएँ  
उसे उपहार में दूँगा ।”<sup>32</sup>

कवि ने प्रस्तुत काव्य में भीष्म और अम्बा दोनों पात्रों को मनोवैज्ञानिक कसौटी पर कसा है। तीन-तीन प्रतिज्ञाओं के दायरों में बद्ध होकर भीष्म का पूरा जीवन कुंठाओं से घिर जाता है।

तीसरे क्षण में कवि ने अम्बा का चरित्रांकन किया है। भीष्म ने काशीराज की तीन कन्याओं का अपहरण किया था। इनमें दो विचित्रवीर्य की पत्नी बनना स्वीकार कर लेती हैं, किन्तु शाल्व के प्रणयपाश में बँधी होने के कारण अम्बा उसका अस्वीकार करती है। भीष्म ने अम्बा का अपहरण किया था अतः शाल्व उसे ‘भीष्म का उच्छिष्ट’ कहकर अपमानित कर स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। भीष्म तो प्रतिज्ञाबद्ध थे। अतः वे उसे नहीं स्वीकार सकते हैं। विचित्रवीर्य भी अपने को असमर्थ पाकर उसे नहीं स्वीकारता है। अतः प्रणय के त्रिकोणात्मक दुत्कार से अम्बा तीन तरह हो जाती है। उसकी प्रतिशोध वृत्ति प्रबल हो जाती है। यहाँ तक की अपना आत्म समर्पण करके, शिखंडी बनने के लिए भी वह तैयार हो जाती है। किन्तु अंत में बदला लेकर भी कोरा पश्चाताप ही बचता है। उसे कुछ भी हाँसिल नहीं होता।

भीष्म और अम्बा इन दो पात्रों के माध्यम से कवि ने नर और नारी के सम्बन्धों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। शरशैय्या पर पड़े हुए भीष्म को अब नर और नारी जीवन के रहस्य समझ में आये, किन्तु अब तो अम्बा जो कुछ कहें, सुनना ही भीष्म की नियती हो जाती है।

“अपहरण मेरा किया निर्लज्ज - सा  
अब वरण करने में तुम्हें क्यों लाज आती है ?  
नारीत्व से ज्यादा नहीं है  
प्रण तुम्हारे कीमती।  
अपनी प्रतिज्ञा के  
कँटीले जंगली रोगी धतूरे को —  
जिलाने के लिए  
तुम  
एक नारी की  
सुनहरी चंदनो मादक मनोहर वाटिका को

विष पिलाना चाहते हो?"<sup>33</sup>

अम्बा अपने अन्तर्मन की वेदना को बड़े दर्द के साथ भीष्म के सम्मुख रखती है —

तीन कन्याएँ तुम्हें हम मिल गई !  
 भेड़-बकरी ज्यों हरण करके हमारा  
 हाय,  
 उस नीवीर्य अपने अनुज के खातिर  
 कली जी की तुम्हारी खिल गई !  
 धन्य हो तुम !  
 औरते उपहार में देना  
 तुम्हारी दमित कुंठा का  
 उजागर पक्ष है ।  
 भोग सकते खुद नहीं  
 हाँ  
 भोग के साधन  
 जरूरतमंद के अन्तः पुरों में भेजना  
 शायद तुम्हारे लक्ष्य है ।"<sup>34</sup>

चतुर्थ और पंचम क्षण में कवि ने अम्बा की प्रतिशोधात्मक वृत्ति का अंकन किया है। भीष्म से प्रतिशोध लेने के लिए अम्बा ने उग्र तप करके अपना सोने-सा तन ताम्र-सा कंकाल बना दिया। उसके तपोबल से प्रभावित होकर भगवान आदित्य ने उसे एक वरमाला दी किन्तु अम्बा को ऐसा कोई भी पुरुष नहीं मिलता है जो भीष्म से प्रतिशोध लेने के लिए तैयार हो। अतः अम्बा उस वरमाला को द्रूपद के दरबार में फेंककर दुबारा तप करने लगती है। उसके तप से प्रभावित होकर भगवान शिव ने उसे भीष्म से प्रतिशोध लेने के लिए एक रास्ता दिखाया। उन्होंने कहा कि बदला लेने के लिए तुम्हें तन से पुरुष और मन से नारी बनना पड़ेगा। किन्तु बाद में दोनों को पछताना पड़ेगा। प्रतिशोध की आग में जल रही अम्बा आत्मसमर्पण करके शिखण्डी बन जाती है। जब युद्ध क्षेत्र में शिखण्डी भीष्म की मृत्यु बनकर आता है तो पितामह अपने हथियार गिरा देते हैं, तब अर्जुन उस पर बाणों की वर्षा करके उसे शरशैल्या पर लिटा देता है। उसी समय शिखण्डी भीष्म के सामने एकबार फिर प्रश्नों की जड़ी लगाता है —

“भीष्म,  
 अम्बा मर गई पर प्रश्न तो अभी खड़ा है।  
 ओह मेरे भीष्म,  
 जलते प्रश्न का यह शूल प्राणों में गड़ा है।  
 मौत के पहले बता दो —  
 क्या मुझे तुम चाहते थे ?”<sup>35</sup>

कवि ने भीष्म के परिताप के माध्यम से स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की गहराई को प्रकट किया है। अंतिम क्षण में भीष्म की वेदना उभरकर सामने आयी है। वे अर्जुन के समक्ष अपने पापों का परिताप प्रकट करते हैं।

“पार्थ,  
 मैंने पाप हाथों से नहीं  
 हर वक्त आँखों से किया है।”<sup>36</sup>

परिताप करने से मनुष्य विशुद्ध बन जाता है। भीष्म अपने अंतिम क्षण में परिताप की अग्नि में तपते हुए, अर्जुन से कहते हैं -

“पिता, माँ और भाई की कलंकित वासना को  
 पूर्ण करने की प्रतिज्ञाएँ नहीं लेते।  
 वे स्वयं को कष्ट देकर मोहवश होते नहीं  
 तो अन्त में आँसू बहा  
 मेरी तरह रोते नहीं।  
 वे कभी नारीत्व का करते नहीं अपमान  
 तो मेरी तरह  
 परिताप में दो क्षण कभी खोते नहीं।”<sup>37</sup>

इस प्रकार ‘परिताप के पाँच क्षण’ में कवि ने भीष्म एवं अम्बा के पात्र के माध्यम से जीवन के रहस्यों का अंकन किया है।

#### 4.6.1.2 धनुष भंग :

‘धनुष भंग’ काबराजी का दूसरा खण्डकाव्य है, जिसका प्रकाशन सन् 1982 में हुआ। यह

नायिका प्रधान खण्डकाव्य है, जिसमें एक क्षण की कथा है। सीता स्वयंवर में धनुष भंग होता है, उसी क्षण सीता के मन में अनेक कल्पनाएँ तरंगित होने लगती हैं। तब एक पल के लिए पलकें झपकाने की क्रिया दौरान राजा जनक के पूर्व पुरुष निमि सीता की पलकों पर बैठ जाते हैं और इक्कीस पीढ़ियों से चल रही धनुष एवं हल की कहानी को प्रतीक के रूप में कहते हैं। संपूर्ण कथा को कवि ने पाँच अध्यायों में विभक्त किया है, जिसे कवि ने 'विस्फोट' की संज्ञा से अभिहित किया है।

प्रथम विस्फोट में निमि की कथा है। उन्होंने सत्ता की अपेक्षा श्रम की महिमा प्रस्थापित की है। उनके राज्य में एकबार अकाल पड़ा तब बादलों को रिजाने के लिए उन्होंने एक बड़े यज्ञ का आयोजन किया। यज्ञ के ऋत्विक् के लिए उन्होंने गुरु वशिष्ठ को आमंत्रित किया, किन्तु गुरु वशिष्ठ तो पहले से ही इन्द्र द्वारा आयोजित यज्ञ के ऋत्विक् बन बैठे थे। उन्होंने निमि को कुछ दिन प्रतीक्षा करने के लिए कहा। किन्तु निमि समय को नष्ट करनेवाले नहीं थे। उन्होंने गुरु वशिष्ठ के स्थान पर महर्षि गौतम को ऋत्विक् बनाकर यज्ञ का शुभारंभ कर दिया। यज्ञ पूर्ण होने से पहले गुरु वशिष्ठ का वहाँ आगमन होता है और क्रोधित होकर वे निमि को देह भष्म हो जाने का शाप देते हैं। निमि भी वशिष्ठ को मृत्यु का शाप देते हैं। शापग्रस्त वशिष्ठ की मृत्यु हो जाती है और वे उर्वशी के गर्भ से पुनः जन्म लेते हैं। उधर निमि भी शाप के शिकार जाते हैं। इतनी कथा कहने के बाद कथा का प्रवाह सीता की ओर मुड़ता है, जहाँ वह वरमाला लेकर खड़ी है। धनुष भंग होते ही चारों ओर राम की जयजयकार होती है। सीता वरमाला हाथ में थामकर राम को पहनाने के लिए आगे बढ़ती है, किन्तु वह अपने अंतर्मन में चली जाती है और निमि उसकी पलकों पर बैठ जाते हैं। सीता समझ नहीं पाती है कि क्यों उसकी पलकें उठ नहीं रही हैं।

द्वितीय विस्फोट में कवि ने निमि के साम्राज्य का वर्णन किया है। जिन किशानों की आँखों में आँसू थे उनकी आँखों में आज नूतन ज्योति परिलक्षित होती है। निमि के साम्राज्य में शांति और समृद्धि है। प्रजा के दिलों में निमि के प्रति असीम आदर एवं स्नेह है। क्योंकि निमि का मानना था कि -

“यह धरा ही

उस नियन्ता का हमें वरदान है।

स्वर्ग या वैकुण्ठ की आराधना हम क्यों करे !

इस धरा की धूल का प्रत्येक कण



भगवान है ।  
 धूल को जिसने चढ़ाया सीस पर  
 वह फूल जैसे चढ़ गया जगदीश पर ।  
 जो धरा की मृत्तिका को  
 भाल का चन्दन बनाता,  
 वह समूचे विश्व को,  
 साकार नन्दनवन बनाता ।”<sup>38</sup>

कवि ने निमि के पात्र द्वारा धरा एवं धरा का महत्व समझनेवाले कृषकों के प्रति सम्मान प्रदर्शित किया है ।

तीसरे विस्फोट में कवि ने निमि की दशा का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है । निमि की देहयष्टि यज्ञवेदिका के पास पड़ी थी । यह देखकर सब ऋषिमुनिगण, ग्रामजन, परिजन, गुरुजन, गिरिजन सभी व्यथित हो जाते हैं । गौतम ऋषि भी निमि की इस दशा के लिए अपने को जिम्मेवार ठहराते हैं । अपनी संपूर्ण साधना को दाव पर लगाकर भी वे निमि को जीवित करना चाहते हैं । देवता जब प्रकट होते हैं, तब गौतम ऋषि निमि के शरीर को जीवित करने का आग्रह करते हैं ।

“मेरा है यजमान, दूसरा तन क्यों ग्रहण करेगा ?  
 मानव चाहे मर्त्य, मगर मिट्टी को करता बंदन,  
 उसे बड़ा प्यारा होता है इस शरीर का बंधन ।  
 क्षण से प्रेम, देह की ममता और भूमि से नाता,  
 इन तीनों को छीन नहीं पाएगा स्वयं विधाता ।  
 कर्म-काल-संस्कार आदि में चाहे जो विग्रह है,  
 मृत शरीर ही जीवित हो, यह मानवीय आग्रह है ।”<sup>39</sup>

ऋषि गौतम निमि को जीवित करना चाहते हैं, किन्तु निमि है जो पुनर्जीवित नहीं होना चाहते थे । वे तो विदेह होकर मनुष्यों की पलकों पर बसना चाहते थे । वे युगों तक कृषकों के जीवन से जुड़े रहकर पल-पल की किंमत बनना चाहते थे । अतः निमि को इच्छित वरदान मिल जाता है ।

चौथे विस्फोट में कवि ने निमि के निष्प्राण शरीर के मंथन की कथा कही है । निमि देवराज इन्द्र से वरदान पाकर नेत्रों की पलकों के उन्मीलन के अधिदेवता बन गए किन्तु महर्षि गौतम को सन्तुष्टि

नहीं मिलती है। वे निमि की देह का मन्थन करके अपनी इच्छानुसार निमि उत्पन्न करना चाहते हैं और वे सफल भी होते हैं। यह देखकर सभी आनंद से पुलकित होकर जयजयकार करने लगते हैं। अर्थात् महाराज निमि ही 21वीं पीढ़ी में जनक के रूप में उत्पन्न होकर सीता को पुत्री के रूप में प्राप्त करते हैं।

पाँचवे विस्फोट में कवि ने 'पिनाक' नामक शिव धनुष की उत्पत्ति की कथा कही है। निमि के मतानुसार शस्त्रों का जब प्रदर्शन लगेगा और पूजा की चीज बनेंगे तब हथियारों का कोई मूल्य नहीं रहेगा। भगवान शिव ने त्रिपुरासुर का नाश करने के लिए पिनाक का निर्माण किया था। निमि की छठी पीढ़ी में देवरात ने तपस्या के द्वारा भगवान शिव से प्राप्त किया था। तब से यह धनुष सूर्यवंशियों का आराध्य देव बन गया था। बचपन में सीता ने इसे उठा लिया था। इसलिए सीता के लिए ऐसा वर चाहिए जो धनुष को तोड़ सके। कवि ने निमि के पात्र द्वारा आधुनिक मनुष्य जो शस्त्रों के पीछे अंधी दौड़ करता है, उसे सीख दी है कि -

“धनुष ने दुर्दान्त दुष्टों को हराया —

ठीक है।

ठीक है, उसने सँवारे

स्वर्ण के कितने गगन चुम्बी महल,

राज्य, रमणी, रत्न, सिंहासन सबल,

किन्तु उसने ही जलाए

झोंपड़ी में श्वास लेते

पंक में लथपथ कई कच्चे कमल।

धनुष का होना स्वयं में बात है कुछ,

धनुष का उठना स्वयं में बात है कुछ

किन्तु

धनु का टूटना कुछ बात ऐसी है

X X X

यही है शुद्ध निःशस्त्रीकरण।”<sup>40</sup>

अर्थात् धनुष शक्ति का प्रतीक है, किन्तु श्रम के आगे इस शक्ति को भी झुकना पड़ता है। क्योंकि मनुष्य अपने श्रम से पुरी दुनिया में विजय पा सकता है। श्रम ही मनुष्य को सबकुछ हाँसिल

करवाता है। कवि का कहना है कि -

“शस्त्र के और शस्त्र के गृह-युद्ध की दावाग्नि को  
श्रम का सुशीतल जल  
अकेला जल  
बुझाता है, बुझाएगा।”<sup>41</sup>

कवि ने युद्ध की भयंकरता को भी प्रकट कर दिया है -

“युद्ध की लपटें  
समूची जातियों को बाँस वन-सी  
रोज तिल तिलकर जलाती है।”<sup>42</sup>

इस प्रकार प्रस्तुत काव्य की घटना पौराणिक एवं इतिहास प्रसिद्ध है, किन्तु कवि ने अपनी कल्पना के द्वारा यथार्थ चित्रों को भी प्रस्तुत करके कथा को रोचक बना दिया है।

#### 4.6.1.3 नरो वा कुंजरो वा :

अपने दो-दो खण्ड काव्यों की सफलता के बाद कवि ने सन् 1984 में तीसरा खण्डकाव्य सुधि पाठकों तक पहुँचाया। काबराजी ने इसकी कथा पुराण प्रसिद्ध महाभारत की कथा से लिया है। पूरे खण्डकाव्य को कवि ने पाँच सर्गों में विभाजित किया है। प्रस्तुत काव्य के द्वारा कवि ने दूध के मूल्य को प्रतिपादित किया है। काव्य का मुख्य पात्र गुरु द्रोण है, जिसका जीवन अर्ध सत्य पर टिका हुआ है। इस काव्य ग्रंथ की भूमिका में ही कवि ने लिखा है - ‘नरो वा कुंजरो वा’ खण्डकाव्य में अर्धसत्य पर टिके हुए द्रोणाचार्य के जीवन दर्शन की वह प्रतीक कथा है, जो दूध के मुहाने से प्रारम्भ होकर रक्त के महासागर पर समाप्त होती है।”<sup>43</sup>

प्रथम सर्ग ‘अस्वत्थामा हता...’ वाक्य से शुरू होता है। इस वाक्य में युधिष्ठिर का अर्धसत्य टिका हुआ है। युधिष्ठिर के मुँह से यह वाक्य सुनते ही गुरु द्रोण काँच के टुकड़े की भाँति टूटकर बिखर पड़ते हैं। युधिष्ठिर गुरु द्रोण को पूरी बात बताना चाहते हैं। वे बार-बार ‘बात पूरी तो सुनो गुरुवर!’ कहकर अपनी पूरी बात रखने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु गुरु द्रोण पूरी बात सुनने के लिए तैयार ही नहीं हैं। कवि ने स्पष्ट किया है कि जो अब तक अधूरे सत्य में पला है, वह भला बात पूरी क्यों सुनेगा ?

कुरुक्षेत्र का युद्ध चल रहा है। अंधे धृतराष्ट्र संजय की दिव्य आँखों से वे सारे द्रश्य देख रहे

है। गांधारी अपने पुत्रों की विजय की कामना करके हाथों में आरती लेकर तैयार है। रात्री के दौरान शिबिर में युद्ध विषयक गुप्त मंत्रणाएँ हो रही हैं। उसमें कवि ने स्वार्थी राजनीति का पर्दाफाश किया है। मंत्रणा के दौरान गुरू द्रोण पर एक आरोप लगाया जाता है कि -

“नमक खाते हैं हमारा  
प्यार करते पाण्डवों को।”<sup>44</sup>

भीष्म पितामह भी दस दिनों से पाण्डवों का बाल भी बाँका नहीं पाये हैं, और अब शरशैय्या पर पड़े हुए हैं। गुरू द्रोण से सब कहते हैं कि यदि आप कमजोर हो गए हैं तो सेनापति पद को छोड़ दीजिए। तभी कर्ण भी उन पर आरोप लगाता है। किन्तु द्रोण उसे अपमानित कर नमक का मूल्य समझाने लगते हैं। वे दूर्योधन से कहते हैं -

“ओर दूर्योधन ! तुम्हारा नमक मेरे रक्त में इतना घुला,  
इतना घुला,  
अब अलग कैसे कर सकूँगा ?  
प्राण देकर मूल्य उसका मैं चुकाना चाहता हूँ।  
रक्त देकर नमक का कर्जा चुकाना चाहता हूँ।”<sup>45</sup>

गुरू द्रोण दूर्योधन को समझाते हैं कि - “तुम्हारे नमक का बदला चुकाने के लिए मैं अपना खून बहाने में भी नहीं हिचकिचाऊँगा और पाण्डव जो बच रहे हैं अभी तक कृष्ण की चालाकियों से बच रहे हैं। क्या मैंने अर्जुन के प्राणप्रिय अभिमन्यु को नहीं मार गिराया?”

द्रोण हरवक्त अपने पुत्र के बारे में ही सोचते रहते हैं। पुत्र प्रेम के कारण ही वे दूर्योधन के सामने उसकी रक्षा की शर्त रखते हैं। वे दूर्योधन से कहते हैं कि - मेरे प्राण मेरे पुत्र में ही बसे हैं। यदि तुम मेरे पुत्र को किसी तरह से पाण्डवों से बचाओगे तो मैं युधिष्ठिर को अपने भाइयों के साथ तुम्हारे सामने लाकर खड़ा कर दूँगा।

“पुत्र में मेरी बसी है साँस,  
पुत्र को मेरे बचाओगे, बचोगे तुम,  
बचूँगा मैं।  
नहीं तो मैं मरूँगा एक छिन में।  
तुम मरोगे चार दिन में।”<sup>46</sup>

पाण्डवों की शिविर में भी गुप्त मंत्रणाएँ हो रही हैं। अगले दिन के युद्ध का पूर्वयोजन हो रहा है। कृष्ण पाण्डवों को गुरु द्रोण का वध करने की युक्ति बतलाते हुए कहते हैं —

जब तक जीवित रहता है अस्वत्थामा,  
ये द्रोण तभी तक जीवित रह पाएंगे।  
'अब बेटा नहीं रहा...' इतना सुनते ही  
ये रेत-महल के जैसे ढह जाएंगे।

बेटे से उनके प्राण जुड़े हैं ऐसे,  
प्राणों से बेटा बंधा हुआ है ऐसे।  
जाले से मकड़ी बंध हुई हो जैसे,  
मकड़ी से जाला बंधा हुआ हो जैसे।

X X X

कल कष्टों का क्षण जो है आनेवाला  
वह कूटनीति के द्वारा जा सकता है।  
जो अर्द्ध सत्य के लिए जिया जीवन में,  
वह अर्द्ध सत्य से मारा जा सकता है।''<sup>47</sup>

गुरु द्रोण को मारने के लिए कृष्ण युधिष्ठिर को अर्द्ध सत्य का सहारा लेने के लिए कहते हैं। वैसे भी गुरु द्रोण का जीवन ही अर्द्ध सत्यों में बीता है। जिसे बेटे को वे जान से भी ज्यादा प्यार करते हैं उस बेटे को अपनी दीन अवस्था के कारण दूध भी नहीं पिला पाए हैं। दूध के बदले आटे का घोल पिलाकर उसने कुंठाएँ और हीनताएँ ही पिलाया हैं। द्रोण को भी अपनी माँ का दूध नहीं मिल पाया था। उसकी माँ घृताची नामक अप्सरा थी जो उसे जन्म देकर ही कलश के पास रोता हुआ छोड़कर चली गई थी। द्रोण की पत्नी कृपी की भी यही कहानी है। द्वितीय सर्ग में द्रोण की कहानी के साथ-साथ कवि ने उसकी भी कथा रखी है। उसकी माँ जानपदी भी अप्सरा थी जिसने कृपाचार्य और कृपी को जन्म देने का ही दायित्व निभाया था।

तृतीय सर्ग में कवि ने गुरु द्रोण की प्रतिशोध की भावना को प्रस्तुत किया है। राजा द्रुपद जब द्रोण का अपमान करके उसे दुत्कारते हैं, तभी द्रोण उस अपमान का बदला लेने की प्रतिज्ञा करते हैं —

“द्रुपद !

ईश्वर ने दिए दो हाथ मुझको  
और मेरे पास थोड़े तीर-कमठे भी सुरक्षित हैं  
शपथ से कह रहा हूँ —

द्रुपद !

तेरा स्वर्ण सिंहासन  
धधकते मचलते ज्वालामुखी के सरकते उत्ताल लावे में  
झुलसना चाहता है ।  
दूध की तरसे भले ही पुत्र मेरा  
उन कुलीनों की गली में  
बिसुरकर, मन मारकर ;  
लाज पत्नी ढंक न पाए चीथड़ो से  
दैन्य की प्रतिमा सरीखी झोंपड़ी के द्वार पर,  
और मैं चाहे जगत की खाक छानू  
भूख ओढ़े, प्यास पहने,  
किन्तु  
तेरे दंभ के विषदन्त तोड़ूंगा  
प्रतिज्ञा कर रहा हूँ इस भरे दरबार में —  
अब धर्म अपना छोड़ना मुझको पड़े चाहे ;  
बिना अपमान का बदला लिए  
तुझको न छोड़ूंगा ।”<sup>48</sup>

गुरु द्रोण की द्रुपद के प्रति प्रतिशोध की यह आग महाभारत का भीषण युद्ध बनकर भभक उठती है ।

चतुर्थ सर्ग में कवि ने समय के दरबार में एकलव्य, द्रौपदी, अभिमन्यु आदि को खड़ा किया है । समय के दरबार में सौ प्रथम एकलव्य आता है जिसे गुरु द्रोण ने शुद्र कहकर शिक्षा देने से साफ इन्कार कर दिया था । इतना ही नहीं उसका कठोर शब्दों में अपमान भी करते हैं ।

“चुप, अरे ऐ नीच अन्त्यज !

स्वयं ही शिष्यत्व ओढ़े जा रहा है ?

और तू गुरुदेव कहता है मुझे ?

निर्लज्ज ! पशु !! पामर !!!”<sup>49</sup>

किन्तु एकलव्य को तो धनुर्विद्या सिखनी ही थी। अतः वह द्रोण की मिट्टी की मूर्त बनाकर उसकी पूजा करके धनुर्विद्या में पारंगत हो जाता है। गुरु द्रोण ने उसे शिक्षा नहीं दी है, फिर भी कूट राजनीति एवं स्वार्थवश गुरु दक्षिणा के नाम पर एकलव्य के बाएँ हाथ का अँगूठा माँग लेने से जरा भी नहीं हिचकिचाते हैं। यहाँ कवि ने राजनीतियों का शोषितों के प्रति हो रहे अन्याय का पर्दाफाश किया है।

समय के दरबार में दूसरे पात्र के रूप में द्रौपदी आती है। राजा द्रुपद से बदला लेने के लिए गुरु द्रोण पाँच शिष्यों (पाण्डवों) को तैयार करते हैं, तो द्रुपद भी यज्ञ से द्रौपदी प्राप्त करते हैं, जो उन पाँचों शिष्यों को प्रणय की डोरियों में बाँधे रहती है। यहाँ कवि ने द्रौपदी के स्वयंवर से लेकर पाण्डवों से बँधने की पूरी कथा कही है। द्रौपदी भी समय के दरबार में नारी हृदय के अन्तर्मन की पीड़ा को द्रोण के सम्मुख कहती जाती है। वह अपनी व्यथा कथा व्यक्त करते हुए गुरु द्रोण के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुए कहती है

“पाँच पतियों ने मुझे मिल-बैठकर भोगा

हजारों बार जूठी पत्तलों की तरह,

और पंचों ने किया मुझको भरे दरबार में निर्वस्त्र वैश्या की तरह।

कितने तृप्त थे गुरुदेव उस दिन आप

अपने शत्रु की बेबस सुता को नग्न होते देखकर।”<sup>50</sup>

द्रौपदी अपने जीवन की पीड़ा द्रोण के सम्मुख व्यक्त करती हुई कहती है —

“गुरुवर मैं द्रौपदी नहीं,

मैं उसके मनका बिम्ब मात्र हूँ,

द्वापर के नारी जीवन का हलका-सा प्रतिबिम्ब मात्र हूँ।

गुरुवर, रहना सावधान !

अब पुरुष मात्र से बदला लेने

द्वापर की द्रौपदी आ रही कलियुग में भी।

X X X

द्वापर की द्रौपदी महाभारत की मात्र कहानी होगी,  
कलियुग की द्रौपदियाँ घर-घर की गाथाएँ बन जाएंगी।”<sup>51</sup>

समय के दरबार में तीसरे पात्र के रूप में अभिमन्यु आता है जिसे गुरुद्रोण कुरुक्षेत्र के मैदान में चक्रव्यूह में फँसा देता है, अभिमन्यु भी इतना बहादूर है कि वह भयंकर चक्रव्यूह को भेदकर आगे निकल जाता है, किन्तु छल-प्रपंचों से वह मारा जाता है।

समय के दरबार में अश्वत्थामा आता है। जिसे गुरु द्रोण ने अपनी झुठी प्रतिष्ठा के लिए दूध के नाम पर आटे का घोल पिलाकर उसमें हीनताग्रंथि को ही भरा था। उसके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उसके पिता गुरु द्रोण भी उसकी अमरता पर विश्वास नहीं कर सके।

“आप अगर यह जान रहे हैं —

अश्वत्थामा अजर-अमर हैं,

फिर क्यों शंका हुई आज मेरे जीवन पर ?

X X X

जीवनभर यदि नहीं रहा विश्वास पुत्र पर,

मरने के क्षण नहीं अंकुरित हो पाएगा।”<sup>52</sup>

इस प्रकार कवि ने चतुर्थ सर्ग में समय के दरबार का निर्माण कर विभिन्न पात्रों के जीवन चरित्र का उद्घाटन किया है।

पंचम सर्ग में गुरु द्रोण की मूर्च्छा टूटती है। युधिष्ठिर गुरु द्रोण को सहारा देकर अपने अर्द्ध सत्य से सभर वाक्य के लिए रोने लगते हैं। प्रायश्चित्त रूप में वे गुरु द्रोण को उस वाक्य की स्पष्टता करने की कोशिश करते हैं।

“कह रहा हूँ बात पूरी कह न पाया जो अभी तक।

सुने गुरुवर !

युद्ध में अश्वत्थ जो मारा गया,

वह नर नहीं था, मात्र कुंजर था सुने गुरुवर।”<sup>53</sup>

युधिष्ठिर की बात सुनकर द्रोण कहने लगते हैं मुझ जैसे अर्द्ध सत्य पर जीनेवाले व्यक्ति के लिए अर्द्ध सत्य ही पूर्ण सत्य हैं। अश्वत्थामा नर है या कुंजर यही मैं खुद निश्चित नहीं कर पाया हूँ। क्योंकि मैंने उसे कुंजर की तरह ही पाला है। क्योंकि जन्म के समय वह घोड़े की तरह हिन हिन



करता ही जन्मा था। गुरु द्रोण बड़े सहज भाव से युधिष्ठिर के सामने अपने मन की सारी बातें कहते जाते हैं, जो उसने अंधे राजमद में डूबकर छल-प्रपंच पूर्ण कार्य किये थे। वे अपनी सारी भूलों का पश्चाताप करने लगते हैं —

“मैं राज्य माँग बैठा, यह कैसी भूल हो गई ?  
 बचपन के सम्बन्धों की ले आड़  
 अगर मैं नहीं माँगता भरी सभा में,  
 तो सम्मान बचा रहता दोनों मित्रों का।  
 खाली हाथों गया मांगने दंभी-क्रोधी-भिक्षुक जैसा,  
 मैं लेने की शब्दावलियाँ साथ ले गया।  
 देने को अभिशाप गालियाँ साथ ले गया।  
 नहीं हुआ संकोच, नहीं कुछ लज्जा आई।”<sup>54</sup>

वे राजसभा में भी जब दुःशासन द्रौपदी का चीरहरण कर रहा था, तब अपने मौन रहने का एक कारण द्रौपदी उनकी शत्रु पुत्री थी यही बताते हैं। अंत में गुरु द्रोण युधिष्ठिर को उसकी पैशाचिक गर्भ के बालक को भी खा जाएगी ऐसी चेतावनी देते हुए वृष्टवृष्म को अपना वध करने के लिए कहते हैं।

#### 4.6.2 महाकाव्य :

किशोर काबराजी ने तीन महाकाव्य लिखे हैं, निम्न प्रकार हैं —

##### 4.6.2.1 उत्तर महाभारत :

उत्तर महाभारत किशोर काबरा का पहला महाकाव्य है, जिसकी रचना महाभारत की पृष्ठभूमि पर आधारित है। इसका प्रकाशन सन् 1990 में हुआ। महाकाव्य की आधारभूमि महाभारत का 17 वें एवं 18 वें अध्याय को बनाया गया है, जिसमें पाँच पाण्डवों और द्रौपदी के स्वर्गरोहण की कथा है। महाभारत के युद्ध के बाद की घटनाओं को कवि ने अपनी कल्पना के रंगों में रंगकर सात सर्गों में विभाजित किया है। इसमें कविने छः व्यक्तियों के स्वभाव-वैचित्र्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है।

प्रथम सर्ग में पाण्डवों के महाप्रस्थान की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है। महाभारत के 18 दिन के निरन्तर युद्ध के बाद चारों ओर लाशें ही लाशें दिखाई देती हैं। गिद्ध, काग, चील और बाज आदि

माँस भक्षण कर रहे हैं। चारों ओर रूदन की करूण ध्वनियाँ सुनाई दे रही हैं। गाँव, नगर, चौगान, खेत, खलिहान सब वीराने बन गये हैं,। ऐसा हृदय विदारण करूण द्रश्य देखकर युधिष्ठिर का मन विषाद से भर जाता है। युधिष्ठिर के मन में पश्चाताप हो रहा है। अतः युधिष्ठिर परिक्षित को हस्तिनापुर का और कृष्ण के पौत्र वज्र को इन्द्रप्रस्थ के राज्य, सिंहासन पर बिठाकर अपने भाइयों एवं द्रौपदी के साथ हिमालय की गोदी में महाप्रस्थान के लिए चल पड़ते हैं। साथ में जागरण का श्वान है।

द्वितीय सर्ग में द्रौपदी सहित सभी पाण्डव हिमालय की ओर महाप्रस्थान कर रहे हैं। हिमशिखरों पर चलते-चलते सर्व प्रथम द्रौपदी गिर पड़ती है। उसके पाँचों पतियों की यात्रा जारी है। द्रौपदी को गिरती देखकर भीम युधिष्ठिर से उसके गिरने का कारण पूछते हैं। युधिष्ठिर भीम को द्रौपदी के गिरने का कारण बताते हुए कहते हैं —

“द्रौपदी थी ब्याहता हम पाँच की,  
किन्तु मैंने हर तरह से जाँच की।  
यह अकेले पार्थ को ही चाहती थी,  
शेष चारों को महज निबाहती थी।  
सह न पाई, आँच अब यह साँच की,  
गिर पड़ी है आज गुड़िया काँच की।”<sup>55</sup>

हिम शिखर पर पड़ी हुई द्रौपदी अपने विगत जीवन की झाँकियाँ अपने स्मृति पटल पर लाती है। उसे जीवनभर यही गम सालता रहता है कि —

“गर्भ में मैं रह न पाई,  
जन्म मेरा हो न पाया,  
भोग मैं पाई नहीं शैशव  
नहीं बचपन।  
भोगती हूँ जन्म से  
केवल सयानापन।”<sup>56</sup>

द्रौपदी के सामने सभी द्रश्य क्रमशः आते-जाते हैं - अपने स्वयंवर का द्रश्य उसकी आँखों के सामने आता है। स्वयंवर में आये कर्ण के सौन्दर्य एवं आभा से आकृष्ट होकर उससे वरने की मनोमन इच्छा व्यक्त करती है, किन्तु पिता के इसारे मात्र को समझकर उसने कर्ण को अपमानित

किया था। स्वयंवर वर में वह अर्जुन को पति के रूप में स्वीकार करती है, किन्तु अपनी सास के “पाँचों भाइयों मिलकर भोगो” वचनानुसार परिस्थितवश उसे पाँच पतियों की पत्नी बनना पड़ता है। फिर भी मन से तो वह अर्जुन की पत्नी ही बनकर रहती है। पाँचो पतियों से उसका नाता इस प्रकार का है -

“पाँच ही है रूप स्त्री के —  
 माँ, बहन, सम्पति, स्वामिनी और पत्नी।  
 माँ रही सहदेव की मैं,  
 नकुल की प्रिय बहन,  
 सम्पत्ति युधिष्ठिर की।  
 भीम की मैं स्वामिनी थी,  
 किन्तु  
 पत्नी मात्र अर्जुन की रही मैं।”<sup>57</sup>

वह चाहती थी कि वह ज्यादा से ज्यादा समय अर्जुन के साथ रहे, किन्तु दुर्भाग्यवश अर्जुन द्रौपदी से दूर ही रहा या रखा गया। द्रौपदी को यही अफसोस है कि वे अर्जुन को अपने प्रणय पाश में बँधकर न रख सकी। शायद इसी कारण अर्जुन जहाँ गया किसी-न-किसी स्त्री से ब्याह करके ही रहे। द्रौपदी को दील में यही दर्द दुःख देता है कि —

“पाँच की मैं बनकर रही  
 बँधकर रही,  
 पर पाँच मुझसे ही नहीं बँधकर रहे।  
 पाँच को मैंने निबाहा,  
 नियम पाले।  
 पाँच की पुत्रैषणाओं को समझकर  
 गर्भ सब मैंने सँभाले।  
 सब किया,  
 पर  
 समय ने मुझको नहीं माना  
 कभी आदर्श नारी।”<sup>58</sup>

द्रौपदी के सामने द्वेतवन के द्रश्य भी घुम जाते हैं। वहाँ भी सन्तुलन की डोर से उसने अपने पाँचों पतियों को सम्हाला था। वह समय-समय पर अपने पतियों को कर्तव्य का ख्याल भी कराती रहती थी।

तृतीय सर्ग में सहदेव हिम-घाटी पर गिर पड़ता है। उसे गिरता देखकर भीम युधिष्ठिर से उसके गिरने का कारण पुछता है तभी युधिष्ठिर आगे बढ़ते-बढ़ते भीम के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं —

“ठीक है,  
सहदेव पण्डित था  
प्रखर विद्वान था,  
किन्तु  
अपने ज्ञान का  
इसको बड़ा अभिमान था।  
कालदर्शी था,  
अतः सब कार्य-करण जानता था।  
देखकर बस, मुस्कराता ;  
मूर्ख हमको मानता था।  
क्रोध सहता और कुढ़ता  
बह रहा था  
दैव का सहदेव था,  
सहदेव बनकर सह रहा था।  
कौन है मेरे बराबर —  
सतत था यह ध्यान में।  
कील बनकर गड़ गया  
यह दंभ इसके प्राण में।”<sup>59</sup>

माद्री पुत्र सहदेव त्रिकाल ज्ञानी था। भविष्य की सभी गतिविधियों एवं घटनाओं का उन्हें पूर्वज्ञान हो जाता था, किन्तु उसकी विवशता यही थी कि सब कुछ घटित होने से पूर्व आँखों से देखकर भी कुछ बोल नहीं सकता था।

किन्तु

सब जान बूझकर

इन आँखों से कैसे देखू ?

- यही द्वन्द्व पीड़ित करता था ।

यह पीड़ा सब बुद्धिजीवियों को होती है

और

विशेषज्ञों की भी यही नियति है ।

सभी देखकर,

सभी जानकर,

आनेवाले कल का पूरा चित्र देखकर,

मौन कसमसाहट-झुँझलाहट का तीव्र अनुभव,

कोई पूछे तो बोलूँ - इसकी मर्यादा ।”<sup>60</sup>

अंत में त्रिकाल ज्ञान पानेवाले सहदेव को अपने ज्ञान का बड़ा पछतावा होता है ।

चतुर्थ सर्ग में तीन पाण्डव और श्वान आगे बढ़ रहे हैं, नकुल चन्द्रकाली के हिमशिखर पर गिर पड़ता है, भीम का प्रश्न पूछने का क्रम जारी रहता है । रूप का आगार, दर्पण सरिखा नकुल जब गिरता है, तब भीम के पूछने पर युधिष्ठिर उत्तर देते हैं -

यह नकुल मोहक, नम्र और बलवान था,

किन्तु

इसको सतत अपने रूप का अभिमान था ।

कष्ट सहकर तन सभी के

जल गए थे धूप में,

पर

न अन्तर आ सका था

नकुल के इस रूप में ।

X X X

पुरुष की तो बात क्या,

स्त्री भी नकुल से डाह करती ।

मानता था नकुल  
 अपने सामने सबको कुरूप,  
 रूप के इस बोध से  
 दूषित हुआ इसका स्वरूप  
 कौन है मेरे बराबर —  
 सतत इसके ध्यान में ।  
 कील बनकर गड़ गया  
 यह दंभ इसके प्राण में ।<sup>61</sup>

पंचम सर्ग में केवल दो ही पाण्डव यात्रा के लिए शेष रहते हैं, युधिष्ठिर और भीम । नदीघोष पर्वत के शिखर पर अर्जुन लड़खड़ाकर गिर पड़ता है । भीम यह देखकर सिर पकड़कर रो रहे हैं । वे युधिष्ठिर से बड़े दर्द से पूछते हैं कि - जिसके धनुष की टंकार से ब्रह्मांड भी काँप उठता था, जिसके सारथी भगवान स्वयं ही थे ऐसा अर्जुन निष्प्राण होकर हिमशिला पर क्यों गिर पड़ा ? उसने क्या अपराध किया था ? तब युधिष्ठिर भीम के प्रश्न का उत्तर देते हैं —

“ठीक है  
 अर्जुन धनुर्धर था,  
 बड़ा बलवान था,  
 नीतिज्ञ था, धर्मज्ञ था  
 विश्वस्त था, विद्वान था ।  
 था कृष्ण का अत्यन्त प्रिय,  
 इसका बड़ा सम्मान था ।  
 पर भीम,  
 उसको स्वयं के बल का बड़ा अभिमान था ।”<sup>62</sup>

अर्जुन को हिमशिला पर पड़े हुए अपने जीवन की विगत स्मृतियाँ हो आती हैं । जनमेजय दादी उत्तरा से कहानी सुनने की हठ करता है और दादी माँ भी बड़े प्यार से पाण्डवों की कहानी सुनाती हैं ।

षष्ठ सर्ग में केवल युधिष्ठिर श्वान को लेकर आगे बढ़ रहे हैं । सोमेश्वर शिखर पर भीम भी अपने भाइयों की तरह गिर पड़ता है । तब भीम युधिष्ठिर से कहता है कि भैया आप मेरे सारे प्रश्नों के उत्तर

देते रहे हैं। मेरे अंतिम प्रश्न का भी उत्तर दे दो - मैंने क्या पाप किया है जो मैं स्वर्ग से थोड़े ही दूर आकर गिर पड़ा हूँ। युधिष्ठिर उसके गिरने का कारण भी बताते हैं -

‘ठीक है,  
तुम वीर हो, रणधीर हो, दुर्दान्त हो ;  
पूरी धरा पर  
तुम अकेले शक्ति के सीमान्त हो ।  
भोले, सरल, निर्दोष, निश्छल,  
स्वयं मे ही मस्त तुम,  
पर  
मात्र तन को पोसने में ही रहे हो  
व्यस्त तुम ।’<sup>63</sup>

वस्तुतः पेटूपन के कारण भीम का पतन हुआ था। उसे हर क्षण सुवासित व्यंजनों की ही याद रहती थी। हिमशिखर पर पड़े हुए उसे भी अपने जीवन की विगत स्मृतियाँ याद आती हैं। भीम का हिडिम्बा के साथ विवाह, बकासूर वध प्रसंग, दुःशासन वध प्रसंग आदि उसकी स्मृति के सामने तैरने लगते हैं।

अंत में सप्तम सर्ग में युधिष्ठिर की यात्रा जारी है युधिष्ठिर भी स्मृति के पन्नों को उलटते हुए आगे बढ़ रहे हैं। गुरु द्वारा परीक्षा प्रसंग, द्रौपदी का स्वयंवर, द्रौपदी का पाँचो भाइयों में विभाजन, इन्द्रप्रस्थ में राजसूय यज्ञ का आयोजन, द्यूत का प्रसंग, द्रौपदी का अपमान, वनवास, महाभारत का युद्ध आदि स्मृतियाँ उनकी स्मृति के आगे तैरने लगती हैं। उनके साथ केवल श्वान है। ये स्वर्ग के द्वार तक पहुँच गये हैं, तभी वे किसी की आवाज सुनते हैं, कि तुम श्वान को लेकर स्वर्ग में नहीं जा सकते हो ? तुम्हें स्वर्ग में जाना हो तो अकेले ही जा सकते हो? लेकिन युधिष्ठिर श्वान को छोड़कर स्वर्ग में भी जाने के लिए तैयार नहीं होते हैं। देवेन्द्र को देखकर युधिष्ठिर उसे अपने भाइयों और द्रौपदी के साथ स्वर्ग जाने का उपचार पूछते हैं। वे यह भी पूछते हैं कि मुझे स्वर्ग में भी नरक का दर्शन क्यों हुआ ? तभी देवेन्द्र उसे यह रहस्य समझाते हैं —

“सूक्ष्मतम हो पाप,  
लेकिन  
बाँधता है स्वर्ग में भी ।

स्वर्ग की तो बात क्या,  
 वह बाँधता अपवर्ग में भी ।  
 द्रोण-वध के समय आधा झूठ -  
 आधा सच कहा है ।  
 वह 'नरो वा कुंजरो वा'  
 आज तक पीछे रहा है ।  
 झूठ आधा ही सही,  
 पर डाह इसके मूल में थी ।  
 वाक्य के ही साथ  
 रथ की गति धरा की धूल में थी  
 तुम नहीं अब तक समझ पाए  
 रही जो जकड़ बाकी ।  
 डाह की रह गई है चेतना पर  
 पकड़ बाकी ।  
 झूठ आधा ही सही,  
 जिनके लिए बोले युधिष्ठिर,  
 वे नरक में ही पड़े हैं,  
 देख लो भोले युधिष्ठिर ।”<sup>64</sup>

इस प्रकार कवि ने उत्तर महाभारत की कथा में छः व्यक्तियों के छः विकारों के शमन की कथा कही है । यह कहानी जीवन और मरण की तर्क और विश्वास की, तारण और तरूण की कहानी है ।

#### 4.6.2.2 उत्तर रामायण :

‘उत्तर महाभारत’ सन् 1944 में किशोर काबराजी ने ‘उत्तर रामायण’ नामक महाकाव्य का प्रणयन किया । संपूर्ण प्रबन्ध को कवि ने पाँच सर्गों में विभाजित किया है जिन्हें क्रमशः ‘विस्फोट’, ‘विस्मय’, ‘विक्षेप’, ‘विस्तार’ और ‘विसर्जन’ की संज्ञा से अभिहित किया है । प्रस्तुत महाकाव्य में कवि ने रामायण के उत्तर भाग को अपनी कथा का आधार बनाया है । इसमें सीता-निर्वासन की घटना प्रमुख है । कवि ने इस काव्य में रामकथा को सीताकथा के माध्यम प्रस्तुत



किया है। राम के राज्याभिषेक के बाद सीता के निष्कासन का प्रसंग सभी भारतीय जनमानस के हृदय को व्यथित कर दे ऐसा है, स्वयं कवि के मानस पर भी उसका गहरा असर है। काव्य की पूरी कथा सीता के इर्द-गिर्द घूमती है।

प्रथम सर्ग में अश्वमेध यज्ञ की पूर्णाहूति से काव्य की शुरूआत होती है। यज्ञ की पूर्णाहूति के बाद महर्षि वाल्मीकि सीता के पावन चरित्र का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। सीता की तपस्या देखकर कवि वाल्मीकि राम से लवकुश सहित सीता को स्वीकारने के लिए कहते हैं। इसी समय राम के मन में द्वन्द्व उपस्थित होता है। सीता भी अयोध्या के परिजन-प्रजाजन के बीच अपने चारित्र्य का प्रमाण देने उपस्थित है। जनकात्मजा जनसभा के बीच में अपने मन के अचेतन विजन अंधक में उतरने लगती है। अपने जन्म की कथा, माता सुनयना का प्यार, मंदोदरी का शाप, अपना बचपन, सभी बहनें, वनगमन प्रसंग, शूर्पनखा का प्रणय निवेदन और अपमान, आदि घटनाएँ उसके अन्तर्मन पर हावि हो जाती है।

द्वितीय सर्ग में सीता अपनी स्मृतियों के पन्नों को पलटती जाती है। रावण साधुवेश में सीता का अपहरण करके अशोक वन में रखता है। बीच-बीच में कई घटनाएँ उसके मानस पटल पर छा जाती है। वह जो भी बातें सोचती है, उसमें तार्किकता है। वह जनमेदनी के समक्ष बड़े नम्र शब्दों में निवेदन करती है — ‘हे अवध के राम ! लंका के ऋक्ष, वानर, राक्षसों की मेदनी में तो अग्निपरीक्षा योग्य है, किन्तु आप जैसे अखिल आर्यावर्त के सांस्कृतिक प्रतिनिधि की शोभा नहीं बढ़ती है ऐसी गलित शब्दावलियों से। मैं भरी सभा में यह प्रश्न करती हूँ कि -

“पति ही नहीं करता स्वयं  
समुचित सुरक्षा एक पत्नी की अगर  
उस पंचवटी की छाँव में  
मैं पूछती हूँ इन भरी पंचायतों में —  
प्रश्न यह पति से जरा-सा पूछ पाए —  
है कोई शिक्षक यहाँ पर ?  
राम ही यदि जानकी की जान के गाहक बने,  
फिर कौन रक्षक है यहाँ पर?  
राम के प्रति रंचभर  
शंका नहीं मेरे हृदय में,

राम का मन घिर गया फिर

क्यों कुशंका के वलय में ?”<sup>65</sup>

सीता अपने चरित्र की पुनितता प्रकट करने के लिए अग्नि परीक्षा देने के लिए भी प्रस्तुत है। क्योंकि वह जानती है कि जिसका चरित्र शुद्ध है, उसके लिए अग्नि भी चंदन बन जाता है और स्वर्ण भी तो जलकर कुन्दन बन जाता है। सभी की आँखों में आँसुओं का शैलाब उमड़ रहा था। सब सीता की शतबार जय जयकार करते हैं।

तृतीय सर्ग में सीता के सुखद जीवन की स्मृति है। जनकात्मजा अपने मन के अंतस्तल में उतरकर विगत स्मृतियों को देखती है। राम का राज्याभिषेक हुआ तब वह राम के वामांग में बैठी हुई है मातृत्व की अनुभूति, अपनी गोदभराई आदि प्रसंग उसकी स्मृति के आगे तैरने लगते हैं। राम और सीता चित्रशाला में चित्रविधिका में राजा दशरथ की राज्य सभा, जनक राजा के धनुष यज्ञ, राम-सीता प्रथम मिलन, चित्रकूट आदि के द्रश्य देखते हैं। कैकेयी-मंथरा का चित्र ढँका हुआ था। ताकि सीता उसे न देखे वही अच्छा है। चित्रविधिका देखते-देखते सीता थक जाती है, तब राम का सहारा लेकर वही सो जाती है। उसी क्षण एक दूत आकर राम से एकांत में बात करने के लिए कहता है, किन्तु अर्धांगिनी के सिवा पति का कोई एकांत नहीं होता। वे निश्चित होकर दूत को बात करने के लिए कहते हैं, तब दूत बड़ी मुश्किल से उसने जो अपवाद सुना उसका ब्यौरा बता पाता है, वह कहता है हे प्रभु! पिछले कुछ दिनों से नगर में एक ही अपवाद चल रहा है। लोग कह रहे हैं —

“जानकी का अपहरण बल से दशानन ने किया था,  
लंक में जब ले गया, तब अंक में उसको लिया था।  
वह रही लंकेश के रनिवास में लम्बे समय तक,  
क्या नहीं पहुँची प्रणय की आग सीता के हृदय तक ?  
किन्तु मन में राम के कुछ भी नहीं है रोष भाई ;  
दीखता उनको नहीं कुछ जानकी में दोष भाई।  
और आकर अवध में तो बन गई है भूमिजा  
सुख केन्द्र ही श्री राम की।  
फिर इस सिया ने क्या किया था  
वास या कि विलास  
रावण की सुसज्जित वाटिका में —  
कौन जाने ?”<sup>66</sup>

सुनने को बाद राम को विश्वास ही नहीं हो रहा है कि साकेत की निंदक प्रजा ने यहाँ तक ही सोचा ? राम कहते हैं कि इस निर्दोष जानकी की एकबार स्वर्ण लंका के किनारे उसकी अग्नि-परीक्षा हो चुकी थी, फिर भी प्रजा में यह अपवाद कैसा ? तभी दूत कहता है कि साकेतजनों की कुछ ऐसी मान्यता है —

“सिया की परीक्षा हो गई,  
उसका नहीं साकेत में कोई प्रमाण।”<sup>67</sup>

तभी रजत की पत्नी रोती-बिलखती राम के पास न्याय माँगने आ जाती है। वह अपनी करूण आपबीती राम से सुनाती है और कहती है कि मेरा पति मुझे स्वीकारने को तैयार ही नहीं है। मैंने आपका नाम लेकर मेरी पावनता को प्रकट करने का प्रयास किया किन्तु मेरा पति है, जो हर हाल में मुझे स्वीकारने को तैयार ही नहीं है और कहता है —

“राम चाहे तो रखें उस जानकी को,  
राम चाहै तो सहे उस जानकी को,  
जो रही लंकेश के उद्यान में।  
जिसने चखें होंगे वहाँ के मधुर फल भी,  
किन्तु तुझको एक पत्नी की तरह  
अब मैं नहीं स्वीकार करता एक पल भी।  
मैं नहीं हूँ मूर्ख राजा राम !  
मैं हूँ रजक, मैं हूँ सजग !  
हट जा द्वार से दुष्ट,  
नहीं तो तोड़ दूँ पग।”<sup>68</sup>

राम धोबीन की बातें सुनकर उसे अपने अतिथिगृह में सुरक्षा देते हैं। जब तक रजक के वहम को सन्तोष न मिल जाए तब तक उसे वहाँ निर्भयता से रहने के लिए कहते हैं।

जानकी स्वप्न अवस्था में चित्रविधिका के पास सोई हुई है और राम चित्रों को देखते जाते हैं। सीता की खोज में वन-वन भटकते हुए अपना चित्र देखते ही वे स्तंभित हो जाते हैं। कि इसमें दशानन के अंगूठे का चित्र किसने बनाया ? तभी कैकेयी सुता कुकुआ एक नारी सहज इर्ष्या को प्रकट करके राम के मन में शंका का विष घोलने का प्रयत्न करती है। वह अपनी माँ के अपयश का

बदला लेना चाहती है। मंथरा, मंदोदरी एवं शूर्पनखा की बेटियों को भी इर्ष्यावश उक्साती है और वह प्रतिशोध लेने के लिए कटिबद्ध होती है। वह कहती है —

“राम पूरे सत्य को हम नष्ट कर देंगी,  
तुम्हारे विहँसते दाम्पत्य को निकृष्ट कर देंगी।  
अरे, जिसके गुणों का गान करते तुम नहीं थकते,  
सुनो,  
उस जानकी के नाम को हम भ्रष्ट कर देंगी।”<sup>69</sup>

राम तो चित्र विधिका की भय जनक भ्रामक भुलैया में भटक कर दुःखी हो जाते हैं। एक शिशु की तरह रोने लगते हैं। वे अजीब से द्वन्द्व में फँस जाते हैं। एक बार सीता की अग्नि परीक्षा हो जाने के बाद भी दुबारा उसके चरित्र पर कलंग लगा है ? अब मैं क्या करूँ ? तभी सीता का स्वप्न टूटता है। यहाँ कवि ने सीता के हृदय के औदार्य का परिचय दिया है। सीता ने दोहद का विचार रखकर राम के मन की उलझन को सुलझाया है। यहाँ सीता का प्रबलतम त्याग द्रष्टिगत होता है।

“आप दोहद के लिए ही पूछते थे राम !  
मेरी प्रबल इच्छा है  
कि इस साकेत से कुछ दूर हटकर  
और इस दूषित गलित परिवेश से  
भरपूर कटकर चकित हिरनी की तरह  
कुछ दिन खुला संसार देखूँ।  
और फिर से वन्य-संस्कृति का  
सुखद श्रृंगार देखूँ।”<sup>70</sup>

जनापवाद के कारण आसन्न प्रसवा सीता का राम त्याग करते हैं। लक्ष्मण उसे सरयू नदी के तट पर वाल्मीकि आश्रम तक छोड़ जाते हैं। सीता बेटी की तरह आश्रम में रहती है और वहाँ लव-कुश को जन्म देती है।

चतुर्थ सर्ग में वाल्मीकि आश्रम में सीता पर गुरु के प्रेम एवं ममत्व का चित्रण है। पंचम सर्ग में कविने भूमिजा की पावनता को प्रकट किया है। सीता जन सभा के सम्मुख खड़ी है और पूरी कथा के द्रश्य उनके अचेतन मन में चल रहे थे। वह सभी के सामने हाथ जोड़े खड़ी है। अग्नि-

परीक्षा के क्षण में सीता अंत में माँ धरित्री को तीन बार पुकारकर उसके अंक में विश्राम माँगती है।

“हे धरित्री माँ, मुझे दो पल स्वयं की छाँ दे दे,  
मैं तनिक छू लूँ, मुझे माँ आज अपने पाँव दे दे।  
देह से मन-प्राण से यदि राम को चाहा हमेशा,  
तो मुझे अविलम्ब माँ अपने उदर में ठाँव दे दे।”<sup>71</sup>

देखते ही देखते भूमा भूमि में समा जाती है। राघव भी अंत में सरयू का आह्वान करते हैं -

“माँ, कुशंका स्वप्न में भी यदि न की मैंने शिया पर,  
यदि रहा विश्वास मेरा सर्वदा अपनी प्रिया पर,  
तो समूचे विश्व को तू शक्ति का वरदान दे माँ !  
शीघ्र जल के वलय में इस राम को तू स्थान दे माँ !”<sup>72</sup>

इस प्रकार ‘उत्तर रामायण’ की पूरी कथा सीता की मनः स्थिति की उपज है। सीता के उदात्त चरित्र को केन्द्र में रखकर कवि ने राम पर लगे सीता निष्कासन के कलंक को आँसूओं से धोने का प्रयास किया है।<sup>73</sup> प्रस्तुत महाकाव्य में कवि ने राम एवं सीता के अद्वितीय त्याग की गाथा, गाकर भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल चरित्रों को प्रकाशित किया है।

#### 4.6.2.3 उत्तर भागवत :

‘उत्तर महाभारत’ और ‘उत्तर रामायण’ के बाद काबराजी का तीसरा महाकाव्य ‘उत्तर भागवत’ का प्रणयन हुआ। श्रीमद् भागवत महापुराण की उत्तर गाथा को कवि ने अपने काव्य का कथ्य बनाया है। ‘उत्तर भागवत’ में कवि ने कृष्ण के उपसंहार से प्रारम्भ होकर पूर्वाभिमुख होनेवाली कथाधारा को नौ स्कन्धों के माध्यम से कृष्ण के पूरे चरित्र को नवधा भक्ति के नौ अंगों की पूर्व पीठिका बनाकर प्रस्तुत किया है।<sup>74</sup>

प्रभास क्षेत्र में सरयू नदी के किनारे पर स्थित अस्वत्थ वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ अवस्था में कृष्ण बैठे हुए हैं और उनके पद तल में व्याघ्र का विषबाण लगा हुआ है वहाँ से कथा का प्रारम्भ होता है। पूरी कथा कवि ने पूर्वदिप्ति शैली में लिखी है। प्रभास क्षेत्र से शुरू हुई कथा पुनः प्रभास क्षेत्र में समाप्त होती है। पूरे काव्य की कथा कृष्ण के संस्मरण की उपज है। ‘उत्तर भागवत’ में कृष्ण के अतीत की सभी प्रमुख एवं महत्वपूर्ण घटनाओं को उनके चारित्रिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करके

मानवीय संवेदनाओं और सम्भावनाओं को रूपायित करने का प्रयत्न हुआ है।<sup>75</sup>

प्रथम स्कन्ध में अस्वत्थ वृक्ष के नीचे कृष्ण ध्यानस्थ अवस्था में बैठे हैं, तभी व्याघ्र का विषबुझा बाण कृष्ण के पदतल में लगता है। उनके तल से रक्त की बूंदें टपक रही हैं, व्याघ्र बड़ा व्यथित होकर उन बूंदों को पोंछता जाता है और कृष्ण अपने जीवन की स्मृतियों में झाँकने लगते हैं।

द्वितीय स्कन्ध में मथुरा की स्मृतियाँ कृष्ण के मनः पटल पर छा जाती हैं। इस स्कन्ध में कवि ने देवकी के दारूण दर्द की दास्तान कही है। दुराचारी कंस देवकी का चचेरा भाई था फिर भी सगी बहन से भी अधिक स्नेह रखता था। देवकी के ब्याह के बाद खुद कंस ने उसका रथ हाँका था। किन्तु जैसे ही कोई अज्ञात ध्वनि उसके कानों में पड़ी कि —

“इस देवकी का आठवाँ बेटा बनेगा काल मेरा ?”<sup>76</sup>

तभी से उसने देवकी और वसुदेव को कारागृह में बंद कर दिया। देवकी के एक के बाद एक छः संतानों की निर्मम बनकर हत्या कर दी। तब से कंस देवकी और वसुदेव का काल कराल हो गया। देवकी जब सातवीं बार गर्भवती होती है, तब उसे बड़ा दुःख होता है कि एक माँ होकर भी वह अपनी किसी भी संतान को अपना दूध नहीं पिला सकी है। मैं कैसी अभागन माँ हूँ जो बेटों को जनकर सर्पिणी की भाँति दुष्ट कंस के सम्मुख धरती जाती हूँ। देवकी का क्रन्दन वसुदेव से भी देखा नहीं जाता है। देवकी अपने सातवें गर्भ को लेकर चिंतित है। तभी उसे एक युक्ति सुझाती है और गर्भ विशेषज्ञों से गुप्त मंत्रणा करके कुक्षि-सन्धि से आकर्षित कर गर्भस्थ भ्रूण रोहिणी के गर्भ में प्रस्थापित किया जाता है और गर्भ के गिर जाने के समाचार फैलाये जाते हैं। देवकी के आठवें गर्भ का संकेत मिलते ही कंसने कारावास में सैनिकों का पहरा लगा दिया। किन्तु आठवें पुत्र के जन्म समय कारावास का मार्ग साफ था। एक भृत्य का टोकरा खाली पड़ा था जिसे वसुदेव उठाकर, उसमें बच्चे को रखकर, यमुना के प्रलयकारी जल को चीरकर गोकुल में ले जाते हैं। वहाँ यशोदा के पास उस बच्चे को सुलाकर नवजात पुत्री को लेकर तुरंत कारावास में वापस लौट जाते हैं। देवकी की आठवीं संतान पुत्री है यह सुनकर कंस उसे मारने को तत्पर हो जाता है। किन्तु उसे मारने से पहले ही कन्या गगन में चली जाती है। उसका काल तो कहीं ओर किसी की ममता की गोद में खेल रहा था। गोकुल में चारों ओर कृष्ण का जन्मोत्सव मनाया जाता है। क्रूर कंस अपनी कपट वृत्तियों से बाज़ नहीं आता है। अतः वह एक के बाद एक क्रमशः दुष्टों को कृष्ण को मारने के लिए भेजता रहता है और वे सब कृष्ण को मारने के बदले मोक्ष प्राप्त करते हैं।

तृतीय स्कन्ध में कृष्ण के पदतल की रक्तधारा के साथ राधा की स्मृति झलकती है। कवि ने काक - मयूर प्रसंग के संदर्भ में कृष्ण और राधा के मनोहर प्रेम को प्रकट किया है। राधा कृष्ण के प्रथम मिलन प्रसंग का कवि ने मनोहर चित्रण किया है। राधा और कृष्ण के प्रेम को कवि ने इस प्रकार प्रकट किया है।

कृष्ण लेते नाम आठों याम, वह  
बस, राधिका है।  
कृष्ण में करती सदा विश्राम वह बस, राधिका है।  
कृष्ण जिसकी कर रहे आराधना,  
वह राधिका है।  
कृष्ण की करती निरन्तर साधना, वह राधिका है।  
जा बसे हैं कृष्ण जिसके प्राण में,  
वह राधिका है।  
कृष्ण के रहती सदा जो ध्यान में, वह राधिका है।<sup>77</sup>

इस स्कन्ध के अंतर्गत बकासुर वध, कालिय दमन, कृष्ण का गोवर्धन उठाना एवं गोपियों के संग महारास आदि का कवि ने चित्रण किया है।

चतुर्थ स्कन्ध में कृष्ण का मथुरा में धनुष यज्ञ में आगमन होता है। मथुरा में कृष्ण कुब्जा का उद्धार कर उसे सुन्दरी रूप प्रदान करते हैं और यज्ञ स्थल पर आकर क्रूर कंस का नाश करके अपने माता-पिता यानि देवकी और वसुदेव को कारावास से मुक्ति दिलाते हैं।

गुरु सांदीपनी, सुदामा, गुरुपत्नी आदि भी कृष्ण के स्मृति पात्र बनते हैं। वैसे भागवत में राधा की कल्पना नहीं की गई है, किन्तु उत्तर भागवत में राधा को कृष्ण की जीवन शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। राधा और कृष्ण का संबंध छाया और काया जैसा अद्वैत है - अर्धनारीश्वर जैसा।<sup>78</sup>

उद्धव प्रसंग के द्वारा कवि ने कृष्ण एवं राधिका के निष्काम प्रेम को प्रकट किया है। गोपियों को ज्ञान का संदेश देने आये हुए उद्धव भी 'श्याम', 'राधेश्याम' का नामोच्चार करते लौटते हैं। यहाँ कवि ने राधा की कृष्ण भक्ति का परिचय कराया है।

पंचम स्कन्ध में कृष्ण द्वारा मुचुकुन्द का उद्धार होता है। जरासंध ने मथुरा पर पुनः आक्रमण

किया तब कृष्ण और बलराम गुप्त मार्ग से भाग खड़े होते हैं और आनर्तप्रदेश (द्वारिका) पहुँचते हैं। कृष्ण विश्वकर्मा की कुशलता से द्वारिका नगरी का निर्माण करते हैं। इस स्कन्ध में कृष्ण के द्वारा रूक्मिणी हरण का प्रसंग कवि ने विस्तार से चित्रित किया है। यहाँ रूक्मिणी का सौन्दर्य एवम् उसकी समय सूचकता का हमें परिचय होता है। साथ ही साथ कवि ने कृष्ण की अन्य पटरानियाँ जाम्बवती, सत्यभामा, मित्रवन्दा, नाग्नमिती, लक्ष्मणा, भद्रा आदि का भी सांकेतिक परिचय कराया है। सुदामा के द्वारिका आगमन प्रसंग में कृष्ण-सुदामा की अतुलनीय मित्रता का परिचय कराया है।

“कंटक भरे बिवाई वाले  
पथरीले पाँवों को मोहन  
धोते जाते खरखर-खरखर,  
रोते जाते झरझर-झरझर।  
प्रक्षालन रुक गया बीच में,  
आई है काँटों की बारी।  
एक-एक को चुनकर  
धीमे से निकालते हैं गिरधारी।  
जो पानी से नहीं धुल रहे,  
उनको आँसू से धोते हैं।  
पाँवों पर मुख लगा  
दाँत से काँटे खींच रहे बनवारी।  
मुग्ध सुदामा की आँखों से  
बरस रहा नूतन उजियारा।”<sup>79</sup>

कृष्ण की पटरानियाँ, सेवक, स्वजन सब आश्चर्य से इस द्रश्य को देखते ही रह जाते हैं। यहाँ कवि ने मनुष्य को बाँटकर खाने का भी संदेश दिया है।

“चाहे मुझको तृण भर देता,  
चाहे मुझको कण भर देता,  
जो भी मेरा मन भर देता,  
मैं भी उसको मनभर देता।



चाहे तुमने नहीं दिया कल ।  
लेकिन सब कुछ आज दे दिया ।  
उस दिन छिपकर चने खा गए,  
आज चने का ब्याज दे दिया ।”<sup>80</sup>

षष्ठ सर्ग में कवि ने कृष्ण का राजसूय यज्ञ में कृष्ण को ऋषिमूनियों की जूठन धोते दिखाकर छोटे काम की महत्ता को प्रकट किया है। शिशुपाल वध प्रसंग द्वारा कृष्ण और द्रौपदी के संबंधों को प्रकट किया है। कृष्ण की तर्जनी को लोहित से रंजित देखकर कृष्णा अपने चीर को चीरकर कृष्ण की अँगुली पर बाँधकर चीर का ऋण चुकाती है। कवि ने पाँचाली की अभावग्रस्त गृहस्थी का भी परिचय कराया है। जीवन में सुख-सुविधाओं से ही हम सुखी नहीं रहते वरन् आवश्यक थोड़ी-सी चीजों से भी हम अपनी गृहस्थी को सुखी बना सकते हैं। सांकेतिक रूप में कवि ने हमें यहाँ यह सीख भी दी है।

कवि ने विदुरानी की कृष्ण के प्रति प्रेम-भक्ति की चरम सीमा बताई है। तन्मयता से उसने कृष्ण को केले खिलाते वक्त गूदा जमीन पर फेंककर कदली फलों के छिलके खिलाये। कृष्ण भी छिलके के स्वाद के गुण गाये जा रहे हैं। मूर्च्छा टूटते ही वह पश्चाताप व्यक्त करती है। यहाँ विदुरानी के कृष्ण भक्ति की पराकाष्ठा बताई है।

सप्तम स्कन्ध में संजय धृतराष्ट्र के सामने कुरुक्षेत्र के मैदान में कौरवों एवं पाण्डवों के युद्ध का परिचय कराता है। भीष्म का प्रण, शिखण्डी का प्रतिशोध, अभिमन्यु का चक्रव्यूह में फँस जाना, कर्ण का शौर्य, घटोत्कच वध, द्रोण का पुत्र प्रेम, दुष्ट दुर्योधन का आतंक, भीम का प्रण, क्रुद्ध गांधारी का अभिशाप, सब कृष्ण के स्मृतिपटल पर आते हैं। कुरुक्षेत्र से द्वारिका लौटते समय कुरुक्षेत्र के मैदान में राधा से कृष्ण का मिलन होता है। यहाँ राधा की कृष्ण भक्ति का परिचय मिलता है।

अष्टम स्कन्ध में कृष्ण युद्ध भूमि से वापस द्वारिका लौटते हैं, किन्तु द्वारिका को पहले-सी नहीं पाते हैं। यहाँ कवि कृष्ण और उद्धव के ज्ञान और वैराग्य की बातें समझाते हैं।

‘धर्म, अर्थ औ’ काम  
बाहरी साधन-सुविधा तक हैं,  
किन्तु मोक्ष के लिए

ब्रह्म-जिज्ञासा आवश्यक है।  
 बिना ब्रह्म-जिज्ञासा के  
 भौतिकता ही मिलती है,  
 और यही, भौतिकता  
 साधक के पथ की बाधक है।'<sup>81</sup>

नवम् एवम् अंतिम स्कन्ध में कवि ने कृष्ण की कष्टभरी करुण कथा कही है। बनवारी के पूरे जीवन का सार दे दिया है। अंत में राधा का स्मरण करते हुए ओठ पर बंशी की तान छोड़कर अंतिम साँस ली।

इस प्रकार 'उत्तर भागवत' की पूरी कथा में कृष्ण केन्द्रबिंदु बने हुए हैं। उनके रक्त की नौ बूँद नवधा भक्ति बनकर भागवत के पृष्ठ पर अंकित हो गई है।

#### 4.7 उपसंहार :

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि डॉ. किशोर काबरा ने हिन्दी साहित्य जगत को अमूल्य काव्य कृतियों की भेंट प्रदान की है। जो भारतीय संस्कृति के उत्तम साहित्य के रूप में हमेशा अमर रहेंगे। काव्य रसिक-जन हमेशा उनके ऋणी रहेंगे।

## 4.8 संदर्भ - सूची

- 1 तुलसी की काव्य कला ; डॉ. भाग्यतीसिंह ; पृ. 12
- 2 स्वातंत्र्योत्तर गीति नाट्य-काव्य : हिन्दी के विविध काव्य-रूप ले. डॉ. प्रमिला सिंह, पृष्ठ - 13
- 3 शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त ( भाग - 2 ) ले. गोविंद त्रिगुणायत पृष्ठ - 1 (स्वातंत्र्योत्तर गीति नाट्य-काव्य : हिन्दी के विविध काव्य रूप, ले. डॉ. प्रमिला सिंह, पृष्ठ - 13 से उद्धृत
- 4 नाट्य शास्त्र ; भरत मूनि 16/118
- 5 काव्य शास्त्र : काव्य का स्वरूप ले. डॉ. भगीरथ मिश्र, पृ. 14
- 6 वहीं वहीं वहीं वहीं
- 7 चिन्तामणि (भाग- 1), आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 141
- 8 काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, जय शंकर प्रसाद, पृ. 171
- 9 तुलसी की काव्य कला : डॉ. भाग्यवती सिंह, पृष्ठ - 4
- 10 वहीं वहीं पृ. - 5
- 11 जायसी ग्रंथावली, पं. रामचन्द्र शुक्ल, भूमिका पृष्ठ - 68  
स्वातंत्र्योत्तर गीति नाट्य काव्य - डॉ. प्रमिला सिंह, पृ. 18 से उद्धृत
- 12 काव्य शास्त्र, डॉ. भगीरथ मिश्र, पृ. 46
- 13 वहीं वहीं पृ. 52
- 14 अग्निपुराण, अध्याय 337 - काव्यादिलक्षणम् ।
- 15 काव्यानुशासन, अध्याय, 8 सूत्र - 6
- 16 काव्यादर्श, आचार्य दंडी, प्रथम परिच्छेद, पृ. 14-19
- 17 साहित्य विवेचन ; क्षेमचन्द्र सुमन एवं योगेन्द्र कुमार मल्लिक, पृ. 74
- 18 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य विधाएँ, डॉ. बापूराव देसाई, पृ. 22 से उद्धृत
- 19 काव्य-रूपों के मूलस्त्रोत और उनका विकास ; ले. शकुन्तला दुबे, पृ. 83
- 20 The Epic ought to be positive in The Sense That it is this ob-  
jective presentment of a world based on its own foundations

and realised in virtue of its own necessary laws, a world more over with which the personal outlook of the poet. must remain in connection that enables him to identify himself wholly with it.

- Hegel : Philosophy of fine Arts Vol. IV पृष्ठ - 115

- 21 काव्य शास्त्र, ले. डॉ. भगीरथ मिश्र, पृ. 56 से उद्धृत
- 22 साहित्यदर्पण 3/13 इ
- 23 काव्यशास्त्र, ले. भगीरथ मिश्र पृ. 61
- 24 संस्कृत आलोचना, ले. डॉ. बलदेव उपाध्याय, पृ. 62
- 25 मध्यकालीन प्रबन्ध रूप, ले. डॉ. विभासिंह पृ. 115
- 26 काव्य के रूप-गुलाबराय - पृ. 23
- 27 हिन्दी साहित्य कोश, सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा - पृ. 248
- 28 हिन्दी साहित्यकोश - वहीं - पृ. 522
- 29 हिन्दी के खण्डकाव्यों में युगबोध - ले. डॉ. राज भारद्वाज - पृ. 9
- 30 वहीं वहीं वहीं
- 31 साहित्य दर्पण - (स.पी.पी. कोण) पृ. 108 हिन्दी के खण्डकाव्यों में युगबोध, ले. डॉ. राज भारद्वाज, पृ. 16 से उद्धृत
- 32 परिताप के पाँच क्षण, ले. डॉ. किशोर काबरा, द्वितीय क्षण, पृ. - 43
- 33 वहीं वहीं वहीं, पृ. - 47
- 34 वहीं वहीं वहीं, पृ. - 64
- 35 वहीं वहीं चौथा क्षण, पृष्ठ - 93
- 36 वहीं वहीं पाँचवा क्षण, पृष्ठ - 102
- 37 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 104/105
- 38 धनुष भंग, ले. डॉ. किशोर काबरा, दूसरा विस्फोट, पृष्ठ - 15
- 39 वहीं वहीं तीसरा विस्फोट, पृष्ठ - 38
- 40 वहीं वहीं पाँचवा विस्फोट, पृष्ठ - 78/79

- 
- |    |  |      |                             |
|----|--|------|-----------------------------|
| 41 | वहीं   | वहीं | वहीं, पृष्ठ - 80            |
| 42 | वहीं   | वहीं | वहीं, पृष्ठ - 81            |
| 43 | नरो वा कुंजरो वा, ले. डॉ. किशोर काबरा, भूमिका, पृष्ठ - 3         |      |                             |
| 44 | वहीं   | वहीं | प्रथम सर्ग, पृष्ठ - 10      |
| 45 | वहीं   | वहीं | वहीं, पृष्ठ - 13            |
| 46 | वहीं   | वहीं | वहीं, पृष्ठ - 17            |
| 47 | वहीं   | वहीं | वहीं, पृष्ठ - 19            |
| 48 | वहीं   | वहीं | तृतीय सर्ग, पृष्ठ - 64      |
| 49 | वहीं   | वहीं | चतुर्थ सर्ग, पृष्ठ - 79     |
| 50 | वहीं   | वहीं | वहीं पृष्ठ - 91             |
| 51 | वहीं   | वहीं | वहीं पृष्ठ - 104/105        |
| 52 | वहीं   | वहीं | वहीं पृष्ठ - 118            |
| 53 | वहीं   | वहीं | पंचम सर्ग, पृष्ठ - 125      |
| 54 | वहीं   | वहीं | वहीं पृष्ठ - 128            |
| 55 | उत्तर महाभारत, ले. डॉ. किशोर काबरा, द्वितीय सर्ग, पृष्ठ - 44     |      |                             |
| 56 | वहीं   | वहीं | वहीं, पृष्ठ - 49            |
| 57 | वहीं   | वहीं | वहीं, पृष्ठ - 67            |
| 58 | वहीं   | वहीं | वहीं, पृष्ठ - 78            |
| 59 | वहीं   | वहीं | तृतीय सर्ग, पृष्ठ - 127/128 |
| 60 | वहीं   | वहीं | वहीं, पृष्ठ - 137           |
| 61 | वहीं   | वहीं | चतुर्थ सर्ग, पृष्ठ - 149    |
| 62 | वहीं   | वहीं | पंचम सर्ग, पृष्ठ - 168      |
| 63 | वहीं   | वहीं | षष्ठ सर्ग, पृष्ठ - 204      |
| 64 | वहीं   | वहीं | सप्तम सर्ग, पृष्ठ - 251/252 |
| 65 | उत्तर रामायण, ले. डॉ. किशोर काबरा, द्वितीय सर्ग, पृष्ठ - 119/120 |      |                             |

66	वहीं	वहीं	तृतीय सर्ग, पृष्ठ - 141
67	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 143
68	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 145
69	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 149
70	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 162
71	वहीं	वहीं	पंचम सर्ग, पृष्ठ - 234
72	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 243
73	वहीं	वहीं	भूमिका, पृष्ठ - 23
74	उत्तर भागवत, ले. डॉ. किशोर काबरा,	भूमिका, पृष्ठ - 8	
75	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 9
76	वहीं	वहीं	प्रथम स्कन्ध, पृष्ठ - 43
77	वहीं	वहीं	तृतीय स्कन्ध, पृष्ठ - 116
78	वहीं	वहीं	भूमिका, पृष्ठ - 13
79	वहीं	वहीं	पंचम स्कन्ध, पृष्ठ - 217
80	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 218/219
81	वहीं	वहीं	अष्टम स्कन्ध, पृष्ठ - 291

## पंचम अध्याय

डॉ. किशोर काबरा के काव्य में नारी के  
विभिन्न रूप एवं डॉ. किशोर काबरा का  
नारी के प्रति नूतन द्रष्टिकोण

## पंचम अध्याय : डॉ. किशोर काबरा के काव्य में नारी के विभिन्न रूप एवं डॉ. किशोर काबरा का नारी के प्रति नूतन द्रष्टिकोण

### 5.1 प्रस्तावना

### 5.2 नारी के विभिन्न रूप

#### 5.2.1 मातृ रूप

5.2.1.1 माँ का वात्सल्यमयी रूप

5.2.1.2 ममता का उदात्तीकरण

5.2.1.3 अंधा पुत्र प्रेम

5.2.1.4 निर्दयी माता

#### 5.2.2 पत्नी रूप

5.2.2.1 पत्नी का परंपरागत निष्ठामय रूप

5.2.2.2 पति द्वारा चारित्रिक शंका करने पर चरित्र का प्रमाण देनेवाली नारी

5.2.2.3 पति का वियोग सहनेवाली नारी

5.2.2.4 पति के प्रति मानसिक आक्रोश एवं विद्रोह करनेवाली नारी :

#### 5.2.3 प्रेयसी रूप

5.2.3.1 अप्सराओं का प्रेमिका रूप

#### 5.2.4 बहन का रूप

#### 5.2.5 पुत्री रूप

#### 5.2.6 विद्रोही रूप

5.2.6.1 अस्वीकृत नारी का विद्रोही रूप

5.2.6.2 अपमानित नारी का विद्रोही रूप

### 5.3 डॉ. किशोर काबरा का नारी के प्रति नूतन द्रष्टिकोण

5.3.1 मनोवैज्ञानिक द्रष्टिकोण

5.3.2 मानवतावादी द्रष्टिकोण

5.3.3 भारतीय जीवन द्रष्टि

### 5.4 उपसंहार

### 5.5 संदर्भ-सूची



## डॉ. किशोर काबरा के काव्य में नारी के विभिन्न रूप एवं डॉ. किशोर काबरा का नारी के प्रति नूतन द्रष्टिकोण

### 5.1 प्रस्तावना :

भारतीय संस्कृति में नारी के विविध रूप दिखाई देते हैं। उसने मानव जीवन के सभी क्षेत्रों को अपनी दया, ममता, माया, मधुरिमा, अगाध विश्वास और समर्पण से अभिषिक्त किया है। इतिहास के किसी काल खण्ड में यदि उसने पुरुष की कोमल भावनाओं को उभारा है, तो कभी उसे जीवन संग्राम में झुझने का द्रढ़ संकल्प एवं आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा भी दी है। कभी वह सभ्यता की शीतल मूर्ति के रूप में आती है तो कभी भभकती ज्वाला के प्रकोप की भाँति दिखाई देती है। समाज में नारी को सम्मानित कर उच्चासन पर बिठाया जाता है, तो कहीं पर उसे धुत्कार दिया जाता है। नारी अपने जीवन में कितना ही दरज्जा प्राप्त करती है। कभी वह आदर्श एवं संस्कारी माता के रूप में, कभी आर्य संस्कृति की आदर्श भारतीय पत्नी के रूप में तो कभी बेटी या बहन के रूप में। कभी उसकी पूजा होती है, तो कभी उसे भोग्या समझा जाता है। नारी एक है, फिर भी इस एकता में भी अनेकता का रूप समाहित है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में नारी की स्थिति युगीन आदर्शों और जीवन मूल्यों के साथ-साथ परिवर्तित होती रही है।

### 5.2 नारी के विभिन्न रूप :

नारी समस्त मानवीय सौन्दर्य एवं चेतना की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति है, साथ ही सृष्टि का मूल भी। साहित्य की समस्त विधाओं में नारी का चित्रण हमें यत्र-तत्र मिल जाता है। साहित्य की सभी विधाओं में नारी के विविध रूपों का चित्रण किया गया है, लेकिन नारी का सही रूप तो हमें काव्यों में ही प्राप्त होता है। हिन्दी के प्रबन्धकारों ने अपने काव्यों के माध्यम से नारी उत्कर्ष का चित्रण कर, नारी को गौरवान्वित किया है। डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्यों में अनेक प्रकार के नारी चरित्र देखने को मिलते हैं। इसी के साथ उनके काव्यों में हमें नारी के विविध रूप भी देखने को मिलते हैं। जिसमें मातृरूप, पत्निरूप, प्रेमिका रूप, बहन का रूप, पुत्री रूप, विद्रोही रूप आदि रूप पूर्ण गरिमा के साथ उभरकर हमारे सामने आये हैं। अब हम नारी के विभिन्न रूपों का विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

### 5.2.1 मातृरूप :

नारी के विभिन्न रूपों में माँ का रूप सर्वाधिक गौरवशाली है। माता के रूप में नारी स्वयं सृष्टि की अधिष्ठात्री बन जाती है। मातृत्व नारी के जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है, इसके बिना नारी अधूरी है। माँ के रूप में नारी क्षमा, दया, ममता और स्नेह की मूर्ति होती है। संतति को जन्म देना, उसका पोषण करना, हर हाल में उसकी रक्षा करना, उसके लिए अपना सब कुछ न्यौछावर करके भी संतान के प्रति प्रेम बनाये रखना ही मातृत्व की पहचान है। सन्तान चाहे अयोग्य हो, कर्तव्यच्युत हो, समाज की दृष्टि में पतित हो, माँ का वात्सल्य - भरा आँचल सदा उस पर छाया रहता है। कठिन से कठिन परिस्थिति में भी माँ अपना वात्सल्य नहीं भूलती है। इसीलिए नारी वात्सल्य की अनुभूति को उत्कटता से अनुभव करती है।

डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्यों में नारी का मातृरूप विविध आयामों के साथ व्यक्त हुआ है।

#### 5.2.1.1 माँ का वात्सल्यमयी रूप :

‘नरो वा कुंजरो वा’ की कृपि में माँ का वात्सल्यमयी रूप हमें मिलता है। कृपि को अपने बेटे अस्वत्थ के प्रति अथाग वात्सल्य है। किन्तु अभावग्रस्त गृहस्थी के कारण वह अपने बच्चे को दूध भी नहीं ला दे सकती है, फिर भी वह अपने बच्चे को रोते हुए नहीं देख सकती है। वह उसे नदी के किनारे ले जाती है और उसे बातों में उलझाकर दूध की हठ भूलाने के कई प्रयत्न करती है। वह अपने जिद्दी बेटे को पिटती है, किन्तु खुद पश्चाताप के आँसू रो भी लेती है। यहाँ उसका प्रगाढ़ पुत्र प्रेम द्रष्टिगत होता है।

‘उत्तर महाभारत’ की द्रौपदी भी पुत्रवत्सल माँ के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होती है। कहा जाता है कि पितृ हृदय से माँ का हृदय अधिक कोमल और भावुक होता है। गुरूद्रोण का बेटा अस्वत्थ द्रौपदी के बच्चों की हत्या कर देता है, तब द्रौपदी करुण विलाप करती है। वह प्रति पल - प्रति क्षण बच्चों की स्मृतियों में खोयी रहती है। द्रौपदी के पात्र द्वारा कवि ने ममतामयी माँ का चित्रण बड़े प्रभावशाली ढंग से किया है। माँ का वात्सल्य अपने बच्चों के लिए होता है, यह स्वाभाविक है, किन्तु द्रौपदी का मातृप्रेम तो उत्तरा के गर्भ में पल रहे अर्जुन के बच्चे के प्रति भी उतना ही है। जब अस्वत्थ ब्रह्मास्त्र से उत्तरा के गर्भ से अर्जुन के अंश को मिटाने जाता है, तब उसका मातृहृदय चित्कार कर उठता है।

‘उत्तर रामायण’ की सीता भी ममत्व की मनोहर मूर्ति है। नारी सबकुछ सहकर भी अपनी संतान के प्रति वात्सल्य को कम नहीं होने देती। पति के द्वारा निष्काषित होने के बाद वह दो पुत्रों को जन्म देती है, उसका पालन-पोषण करती है, उसे झुले में झुलाती है और लोरियाँ भी सुनाती है। अपने बच्चों के प्रति प्रगाढ़ प्रेम के कारण वह अपने दुःखों को भी भूल जाती है। सीता के ममत्व को देख स्वयं कवि भी उसकी सराहना करने लगते हैं —

“माँ बनकर नारी कितनी -  
कोमलता - उदारता, पा जाती !  
सीता को कोई देखें  
तो यह बात समझ में आ जाती।”<sup>1</sup>

मातृत्व के बिना नारी अपने को अपूर्ण समझती है। ‘धनुष-भंग’ की सुनयना के दील में भी मातृत्व की प्यास देखने को मिलती है। वह संतान को प्राप्त करके जीवन को सफल बनाना चाहती है। चाहे बेटा हो या बेटी। सीता को पाकर वह अपने को कृतकृत्य समझती है। उसे बच्ची को जन्म देने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है, किन्तु उनमें वात्सल्य की मात्रा किसी भी माता से कम नहीं है। उसी प्रकार ‘उत्तर भागवत’ की यशोदा भी कृष्ण को पाकर धन्य-धन्य हो जाती है। इतना ही नहीं वह कान्ह को उबटन कर नहलाती है, नए वस्त्र पहनाती है, बाल सँवारती है और काजल का तिलक भी लगाती है। ताकि उसे किसी की नज़र न लग जाये। नटखट नंदलाल को वह बड़े प्यार से मक्खन खिलाती है। साथ ही साथ कान्ह को कोई पराया पूत कहे यह बात तो वह सह ही नहीं सकती है। जब कान्ह मथुरा जाने लगता है, तब यशोदा मैया अपनी सारी धीरज-संयम खोकर कान्ह से लिपटकर रोने लगती है। इस प्रकार यशोदा तो अपने हृदय का वात्सल्य प्रकट कर सकी किन्तु देवकी तो ऐसी नारी है, जिसे एक नहीं आठ-आठ संतान की माँ बनने का सौभाग्य मिला, किन्तु अपनी एक भी संतान को वह न अपना दूध पिला सकी और न प्यार से उसे दुलार सकी। बच्चों के प्रति वात्सल्य प्रकट न कर सकने की पीड़ा उसे जीवनभर सालती है।

चाहे दानवी हो या मानवी। माँ तो माँ ही है। उसके हृदय में वात्सल्य की कमी नहीं होती। इसका उदाहरण है पूतना। वह जाती है कान्ह के प्राण लेने किन्तु वात्सल्य से अभिभूत होकर वह दाएँ स्तन को छोड़कर बाएँ स्तन से कान्ह को दूध पिलाकर अपने वात्सल्य का परिचय देती है।

### 5.2.1.2 ममता का उदात्तीकरण :

वैसे प्रत्येक माता के हृदय में ममत्व का औदार्य समाहित होता है। किन्तु कहीं-कहीं तो

ममता का इतना उदात्तीकरण देखने को मिलता है, कि श्रद्धा से हमारा मस्तक उसके सामने झूक जाता है। मानो वह अपनी संतान की ही नहीं, पूरे विश्व की माँ हो। 'उत्तर महाभारत' की त्रिजटा और गौतमी इस तथ्य के उदाहरण हैं। त्रिजटा दानवी पात्र होकर भी मानवीय संवेदना, करुणा एवं ममत्व उसके हृदय में फूट-फूटकर भरे हुए हैं। सीता को वह अपनी बेटी की तरह सँभालती है। इतना ही नहीं, एक माँ जिस प्रकार बेटी को ससुराल भेजती है, सीता को राम के साथ उसी प्रकार अपने हाथों से सजाकर बड़े दुःख से बिदा करती है। गौतमी भी पूरे आश्रमवासीयों को स्नेहजल से सिंचती है। निष्कासित सीता को वह अपनी ही बेटी समझती है।

### 5.2.1.3 अंधा पुत्र प्रेम :

डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्यों में माँ के ऐसे रूप भी चित्रित किये हैं, जो अपनी खुद की संतान को सुखी करने के लिए स्वार्थवश अपनी सौत की संतान अथवा अन्य संतान के प्रति अन्याय करती हैं। फल स्वरूप उस संतान के जीवन के सारे सुख नष्ट हो जाते हैं। 'परिताप के पाँच क्षण' की मत्स्यगंधा और 'उत्तर रामायण' की कैकेयी इस तथ्य के उदाहरण हैं। माँ मत्स्यगंधा की संतान के सुख हेतु भीष्म ने अपने जीवन की दिशा ही बदल दी है। इच्छा मृत्यु का वरदान पानेवाले भीष्म माँ मत्स्यगंधा के कारण प्रतिज्ञाओं के दायरे में बन्ध होकर न पूरी तरह से जी सकते हैं, न मर ही पाते हैं।

### 5.2.1.4 निर्दयी माता :

अप्सराओं के माध्यम से माता का यह रूप भी कवि ने हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। अप्सराएँ अक्सर उच्छृंखल स्वभाव की होती हैं। वह अपनी जिन्दगी भोग-विलास एवं एसोआराम में व्यतीत करती हैं। लेकिन जब वे माता बनती हैं, तब मातृत्व का निर्झर उसके हृदय से निकलता ही नहीं है। स्वच्छंद प्रकृति में जीनेवाली ये अप्सराएँ संतान को जन्म देते ही छोड़कर स्वर्ग में वापस चली जाती हैं। परिणाम स्वरूप ऐसे बच्चे को जीवनभर संघर्षों से झुझना पड़ता है।

'नरो वा कुंजरो वा' काव्य की घृताची एवं जानपदी के माध्यम से कवि ने माँ के इस रूप को चित्रित किया है। बच्चे के जन्म के बाद घृताची द्रौण को और जानपदी कृपी एवं कृपाचार्य को छोड़कर स्वर्ग में चली जाती है। माँ के ऐसे निर्दयी व्यवहार के कारण उनके बच्चों को जीवन में काफी कठिनाईयाँ सहनी पड़ती हैं।

### 5.2.2 पत्नी रूप :

नारी का एक रूप पत्नी का भी होता है। परिवार समाज की ईकाई है। समाज का स्थैर्य

समाज में होनेवाली परिवार व्यवस्था की दृढ़ता पर निर्भर होता है। विशेषतः भारतीय संस्कृति में परिवार व्यवस्था का बड़ा ही महत्व है। परिवार निर्माण में नारी का बड़ा योगदान होता है। इतना ही नहीं बल्कि स्त्री के बिना परिवार का अस्तित्व ही नहीं होता। परिवार नारी के आचरण से प्रभावित रहता है। पत्नी पारिवारिक समाज का प्रथम घटक है। अतः परिवार को बनाना या बिगाड़ना नारी के हाथ में होता है। भारतीय समाज में प्राचीन काल से नारी को गृहस्थी का मूलधार माना गया था। उसे 'गृहलक्ष्मी', 'गृह देवता', 'गृह स्वामिनी' के उच्च स्थान पर विराजित किया गया था। किन्तु क्रमशः उसका महत्व कम होता गया।

सुखी दाम्पत्य से सुखी परिवार बनता है। पति-पत्नी का रिश्ता बड़ा ही आकर्षक रहा है। दोनों में समर्पण की भावना होनी चाहिए। एक पात्र अच्छा होने से कुछ नहीं चलता। दोनों में एक दूसरों को समझने की भावना होनी चाहिए। पत्नी के रूप में नारी पति को हर हाल में मदद करती है। पति के जीवन में गति एवं स्फूर्ति का संचार कर उसे जीवनपथ पर सफलता प्राप्त करने के लिए प्रेरणा देती है। साथ ही साथ पूरे परिवार की जिम्मेदारी सम्हालती है। वह पति के सुख में सुखी और पति के दुःख में दुःखी होती है। काफी कुछ सहकर भी पति के लिए शुभकामना ही करती है। डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्यों में प्रमुखतः पत्नी का परंपरागत रूप देखने को मिलता है। नारी के पत्नी रूप में विविध आयाम इस प्रकार हैं।

### 5.2.2.1 पत्नी का परम्परागत निष्ठामय रूप :

भारतीय परम्परा में पत्नी पति के प्रति अत्यंत निष्ठावान एवम् पातिव्रत धर्म पालक होती है। आज भी यह मान्यता अधिकांशतः बनी हुई है। हालांकि आधुनिक पत्नीयों में पति के विचारों, मान्यताओं एवं आचार-व्यवहार से भिन्नता द्रष्टिगत होती है, किन्तु वह भी पति के प्रति समर्पित भाव रखती है और पति को अपना सर्वस्व मानती डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्यों की पत्नियाँ पति के प्रति संपूर्ण समर्पित हैं।

'परिताप के पाँच क्षण' की अम्बिका और अम्बिका में भी यही रूप दिखाई देता है। भीष्म ने उसका अपहरण किया था, लेकिन विचित्रवीर्य के लिए। अर्थात् वे विचित्रवीर्य की पत्नी के रूप में रहना स्वीकार कर लेती हैं। 'उत्तर महाभारत' की द्रौपदी भी पति परायण आदर्श पत्नी के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होती हैं। हालांकि उसे परिस्थिति वश पाँच पतियों की पत्नी बनना पड़ता है, किन्तु फिर भी वह एक आदर्श एवं निष्ठावान पतिपरायणता होने के नाते वह पाँचों के बीच सन्तुलन बनाये रखती है।

सतीत्व प्रत्येक नारी का सबसे बड़ा गुण माना गया था। इसके आधार पर पतिव्रता नारी की सच्ची पहचान की जाती थी। 'उत्तर रामायण' की सीता इसका उत्तम उदाहरण है। वह एक परमादर्श पतिपरायणता एवं सतीत्व की रक्षा करनेवाली नारी थी। वह सुख-दुःख, घर-वन सब स्थानों एवं परिस्थितियों में पति का साथ देती है। वह मन, वचन और कर्म से पति के प्रति श्रद्धालु थी। इसी कारण सतीत्व की कसौटी के क्षणों में भी वह खरी साबित होती है। पत्नियों का सबसे बड़ा गुण त्याग था। वे पति के लिए अपने सुखों, ऐश्वर्यों तथा प्राणों तक का त्याग कर सकती थी, किन्तु पति का साथ नहीं छोड़ती थी। यह त्याग वह विवशता से नहीं गर्व से करती थी। सीता इसी कारण राम के साथ वन में जाती है। सीता के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसने उस पति के प्रति भी जिसने अपार जन-समुदाय के बीच उनके चरित्र पर लांछन लगाया, जिसे केवल लोकापवाद के भय से गर्भावस्था में पत्नी का त्याग किया, शुभकामनाएँ ही व्यक्त की। पति की यश प्राप्ति के लिए अपने शारीरिक कष्टों की भी परवाह नहीं की थी। इस प्रकार सीता का त्याग पतिव्रता भारतीय नारी का उच्चतम आदर्श का द्रष्टांत है।

भारतीय नारी की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि जिस व्यक्ति को उसने एकबार अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया है, उससे वह जीते जी फिर कभी भी अलग होना नहीं चाहती। सुख-दुःख में वह अनन्य भाव से अपने पतिव्रत धर्म का पालन करती है। 'उत्तर रामायण' की उर्मिला, माण्डवी, श्रुतकीर्ति पतिपरायण और कर्मठ पत्नी के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होती है। मन्दोदरी भी आदर्श पतिव्रता नारी है, जो पति को कर्तव्य मार्ग के प्रति सचेत करती है। 'उत्तर भागवत' की देवकी एवं गान्धारी में परम्परागत निष्ठापत्नी का रूप चित्रण हुआ है।

### **5.2.2.2 पति द्वारा चारित्रिक शंका करने पर चरित्र का प्रमाण देनेवाली नारी :**

सतीत्व प्रत्येक भारतीय नारी का सबसे बड़ा गुण माना गया था। यह वह कसौटी थी जिसके आधार पर पतिव्रता नारी की सच्ची पहचान की जाती थी। शील ही स्त्री की सुंदरता का प्रतीक है। भारतीय नारियाँ अपने चारित्र्य को बनाये रखने के लिए काफी कठिनाईयों का सामना करती हैं। किन्तु फिर भी यदि पत्नी का हरण हो जाता था और उसे विवश होकर परपुरुष के घर रहना पड़ता था तो पति या जन समुदाय उस स्त्री के चरित्र पर शंका करता था। किन्तु जब वह सतीत्व की परीक्षा देकर पति की शंका का निवारण करती थी, तो पति उसे पुनः स्वीकार करता था, तब भी जनता पति-पत्नी की निन्दा करने लगती थी, तब लोकापवाद के कारण पति उसका परित्याग

कर देता था। परन्तु उसकी कठिन परीक्षा लेकर पुनः ग्रहण करता था। इस बात का संकेत हमें सीता के चरित्र से मिलता था। राम ने लोकापवाद के कारण उसका त्याग कर दिया था। वाल्मीकि ऋषि के कहने पर उन्होंने सीता की भरी सभा में पुनः सतीत्व की परीक्षा लेनी चाही थी किन्तु वह कसौटी हेतु भूमि में समा गई थी। इस विवरण से ज्ञात होता है कि राम उसे पुनः ग्रहण करना चाहते थे। सीता भारतीय सतियों में श्रेष्ठ मानी जाती है, किन्तु फिर भी उनके चारित्र्य पर भी शंका व्यक्त की गई थी। अपितु भारतीय नारियों में गजब का धैर्य एवं सहनशीलता पायी जाती है। हमारी सतियाँ अपने चारित्र्य को प्रमाणित करने के लिए प्रत्येक कसौटियों को पार करती हैं। सीता ने दो-दो बार अपने चरित्र की पावनता के लिए अग्नि परीक्षा दी। सीता के इसी गुण से प्रभावित होकर दत्त महादेव ने लिखा है -

“इस विशाल भारत में किसी ऐसी स्त्री का होना सम्भव नहीं है, जिसने सीता की दुःखभरी कथा न सुनी हो और जिसके लिए सीता का चरित्र आदर्श एवं अनुकरणीय न रहा हो।”<sup>2</sup>

रजक भी अपनी पत्नी के चरित्र पर शंका व्यक्त करके उसे घर से निकाल देता है। उसकी पत्नी (धोबीन) भी अपने शील की शुद्धता प्रमाणित करने हेतु राम का उदाहरण प्रस्तुत करती है।

### 5.2.2.3 पति का वियोग सहनेवाली नारी :

भारतीय नारी पति के वियोग को ईश्वरीय दान के रूप में ग्रहण करती हुई देखी जाती है। चाहे पति अर्थोपार्जन के लिए गया हो, देश-या जन रक्षा के लिए गया हो या परिवार कल्याण हेतु। पति के बिना वियोगावस्था में वह पति के कर्तव्यों का भी भली-भाँति निर्वाह करती है। ‘उत्तर रामायण’ के लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला इस बात का उत्तम उदाहरण है।

### 5.2.2.4 पति के प्रति मानसिक आक्रोश एवं विद्रोह करनेवाली नारी :

नारी को अपने सांसारिक जीवन में संघर्षों एवं समस्याओं से झुझना पड़ता है। डॉ. किशोर काबरा ने पत्नी के इस रूप का चित्रण ‘उत्तर महाभारत’ की द्रौपदी के चरित्र के माध्यम से किया है। द्रौपदी को जीवनभर यातनाएँ ही सहनी पड़ी थी। अपने स्वयंवर में पति के रूप में अर्जुन को पाकर भी उसे परिस्थिति वश पाँचों पाण्डवों की पत्नी बनकर रहना पड़ता है। इस मानसिकता से वह कभी मुक्त नहीं हो सकी थी। फिर भी सबकुछ वह चुपचाप सहती जाती है। किन्तु जब पाँच पतियों के होते हुए भी भरी सभा में वस्त्राहरण करके उसका अपमान किया जाता है तब पाँच पतियों में से कोई उसकी रक्षा नहीं कर सकते हैं, तब मन ही मन वह अपने पतियों पर आक्रोश

व्यक्त करती है। 'नरो वा कुंजरो वा' की द्रौपदी भी भरी सभा में अपने पतियों एवं गुरुजनों के प्रति यही आक्रोश व्यक्त करती है -

“चीर मेरे चीथ डाले थे वहाँ दुश्शासनों ने  
सभी मेरे नग्न होने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

X X X

धर्म के अवतार सारे चुप रहे गर्दन झुकाकर  
शौर्य के संस्कार सारे मर गए आसन बिछाकर  
सब गदाएँ, सब धनुष,  
सब रूप-ज्योतिष और घोड़ों के सभी सामान  
कोने में पड़े थे मौन - मिट्टी से।”<sup>3</sup>

इस प्रकार डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्यों में पत्नी के सभी रूपों के विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नारी स्वतंत्रता चाहती है किन्तु वह अपनी परम्परागत संस्कारशीलता से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पायी है।

### 5.2.3 प्रेयसी रूप :

नारी का मनभावन रूप प्रेयसी का है। नारी प्रेम की अधिष्ठात्री मानी जाती है। प्रेयसी रूप में वह अपने प्रेमी के श्री चरणों में अपना सर्वस्व बिखेर देना चाहती है। वह अपना सब कुछ उसे ही मानने लगती है। किन्तु इस समर्पण में उसे वेदना ही मिलती है। प्रेयसी रूप में नारी यही चाहती है कि उसके प्रेम की परिणति विवाह में न हो जाए। परंतु परिस्थिति वश यह संभव न हो तो वह जीवन के प्रति उदास हो जाती है, या तो उसके जीवन की दिशा ही बदल जाती है। आज के परिवर्तित युग में साधारणतः ऐसे ही प्रेमी-प्रेमिका देखने को मिलते हैं जिनका प्रेम एक झटके में टूटनेवाला होता है। डॉ. किशोर काबरा के 'परिताप के पाँच क्षण' प्रबन्ध काव्य में नारी का यह रूप पाया जाता है। अम्बा प्रथम मुलाकात से ही शाल्व युवराज से प्रेम करने लगती है। अपना सब कुछ शाल्व युवराज को समर्पित कर, उसे अपना पति मान लेती है। उसके जाने के बाद वह उसके ही खयालों में खोयी रहती है। प्रेमी का विरह उसे बहुत सालता है। किन्तु उसके प्रेम में वह गरिमा एवं उच्चता नहीं है। एक ही झटके में उसका प्रेम नष्ट हो जाता है। भीष्म उसका अपहरण करता है, उसके बाद शाल्व उसे स्वीकारने से इन्कार कर देता है। न विचित्रवीर्य उसे स्वीकारता है और न ही भीष्म। उसका प्रेम और प्रेमी के देखे गये सारे स्वप्न धूल में मिल जाते हैं। अतः वह आदर्श प्रेयसी नहीं



कहलाएगी। आधुनिक नारी की भाँति वह अपने प्रेमी को बड़े ही व्यंगबाणों से घायल करती है और प्रणय के त्रिकोणात्मक दुत्कार से अम्बा का पुरा जीवन ही दुःखमय बन जाता है।

यहाँ प्रेम एक आवश्यकता के रूप में उभरा है। प्रेमिका को किसी पुरुष के सहारे की आवश्यकता है। अतः वह प्रेमी के पास से लौटकर दूसरे-तीसरे आदमी से प्रणय निवेदन करने लगती है। यानि की प्रेम में विफल होने पर तुरंत अन्य आदमी का सहारा माँगने लगती है। यहाँ अम्बा असफल प्रेमिका के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होती है। अपने जीवन को सुरक्षित रखने के लिए वह किसी भी पुरुष का सहारा चाहती है। चाहे उसका प्रेमी हो या कोई अन्य पुरुष।

### 5.2.3.1 अप्सराओं का प्रेमिका रूप :

स्वर्ग की अप्सराएँ सजधजकर अपने प्रेमियों से मिलने जाती हैं। तथा प्रेमियों के प्रति प्रगाढ़ अनुराग भी रखती थी। डॉ. किशोर काबरा के 'नरो वा कुंजरो वा' की घृताची एवं जानपदी स्वर्ग की उच्छृंखल स्वभाव की अप्सराएँ थी। जो अपने प्रेमी के प्रणय पाश में बँधती हैं, संसार का सुख भुगतती हैं और एक दिन अपने प्रेमी को छोड़कर वापस स्वर्ग में चली जाती हैं। अप्सराओं का प्रेम भी बड़ा अजीब होता है। किसी के मुँह से वीर एवं पराक्रमी पुरुष के रूप-रंग की प्रशंसा सुनकर उसके पास जाकर प्रणय निवेदन करने लगती हैं। कहीं-कहीं तो प्रेम का स्वीकार न करनेवाले पुरुष को शाप भी दे देती हैं। 'उत्तर महाभारत' की उर्वशी इस प्रकार की प्रेमिका है। वह चित्रसेन के मुँह से अर्जुन की प्रशंसा सुनकर अर्जुन के पास पहुँच जाती है और उससे प्रणय निवेदन करने लगती है। किन्तु अर्जुन उसके प्रणय को स्वीकारने के बजाय उसे 'माँ' कहकर श्रद्धा से वंदन करता है, तब कामासिक्त उर्वशी उसे नपुंसक बनने का शाप दे देती है।

हम कह सकते हैं कि अप्सराएँ आदर्श प्रेमिकाएँ नहीं कहलाएगी। उसमें वासना एवं कामुकता ही द्रष्टिगत होती है। आज के युग में आदर्श एवं सच्ची प्रेमिकाएँ बड़ी मुश्किल से मिलती हैं। यद्यपि पुरुष एवं नारी का पारस्परिक प्रेम स्वाभाविक है, किन्तु डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्यों में अप्सराओं एवं अम्बा को छोड़कर किसी भी प्रेयसी का प्रत्यक्ष वर्णन नहीं किया है। पत्नी को ही प्रेयसी के रूप में चित्रित किया गया है। 'उत्तर भागवत' की राधा के प्रेम का कवि ने उदात्त चित्रण प्रस्तुत किया है। वह कृष्ण से प्रेम संबंध से जुड़ी हुई है लेकिन उसके प्रेम में कहीं भी भोग विलास या वासना नहीं है। निष्काम प्रेम-योगिनी के रूप में वह हमारे समक्ष उपस्थित होती है।

### 5.2.4 बहन का रूप :

माँ के बाद नारी को जिस रूप में सम्मान प्राप्त है वह है बहन का रूप। बहन-भाई का

सम्बन्ध पवित्र सम्बन्ध होता है। समाज आज भी इस संबंध को पवित्र मानता है। बहन अपने भाई के लिए सब कुछ करने को तैयार हो जाती है। भाई का थोड़ा-सा कष्ट भी उससे सहा नहीं जाता। भाई भी बहन की रक्षा करके अपना कर्तव्य निभाता है। प्रबन्धकार ने 'उत्तर रामायण' में शूर्पनखा को बहन के रूप में चित्रित किया है। लक्ष्मण शूर्पनखा के रूप का अपमान करता है, तब शूर्पनखा बदले की आग में प्रज्ज्वलित होने लगती है। बाद में रावण राम और लक्ष्मण से बहन के अपमान का बदला लेता है।

वैसे रक्त के सम्बन्ध से इतर भाई-बहन के रिश्ते में बड़ी ही आत्मीयता एवं अपनापन होता है। बहन और भाई बड़े प्रेम से एक-दूसरे के कर्तव्यों को निभाते हैं लेकिन आज रक्त से इतर सम्बन्धों में कहीं-कहीं स्वार्थ एवं इर्ष्या का भाव भी देखने को मिलता है। 'उत्तर रामायण' की कुकुआ इर्ष्याविश राम के जीवन के समग्र सुखों को नष्ट करने की ठान लेती है। इतना ही नहीं वह शूर्पनखा, मन्दोदरी एवम् मंथरा की बेटी को भी राम के विरुद्ध भड़काती है।

'उत्तर भागवत' की देवकी कंस की चचेरी बहन थी किन्तु कंस उसे सगी बहन से भी ज्यादा प्यार करता था। देवकी की शादी के समय वह स्वयं उसका रथ हाँकता है, इतना ही नहीं, वह उसे आठ बेटों की माँ बनने के आशीर्वाद भी देता है, किन्तु तत्क्षण अपने काल को निकट देखकर क्रूर बनकर देवकी पर अत्याचार करता है। उसे बंदी बनाकर कारावास में डाल देता है और उसके बेटों की निर्मम बनकर हत्या भी कर देता है। यहाँ भाई की बहन के प्रति क्रूरता द्रष्टिगत होती है।

कभी-कभी सगा भाई न होकर भी भाई-बहन को एक-दूसरों के प्रति आत्मीयता एवं अपनापन होता है। 'उत्तर भागवत' एवं 'उत्तर महाभारत' की द्रौपदी का कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम है। मुश्किल क्षणों में इस बहन को कृष्ण ने ही मदद की है।

इस प्रकार बहन के परम्परागत रूप के साथ-साथ आज के वातावरण में कहीं-कहीं स्वार्थ एवं आत्म केन्द्रिता भी देखने को मिलती है।

### 5.2.5 पुत्री रूप :

माँ, बहन, पत्नी, प्रेमिका - इन सभी से हटकर एक और रूप नारी का है पुत्री रूप। माँ रूप में नारी ममता को बाँटती है तो साथ ही साथ बच्चों से यह आशा भी रखती है कि वे उसे सम्मान दें। पुत्री भी माँ-बाप का आदर एवं सम्मान रखती है। हाँ वर्तमान परिवेश में इस पर प्रश्नार्थ चिन्ह लगाया जा सकता है। डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्यों में पुत्री का आदर्श रूप चित्रित किया

गया है। 'धनुष-भंग' और 'उत्तर रामायण' की सीता आदर्श पुत्री के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हुई है। जैसे-जैसे पुत्री यौवनावस्था की ओर बढ़ती है, वैसे-वैसे माता-पिता के लिए उसके योग्य वर ढूँढने की चिन्ता बढ़ती जाती है। पिता अपनी पुत्री के लिए सुयोग्य वरान्वेषण के लिए स्वयंवर का भी आयोजन करता था। 'नरो वा कुंजरो वा' की द्रौपदी भी आदर्श पुत्री के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होती है। अपने स्वयंवर में वह कर्ण के दिव्य सौन्दर्य से मोहित हो जाती है, किन्तु पिता के इशारे मात्र से वह कर्ण का त्याग करने के लिए तैयार हो जाती है।

### 5.2.6 विद्रोही रूप :

भारतीय संस्कृति में नारी को शान्ति एवं सौम्य का प्रतीक माना गया है। उसके विद्रोही स्वरूप की कल्पना ही नहीं की गई। किन्तु जीवन की विभिन्न परिस्थितियाँ और पुरुष के नारी के साथ अनुचित व्यवहार ने उसे आज विद्रोही बना दिया है। नारी में विद्रोही रूप का उद्भव सामाजिक परिस्थितियाँ हैं। समाज और परिवार के अनेक बंधनों में फँसी नारी के हृदय में आज विरोध और प्रतिशोध का जन्म हुआ है। विद्रोही नारी के रूप निम्न प्रकार है।

#### 5.2.6.1 अस्वीकृत नारी का विद्रोही रूप :

'परिताप के पाँच क्षण' में अंबा का यह रूप हमारे सामने उभर आता है। वह चाहती है शाल्व राजा को किन्तु भीष्म विचित्रवीर्य के लिए उसका अपहरण करता है। अतः शाल्व उसे स्वीकारने का इन्कार कर देता है। उसे न विचित्रवीर्य स्वीकारता है और न भीष्म। प्रणय के त्रिकोणात्मक दुत्कार से अंबा की स्थिति त्रिशंकु-सी हो जाती है। उसके हृदय में भीष्म के प्रति विद्रोह की ज्वाला भभक उठती है। वह किसी भी परिस्थिति में भीष्म से प्रतिशोध लेना चाहती है। उसका विद्रोहात्मक रूप इतना तीव्रतम हो जाता है कि वह भीष्म से बदला लेने के लिए दो-दो बार कठोर तपस्या करती है और यहाँ तक कि वह आत्म समर्पण करके भी भीष्म को बरबाद करना चाहती है। किन्तु अंत में वह न वर ही प्राप्त कर सकती है, न ही बैर ले सकती है।

#### 5.2.6.2 अपमानित नारी का विद्रोही रूप :

पुरुष अपने पौरुष का अपमान भूल जाता है, किन्तु नारी अपने रूप का अपमान सात जनम तक नहीं भूल पाती है। 'उत्तर रामायण' की शूर्पनखा भी अपने रूप का लक्ष्मण द्वारा अपमान होने पर उससे विद्रोह करने के लिए तत्पर होती है।

अतः आधुनिक परिस्थिति के संदर्भ में नारी का यह रूप प्रस्तुत करके कवि ने आधुनिक नारी

के स्वाभिमान को प्रस्तुत किया है। आधुनिक नारी कहीं भी, याने कि समाज, परिवार, प्रेमी, पति किसी से भी पिसती नहीं है। उसका प्रतिकार करने की शक्ति भी आज नारी में पायी जाती है।

वस्तुतः कहा जा सकता है कि आज प्रत्येक मनुष्य नूतन और पुरातन के बीच संघर्षरत है। नारियाँ भी इनके मध्य संघर्ष करती हुई कहीं पुरातन को मान रही हैं और कहीं उनका विरोध करके नयी मान्यताएँ एवं विचारों को प्रस्थापित करती हैं। अतः किशोर काबराजी ने नारी को भिन्न-भिन्न रूपों में चित्रित किया है। और वैसे भी साहित्य में स्त्री का वही रूप सामने आता है जो संस्कृति और समाज द्वारा स्वीकृत किया हुआ होता है और यही फिर स्त्री का प्रकृत और प्रमाणिक स्वरूप बन जाता है। डॉ. काबराजी ने भी नारी को भारतीय संस्कृति के अनुरूप ही माना है।

### 5.3 डॉ. किशोर काबरा का नारी के प्रति नूतन द्रष्टिकोण :

भारतीय संस्कृति में नारी का महत्वपूर्ण स्थान है। सांसारिक जीवन में अगर नारी नहीं होती, तो सभ्यता और संस्कृति का कोई स्थान नहीं होता। प्राचीन काल में नारी पूजनीय थी, किन्तु बदलते परिवेश के साथ-साथ नारी में भी परिवर्तन पाया गया है। साहित्य मानव जीवन की प्रतिकृति है। व्यक्ति, समाज और साहित्य के विकास की प्रक्रिया एक-दूसरे पर निर्भर होती है। सामाजिक परिवर्तन का प्रभाव व्यक्ति के मन पर होता है और व्यक्ति का मन साहित्य के माध्यम से व्यक्त होता है। व्यक्ति, समाज और साहित्य का संबंध अन्योन्याश्रित है। आज के भौतिकवादी युग में मूल्यों का विघटन होता जा रहा है, जिसमें आधुनिक नारी का नवीन रूप हमारे सामने उभरकर आता है। जिन यातनाओं, पीड़ाओं, संत्रासों, वेदनाओं के बीच आज की नारी जी रही है, उसे नये कवियों ने मानसिक धरातल पर विश्लेषित करने का प्रयत्न किया है। युगों से बन्धनग्रस्त नारी आज अपने अस्तित्व और व्यक्तित्व को समझने लगी है। आज वह न 'अबला' बनकर जीना चाहती है, न चार दिवारों के बीच कैद रहना चाहती है। स्वातंत्र्योत्तर काल की परिस्थितियाँ, विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक आन्दोलन, नारी मुक्ति आन्दोलन, भारतीय संविधान की व्यवस्था आदि के कारण नारी जीवन और नारी संबंधी सामाजिक द्रष्टिकोण में भी बदलाव आया। नारी में साहस तथा आत्मविश्वास का निर्माण हुआ। नारी की स्थिति हर क्षेत्र में मजबूत होती गयी, जिससे नारी संबंधी मान्यताएँ भी बदलने लगी। स्वयं नारी की मानसिकता भी बदलने लगी। आज वह प्रत्येक परिस्थिति में जीवन में आनेवाले हर संकटों का मुकाबला करने के लिए कटिबद्ध है। संघर्षों से झुझते हुए भी प्रति स्पर्धा के इस युग में वह अपने व्यक्तित्व को अकारण रखे हुए रूढ़ियों को ठोकर मारकर बाहर निकलने की भावना रखने लगी हैं और सक्रिय विद्रोह भी करने लगी हैं। नारी में हुए इस

परिवर्तन का परिणाम साहित्य में भी हुआ। क्योंकि मानवजाति के उत्थान के लिए शाश्वत मूल्यों के भारवहन का कार्य साहित्यकार का ही है। अतः साहित्य में नारी चरित्र के विभिन्न रूपों को विभिन्न कोणों से उभारा गया है। 'नारी एक रूप अनेक' के मुताबिक विभिन्न परिस्थिति में विभिन्न समाज में, विभिन्न कार्य-प्रणालियों के अनुसार आज नारी के अनेक रूप पाये जाते हैं, किन्तु वास्तव में आधुनिकता की अंधी दौड़ में वह अपनी संस्कृति और सभ्यता को भूल रही है। ऐसी परिस्थिति में कवि समाज का दिशा निर्देश करता है। क्योंकि कवि अपने काल का प्रतिनिधि होता है। अपने युग का प्रभाव उनके काव्यों में अवश्य दिखाई देता है। हर युग का अपना एक जीवन दर्शन होता है, जो अपने युग के अनुकूल जीवन मूल्य निर्धारित करता है। साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है कि जहाँ वह युग का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है, वहीं वह तत्कालिन परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना भी नहीं बच पाता। क्योंकि साहित्य युग एवं काल सापेक्ष होता है। काल के अनुसार यदि साहित्य न बदला तो वह जाति के पतन का प्रतीक बन जाता है। क्योंकि उसका मनुष्य के संस्कारों और विचार परम्परा के साथ घनिष्ठ संबंध होता है।

डॉ. किशोर काबरा आधुनिक युग के सक्षम कवि हैं। साथ ही साथ वे भारतीय संस्कृति के मूलादर्श बनाये रखना चाहते हैं। उनके प्रबन्ध काव्य समाज जीवन का दस्तावेज हैं। समाज जीवन के जीवंत चित्रों को उन्होंने बड़ी सतर्कता से प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपने प्रबन्धों में नारी जीवन की सार्थकता को सुअवसर दिया है। समकालीन परिस्थिति में नारी की स्थिति से वे भली-भाँति परिचित हैं। अतः उन्होंने पौराणिक नारी पात्रों के माध्यम से वर्तमान मौजूदा नारी का पथ प्रदर्शन किया है। वैसे भी कवियों को अपने मन की बात कहने के लिए कहीं जाना नहीं पड़ता है। वे अपनी ही संस्कृति के गहरे भाव एवं अर्थ को पौराणिक कथाओं के माध्यम से प्रकट करते हैं। वैश्विक चेतना से सम्पन्न अपनी संस्कृति को काबराजी ने अपने नवीन द्रष्टिकोण से साहित्य में स्थान दिया है। उन्होंने रामायण, महाभारत एवं भागवत की कथा को आधार बनाया है, किन्तु उन्होंने भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल आदर्शों की अभिव्यक्ति का द्रष्टिकोण अपनाकर उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन एवं परिमार्जन कर नारी के प्रति अपने नूतन द्रष्टिकोण का परिचय दिया है।

### 5.3.1 मनोवैज्ञानिक द्रष्टिकोण :

नारी मन के ज्ञाता डॉ. किशोर काबरा ने अपने प्रबन्ध काव्यों में मनोवैज्ञानिक द्रष्टिकोण के द्वारा नारी मन को समझने का सफल प्रयास किया है। नारी स्वभाव की मनोवैज्ञानिक विशेषता है कि प्रेम में वह धोखा या अन्याय सहन नहीं कर सकती है। जिसने उसके प्रेम को छिना हो, या उसके

साथ अन्याय किया हो, उसे वह कतई क्षमा नहीं कर सकती है। उससे प्रतिशोध लेने के लिए वह अपनी जान तक कुर्बान कर देती है। उस व्यक्ति के प्रति उसका विद्रोह इतना तीव्रतम हो जाता है कि वह उस आदमी का जीना ही हराम कर देती है। डॉ. किशोर काबरा ने 'परिताप के पाँच क्षण' के द्वारा नारी अपमान के प्रश्न को बड़ी गंभीरता से उठाया है। वैसे नारी जीवन पथ पर पुरुष के सहारे प्रेम से आगे बढ़ती है। उसका हृदय साथ देती है, किन्तु जब उसका अपमान होता है, या कोई उसे ठुकराता है, तो वह मर जायेगी, किन्तु उसकी ओर मुड़कर दुबारा कभी नहीं देखेगी। कवि ने नर और नारी की वृक्ष और लता से तुलना करते हुए उक्त बात को इस प्रकार रखा है —

“स्त्री लता है जो निकट के  
वृक्ष का लेती सहारा।  
बाँध लेती है उसी को  
प्यार से जिसने पुकारा।  
पर किया अपमान तरु ने  
तो छिटककर गीर पड़ेगी  
जल मरेगी, किन्तु देखेगी नहीं  
मुड़कर दुबारा।”<sup>5</sup>

कवि ने 'परिताप के पाँच क्षण' के द्वारा नारी के अन्तर्मन की गहराई को छूने का प्रयत्न किया है। यह ध्यातव्य तथ्य है कि कोई भी पुरुष नारी की इच्छा के बिना उससे प्रेम नहीं पा सकता है। उसके साथ सोना तो दूर उसकी इच्छा के बिना उसे छू भी नहीं सकता है। भीष्म के द्वारा कवि ने इस बात को रखा है।

“जब तलक इच्छा नहीं अणुमात्र  
औरत के हृदय में  
कौन है नर केसरी  
जो सो सकेगा साथ उसके  
विश्व का कोई सबल यौध्या  
हरण तो दूर  
जब तलक इच्छा न हो  
क्या छू सका है हाथ उसके ?”<sup>6</sup>

कवि ने नर-नारी के रहस्यों को उस भीष्म के मुँह से कहलवाया है, जिसने सांसारिक रूप में नारी के प्रेम को नहीं पाया है, किन्तु नारी के हृदय की गहराई को उसने जरूर जाना है। प्रथम अंबा को स्वीकार करने का प्रस्ताव ठुकराने वाले शरशैय्या पर परिताप के क्षण भुगत रहे भीष्म नारी के अंतर्मन की वेदना को बाद में समझ सके है। यहाँ भीष्म के परिताप के द्वारा भी कवि ने नारी के प्रति नूतन द्रष्टिकोण प्रस्तुत किया है। स्त्री और पुरुष दोनों एक-दूसरे के बिना अपूर्ण है। समर्पण नारी का सबसे बड़ा गुण है। जब तक वह पुरुष के प्रति संपूर्ण समर्पित नहीं हो जाती, तब तक उसके समर्पण का कोई मूल्य नहीं है, दोनों एक-दूसरे के सहारे के बिना आधे-अधूरे हैं। यह बात कवि के शब्दों में देखिए —

“नारी जब तलक होती नहीं पूरी समर्पित  
पुरुष की बेताब बाहों में  
नारी के समर्पण का नहीं है मूल्य कोई  
जब तलक नर की निगाहों में,  
तब तलक दोनों अधूरे हैं  
अयाने हैं।”<sup>7</sup>

‘नरो वा कुंजरो वा’ में भी कवि के मनोवैज्ञानिक द्रष्टिकोण का परिचय मिलता है। जो पुरुष नारी की नजर को नहीं सह पाता है, उसे बात तक सहने के लिए तैयार रहना पड़ता है, जिसका मन नारी में केन्द्रित होता है, उसे अपनी आँखों से ही अनिच्छनीय दृश्यों को भी देखना पड़ता है। यह बात भी कवि ने भीष्म के माध्यम से ही रखी है। देखिए —

“जो नजर नहीं नारी की सह पाता है,  
वह उसके सौ-सौ बाण सहा करता है।

X X X

नारी में केन्द्रित होता जिसका मन है,  
वह चीर हरण के द्रश्य बीन लेता है।”<sup>8</sup>

नारी वैसे बड़ी ही कोमल होती है। थोड़ा सा कष्ट भी वह सरलता से नहीं सह सकती है, किन्तु प्रसूति की पीड़ा को वह एक समाधि की भाँति सह लेती है। ‘उत्तर भागवत्’ में कवि ने देवकी के पात्र द्वारा इस तथ्य को प्रस्तुत किया है। इस प्रकार यहाँ कवि का मनोवैज्ञानिक द्रष्टिकोण स्पष्ट रूप से झलकता है।

### 5.3.2 मानवतावादी द्रष्टिकोण :

पश्चिमी चिन्तन धारा में एक क्रान्ति उत्पन्न हुई, जिसे मानववाद कहा गया है। मानववाद में मानव की महत्ता का जयघोष है। मानव की महत्ता के मूल में चिंतकों की उदात्त द्रष्टि ही प्रमुख रही है। मानववाद वस्तुतः मानवतावादी आदर्श का प्रथम पहलू है। डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्यों में नारी के प्रति मानवतावादी द्रष्टिकोण द्रष्टिगत होता है। कवि को नारी शक्ति पर असीम विश्वास है। वे नारी के सहृदयता, त्याग, निष्ठा, सेवा आदि चिरन्तन मानवीय मूल्यों पर विश्वास रखते हैं। उन्होंने अपने प्रबन्ध काव्यों में नारी पात्रों का चित्रण मानवतावादी द्रष्टिकोण से किया है। प्राचीनकाल में नारी को भोग की चीज मानी जाती थी, किन्तु कवि ने नारी को संपूर्ण विश्व की उत्पत्ति का शुभ मंत्र माना है।

“नहीं भोग्या, नहीं मादा, नहीं शिशु-यंत्र है नारी,  
समूचे विश्व की उत्पत्ति का शुभ मंत्र है नारी।  
नहीं दाम्पत्य या मातृत्व है संकीर्णता इसकी,  
यही है पूर्णता इसकी, यही परिपूर्णता इसकी।”<sup>9</sup>

‘उत्तर रामायण’ में कवि का मानवतावादी द्रष्टिकोण स्पष्ट रूप से झलकता है। राम ने आसन्न प्रसवा सीता का त्याग किया तब, कवि को सीता के प्रति अपार सहानुभूति प्रकट होती है। वाल्मीकि के द्वारा कवि ने सीता पर लगे कलंक को दूर करने का प्रयास किया है। वाल्मीकि समग्र जन-समुदाय के बीच कहते हैं —

“मैं स्वयं वाल्मीकि ऋषि के रूप में  
लेता शपथ हूँ -  
ब्रह्म की मेरी तपस्या व्यर्थ जाए एक क्षण में,  
शून्य भर भी मलिनता हो  
यदि सिया के आचरण में।”<sup>10</sup>

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नारी के प्रति कवि का मानवतावादी द्रष्टिकोण है।

### 5.3.3 भारतीय जीवन द्रष्टि :

विश्व संस्कृति में भारतीय संस्कृति का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। भारत की मिट्टी में जन्मे, भारतीय संस्कारों में पले कवि काबराजी भारतीय संस्कृति के गायक हैं। उनके प्रबन्ध



काव्यों में भारतीय संस्कृति के आदर्श देखने को मिलते हैं। आधुनिक युग में चारों ओर पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण हो रहा है, ऐसी परिस्थिति में भला नारी इससे कैसे अछूती रह सकती है ? आधुनिक नारी पाश्चात्य नारी की भाँति पुरुषों के समकक्ष होने लगी है। इतना ही नहीं इससे भी आगे पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध में वह पुरुषों से प्रतिशोध भी लेने लगी है। पुरुष की भाँति कठोर और क्रूर बनकर वह पुरुषों को मात करने में लगी हुई है। आधुनिकता की इस अंधी दौड़ में वह स्वयं की मधुरता खोकर पुरुषत्व का आवरण अपने पर मढ़ने का प्रयत्न तो करती है, किन्तु जीवन का सही आस्वाद वह खो देती है। कवि के अनुसार पाश्चात्य संस्कृति की नकल करके नारी पुरुष से प्रतिशोध तो ले सकती है, किन्तु उसे कुछ भी हाँसिल नहीं होगा। वह शिखंडी से ओर आगे नहीं बढ़ सकेगी। कवि के शब्दों में देखिए —

“स्त्री सदा प्रतियोगिता में  
पुरुष से ऊपर चढ़ेगी।  
खो स्वयं की मधुरता  
पुरुषत्व अपने पर मढ़ेगी।  
नकल जितनी भी करे  
प्रतिशोध चाहे ले प्रलय तक  
स्त्री पुरुष बनकर शिखण्डी  
से नहीं आगे बढ़ेगी।”<sup>11</sup>

कवि का कहना है कि प्रकृति ने ही नारी को कोमल और पुरुष को कठोर बनाया है। यदि वह अपनी मृदुता को छोड़कर कठोर एवं क्रूर बनने का प्रयत्न करेगी तो परिणाम स्वरूप वह कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकेगी। नारी कोमलता से ही सृष्टि पर विजय पा सकती है।<sup>12</sup> वैसे यह कहकर कवि यह स्थापित नहीं करना चाहते हैं कि वह अपमान सहकर रह जाये। कवि तो भारतीय संस्कृति के मूल सार तत्त्व को बनाये रखना चाहते हैं। साथ ही साथ कवि ने यह सत्य भी प्रकट किया है कि जो नारी के अपमान का कारण बनते हैं, नारी उनके विनाश का कारण बनती है। जो नारी के प्रति अपने कर्तव्यों की पूर्ति करते हैं, जीवनगत मूल्यों के आदर्शों के लिए जीवन अर्पण करते हैं, नारी उनमें अमृत तत्त्व का संचार कर, उनके गन्तव्य स्थान तक पहुँचाने में सक्रीय सहयोग देती है।

आधुनिक गृहस्थ नारी सुख-सुविधाओं से युक्त वैभवशाली जीवन जीने की आदी है। अपनी

गृहस्थी में उसे किसी भी चीज के बिना नहीं चल सकता। सुख-सुविधाओं के अभाव में वह अपने पति को ताने मार-मारकर कोसती रहती है। ऐसी परिस्थिति में सीता एवं द्रौपदी जैसी आदर्श गृहिणी को प्रस्तुत करके कवि ने आधुनिक नारियों को गृहस्थ जीवन की विषमताओं के होते हुए भी संतुलन और समायोजन से जीने की प्रेरणा दी है। कवि ने भले ही पाँच पतियों की पत्नी द्रौपदी के आदर्श पत्नीत्व की सराहना की है, किन्तु उन्हीं के मुख से कवि ने कहलवाया है कि पाँच पतियों से जुड़ जाना यह व्यवस्था नहीं है, विवशता है। चाहे व्यक्ति हो या विश्व किन्तु पाँच पतियों को कोई भी व्यवस्था नहीं स्वीकारती है। फिर भी चाहे व्यवस्था हो या विवशता, पर संयम, सन्तुलन और समायोजन युक्त जीवन द्रष्टि कवि की नितान्त नूतन द्रष्टि द्रष्टिगत होती है।

सच्चा भारत गाँवों में ही बसा है। गाँव के लह-लहाते खेत, गाँव की मुक्त प्रकृति ग्रामीण लोगों का स्नेह एवं वात्सल्य अद्वितीय होता है। आज शहरीकरण के कारण लोग गाँवों को छोड़कर शहर की ओर आ रहे हैं। इसीलिए जीवन का वास्तविक स्वाद लुप्त होता जा रहा है, तब कवि ने 'धनुष-भंग' की सीता के द्वारा ग्रामीण अंचल की महत्ता को बढ़ा दिया है। कवि ने सीता को धरती पुत्री के रूप में अवतरित कर गाँव के कण-कण में सीता की व्याप्ति की है। देखिए —

“जानकी बेटी !

तू

गाँव की हर साँस से सोई हुई,

तू

खेत में, खलिहान में खोई हुई।

X X X

जानकी बेटी !

गाँव के हर द्रश्य में,

हर चित्र में,

हर बिम्ब में, प्रतिबिम्ब में

तेरा हृदय ही धड़कता है।

धूल-माटी में धुली ममता,

सरलता, सहजता, शालीनता, संतुष्टि

सब तेरे सहस्रों नाम है बेटी !

गुँथे है जो सभी श्रम-बिन्दुओं के  
 तरल पावन सुखद धागे में  
 जानकी बेटी !  
 धरा की तू सुपुत्री ।

X    X    X

खेत और खलिहाल  
 बैल-हल-हँसिये और हथौड़ा मिलकर  
 अगर कहीं मूरत बन पाएँ,  
 बेटी सीते,  
 वह तेरी सूरत से बिलकुल मिलती होगी ।”<sup>13</sup>

एक समय था भारतीय नारी जीवन पद्धति में कहीं-कहीं पुत्री से ज्यादा पुत्र को महत्व दिया जाता है। इतना ही नहीं, पुत्री के जन्म को अशुभ माना जाता था। किन्तु कवि ने पुत्र से भी ज्यादा पुत्री का महत्व प्रतिपादित किया है। कवि के शब्दों में देखिए —

“बेटी जानकी !  
 कितने पुत्रों से  
 कर रहे पलक प्रतीक्षा  
 हर पलक पर बैठकर  
 मेरे अभागे पल !  
 आज तेरे अश्रु का जलदान पाकर  
 एक पीढ़ी तर गई है ।  
 पुत्र जिसको कर न पाए,  
 आज बेटी कर गई है ।”<sup>14</sup>

सहनशीलता भारतीय नारी का ऐसा गुण है, जो उसे महिमामय व्यक्तित्व प्रदान करता है। साथ ही साथ कर्तव्य परायणता का भाव उसमें ऐसा घुल मिल गया है कि उसकी पृथक विवेचना करना कठिन है। सहनशीलता का महान गुण सीता में अधिष्ठित है। अतः कवि ने वर्तमान संदर्भ में ‘उत्तर रामायण’ के द्वारा सीता का आदर्श प्रस्थापित करके नारीवर्ग को नूतन द्रष्टि प्रदान की है। कवि का लक्ष्य वर्तमान भारतीय समाज जीवन के मूल्यों को बदलने का रहा है। सीता का आदर्श

चरित्र रखकर कवि ने भूत, भविष्य और वर्तमान को एक धागे में पिरोकर स्थाई आदर्शों का दीप जलाने का सफल प्रयास किया है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में काबराजी ने सीता के आदर्श चरित्र की यथार्थता का उद्घाटन किया है। उनके विचार से सामाजिक मर्यादा, कर्तव्य, त्याग आदि बातें आज भी हमारे जीवन में उपादेय हैं।

कवि ने नारी के अति स्वच्छंदतावादी प्रकृति की निंदा की है। स्त्री का प्रणय-निवेदन-अस्वीकार नाक कटने के बराबर है। गुणों के बिना नारी का कोई मूल्य नहीं है। शील एवं काम की मर्यादा के बिना नारी केवल वासना का जीता जागता पूतला मात्र है। स्त्री का सच्चा सौंदर्य उसके संस्कार है।

“स्त्री की नाक शील है, उसके कान काम की मर्यादाएँ,  
इनके बिना सभी प्रमदाएँ केवल नर की मादाएँ  
नाक-कान के बीच समूचे जीवन की है द्रष्टि हमारी  
उसी तरह, जिस तरह भूमि-आकाश बीच है सृष्टि हमारी।

X X X

स्त्री का प्रणय-निवेदन-अस्वीकार  
नाक कटना ही तो है।  
स्त्री के धृणित कुरेदन का दुत्कार  
कान कटना ही तो है।  
मात्र रूप पर वही टिकी,  
जिसमें कुछ दुर्लभ तत्त्व नहीं है।  
बिना रूप के उस नारी का  
फिर कोई अस्तित्व नहीं है।<sup>15</sup>

कवि के अनुसार स्त्री जिस तरह अपने गहनों की हिफाजत करती है, उसी तरह उन्हें अपने आदर्शों की हिफाजत भी करनी चाहिए।<sup>16</sup> कवि ने स्त्री के पतिव्रता होने पर जोर दिया है। उन्होंने एक आदर्श नारी की परिकल्पना की है। वे नारी स्वतंत्रता के विरोधी नहीं हैं, किन्तु आज जिस तरह नारी अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग कर रही है, काबराजी इस तरह नारी को अधिक स्वतंत्रता देने के पक्षधर नहीं हैं। कवि का नारी के प्रति समन्वयात्मक द्रष्टिकोण रहा है। वे यह नहीं चाहते हैं कि नारी

पुरुष से प्रतिशोध लेने की चाह में अपना जीवन ही नष्ट कर दें। वे चाहते हैं कि नारी प्रगति के शिखरों को सर करते हुए पुरुष के समकक्ष रह कर भी अपनी संस्कृति, आदर्श, अस्मिता एवं गरिमा को आँच न आने दें। स्त्री अपने सौन्दर्य की शक्ति से नर की प्राप्ति करती है। कोमलता स्त्री की प्रकृतिगत विशेषता है। क्षमा ही स्त्री का सबसे बड़ा आभूषण है। यदि वह क्षमा नहीं कर सकती है, कठोर बनकर बैर लेने के लिए कटिबद्ध होती है, तो उसकी प्रकृति विकृति में बदल जाती है। कविने स्त्री सहज प्रकृति को इस प्रकार प्रकट किया है।

“स्त्री समर्पण की ऋचा सौन्दर्य ही है शक्ति उसकी,  
शक्ति है सौन्दर्य नर का प्राप्ति ही है मुक्ति उसकी।  
स्त्री स्वयं प्रतिशोध ले सकती नहीं, वह प्रकृति उसकी,  
गर क्षमा करती नहीं, सबसे बड़ी है विकृति उसकी।”<sup>17</sup>

कवि ने नारी के मातृरूप की वंदना की है। मातृत्व धारण करना प्रत्येक स्त्री का सौभाग्य है। मातृत्व की अनुभूति के क्षण बड़े ही मधुर और तरल होते हैं। कवि के मतानुसार —

“गर्भ का पोषण नहीं सामान्य कोई कार्य,  
कितना त्याग !  
कितनी सजगता !  
हाँ यम-नियम, विश्राम-श्रम सब सन्तुलित अनिवार्य  
जिस क्षण एक नारी एक शिशु को जन्म देती है,  
उसी क्षण एक नारी एक माँ को जन्म देती है।  
जहाँ वह जन्म देती है, वहाँ वह जन्म लेती है  
स्वयं मातृत्व के अस्तित्व में।  
निश्चित वहीं आनन्दमय सौन्दर्य पाती है,  
अमल श्रृंगार पाती है  
नए व्यक्तित्व में।  
यह स्वयं में से स्वयं को करके विलग  
फिर स्वयं में ही स्वयं को जीना  
बड़ा रोमांचकारी क्षण।  
उठाकर भार नौ-दस मास

करती पुष्ट संस्कृति को

बढ़ाती इस तरह नारी हमारी मनुज संसृति को ।”<sup>18</sup>

माता का स्थान देवों से भी ऊँचा है। देवता भी माँ के ऋण को नहीं चुका पाये हैं। किन्तु वर्तमान मोडर्न युग में गर्भ का पालन-पोषण एक बोझ सा लगने लगता है। इतना ही नहीं, बच्चे की परवरिश के लिए उसके पास वक्त नहीं है। बच्चे को सँभालने के लिए आज उसे आया की जरूरत पड़ती है। आधुनिक नारी अपने शिशु को छाती से लगाकर हृदय का पुरा प्यार भी नहीं दे पाती है। तब संस्कार सिंचन की बात तो कोशों दूर हैं। डॉ. किशोर काबराजी ने अपने प्रबन्ध काव्यों में भारतीय संस्कृति के ही चित्रों को प्रस्तुत किया है। कवि के अनुसार बच्चे को अपने हृदय का अमृत पिलाना, उसका लालन-पालन करना, शिशु की तुतली बोली सुनना, उसे छाती से लगाकर चुम्बनों की बरसातें करने में माँ का सच्चा सुख है। कवि के मतानुसार मनुष्य को मुक्ति की कामना हेतु चौसठ तीर्थों की यात्रा करने की आवश्यकता नहीं है, वह तो उसके पास ही है। कवि ने मातृत्व की रोमांचकारी क्षणों को संस्कृति का बढ़ावा कहकर नारी का महत्व और भी बढ़ा दिया है।

“स्तन्य पान करता है शिशु जब

माता को कैसा लगता है ?

जीवन मुक्ति निकट ही है बस,

माता को ऐसा लगता है,

तन-मन की संपूर्णता अस्मिता

बनकर पय की धार उफनती

X X X

ज्यों ही शिशु का मुख लगता बस -

फूटी पड़ती शत धाराएँ ,

एक दिव्य आनन्द बिखरता,

खंडित होती सब काराएँ ।

भीतर से देने की तड़पन,

बाहर से पाने की थिरकन,

द्वन्द्वातीत समर्पण में बस

खो जाती है माँ की धड़कन ।

शिशु का लालन, शिशु का पालन,  
 शिशु से सुनना तुतली बातें ।  
 लगा उसे वक्ष स्थल से  
 करना सौ चुम्बन की बरसातें ।  
 इस सुख से नर वंचित रहकर  
 चौसठ तीर्थ किया करता है  
 और मुक्ति के चक्कर में वह  
 जीवन व्यर्थ जिया करता है ।”<sup>19</sup>

अर्थात् कवि ने मातृत्व की वंदना करते हुए उसे पुरुष से भी अधिक ऊँचा स्थान दिया है । कवि के मतानुसार मातृत्व धारण करने से पूर्व गर्भवती स्त्री को मातृत्व का प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए । कवि ने ‘उत्तर रामायण’ में वाल्मीकि द्वारा गर्भवती सीता को प्रशिक्षण दिलाया है । कवि ने सन्तान पालन के लिए ममता बड़ा ही आवश्यक माना है । कविता की सर्जना की भाँति मातृत्व भी नारी का सबसे बड़ा सृजन है । इसी के कारण नारी पुरुष से भी अभिनन्दनीया बन गई है ।<sup>20</sup> माँ के दिल में इतनी करुणा होती है, कि कोई उसके पास से खाली नहीं लौटता है । कवि के शब्दों में इस तथ्य को देखिए —

“माँ का मन आँसू का आगर  
 माँ का मन करुणा का सागर  
 उसके तट पर रही भला कब —  
 किस प्यासे की खाली गागर ?”<sup>21</sup>

अर्थात् कवि ने माँ के रूप की प्रशंसा कर, भारतीय संस्कृति की गरिमा को और भी बढ़ा दिया है । यहाँ कवि का नारी के प्रति स्वस्थ द्रष्टिकोण पाया जाता है । उनका नारी के प्रति द्रष्टिकोण परंपरागत होते हुए भी वर्तमान संदर्भ में उपादेय और साभिप्राय होने के साथ नूतन भी है । जहाँ तक भारतीय संस्कृति के आदर्शों के प्रति उनका लगाव है, वहाँ उनका नावीन्यपूर्ण द्रष्टिकोण पाठकों को काबराजी की नूतन द्रष्टि के प्रति आकर्षित करता है । उनकी कामना है कि नारी समाज का उपयोगी अंग बने और भारतीय संस्कृति के आदर्श और गरिमा को बनाये रखें । न ही वह संपूर्ण रूप से पुरुषों के अधीन रहे और न ही अत्यंत स्वतंत्र हो । वे नर-नारी दोनों को समान महत्व देने के पक्षधर हैं । यह बात कवि ने ‘परिताप के पाँच क्षण’ द्वारा इस प्रकार रखी है ।

“स्त्री मुखर वीणा सरीखी  
 नर प्रखर संगीत-साधक ।  
 हो मगर दोनों बराबर  
 बह चलेगा गीत मादक ।  
 तार में बल पड़ गए या  
 अँगुलियों में बल नहीं है  
 तो जहर खाकर मरेंगे  
 साथ ही स्वर और साधक ।”<sup>22</sup>

कवि के मतानुसार ममता, प्रेम, करुणा, कर्तव्य परायणता एवं सहानुभूति जैसे उच्चगुण से नारी की महत्ता और भी बढ़ सकती है। नारी इस सृष्टि की अधिष्ठात्री है। अतः जैसी नारी होगी वैसी सृष्टि होगी। साथ ही साथ कवि ने नारी को अपने अधिकारों के प्रति सचेत भी किया है। उनके प्रबन्ध काव्यों में कहीं भी कोई ऐसा स्थल नहीं, जहाँ नारी के प्रति कवि की द्रष्टि में छिछलापन व्यक्त हुआ हो। कवि का वैचारिक धरातल इतना व्यापक है कि उन्होंने अपने प्रबन्ध काव्यों में नारी जीवन के समस्त पहलूओं का सूक्ष्म, वैज्ञानिक और व्यावहारिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है, जिन्हें हम न केवल आधुनिक संदर्भों से प्रासंगिक मान सकते हैं, वरन् वह शाश्वत सत्य है, जो जीवन मूल्यों के प्रति प्रेरणास्त्रोत के रूप में प्रस्तुत होता है। कवि ने जो नारी चरित्र प्रस्तुत किये हैं, वे आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भी हमें प्रेरणा देते हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि आदर्श नारी चरित्रों के चित्रण द्वारा कवि आधुनिक नारी में साहस, दृढ़ता और शक्ति का संचार करना चाहते हैं। आदर्श पतिपरायणा नारी का चित्रण कर कवि ने वर्तमान नारियों को भी यह प्रेरणा दी है कि चाहे भले ही वह अकेली हो, फिर भी यदि उसमें सत्य आचरण और निर्भीकता है, तो कोई दुष्ट उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता। अर्थात् कवि नारी और पुरुष को पुरक मानते हैं। वे नारी का स्वच्छन्द रूप नहीं स्वीकार करते हैं, बल्कि आत्म नियंत्रित रूप स्वीकार करते हैं। वे विद्रोहिणी या अक्रामक नारी पसंद नहीं करते, अपितु मिल बैठकर समाधान करनेवाली स्वीकार करते हैं। वे न नारी को स्वामिनी मानते हैं, न सेविका मानते हैं, वे नारी को सहयोगिनी, सहचारिणी, सहभागिनी और सहधर्मिणी एवं पुरुष की अर्धांगिनी मानते हैं। क्योंकि नारी और पुरुष के परस्पर सहयोग से ही सृष्टि अनवरूद्ध रूप से आगे बढ़ती है।<sup>23</sup>



## 5.4 उपसंहार :

इस प्रकार माता, पत्नी, प्रेयसी, बहन, पुत्री आदि रूप में काबराजी ने परंपरागत नारी के रूप का चित्रण किया है। नारी का विद्रोही रूप दिखाकर कवि ने नारी शक्ति-सामर्थ्य का परिचय कराया है। काबराजी के प्रबन्ध काव्यों का अनुशीलन करके हम कह सकते हैं कि कवि का नारी के प्रति मानवतावादी दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। भारतीय संस्कृति के प्रति अपार श्रद्धा होने के कारण उन्होंने अपने काव्यों में नारी को भारतीय संस्कृति के अनुरूप चित्रित किया है। समग्रतया हम कह सकते हैं कि काबराजी की नारी प्रेम, ममता, शील एवं सौंदर्य की प्रतिमूर्ति होते हुए भी त्याग, सहनशीलता, समर्पण आदि भारतीय संस्कृति के उच्चगुणों से संपन्न है।

## 5.5 संदर्भ-सूची

- 1 'उत्तर रामायण' ले. डॉ. किशोर काबरा, षष्ठ सर्ग, पृ. - 211
- 2 'There is not a Hindu woman in the length and breadth of India to whom the story of suffering of sita is not known, and to whom her charactor is not a model to strive after and to imitate' R. C. Dutt, History of civilization in an cient India, Vol. I. P. 143  
(रामायण में नारी, डॉ. अर्चना विश्नोई - पृ. - 43 से उद्धृत)
- 3 नरो वा कुंजरो वा, ले. डॉ. किशोर काबरा, चतुर्थ सर्ग, पृ. - 91/92
- 4 नया ज्ञानोदय नवम्बर - 2006 पृष्ठ - 13
- 5 परिताप के पाँच क्षण, ले. डॉ. किशोर काबरा, पाँचवा क्षण, पृ. - 106
- 6 वही वही, तीसरा क्षण, पृ. - 67
- 7 वही वही, पाँचवा क्षण, पृ. - 105
- 8 नरोवा कुंजरो वा, डॉ. किशोर काबरा, प्रथम सर्ग, पृ. - 18
- 9 उत्तर रामायण, ले. डॉ. किशोर काबरा, तृतीय सर्ग, पृ. - 129
- 10 उत्तर रामायण, ले. डॉ. किशोर काबरा, प्रथम सर्ग, पृ. - 30/31
- 11 परिताप के पाँच क्षण, ले. डॉ. किशोर काबरा, पाँचवा क्षण, पृ. - 108
- 12 वही वही वही वही
- 13 धनुष भंग, ले. डॉ. किशोर काबरा, पहला विस्फोट, पृ. - 7/8
- 14 वही वही वही, पृ. - 3/4
- 15 उत्तर रामायण, ले. किशोर काबरा, द्वितीय सर्ग, पृ. - 91/92
- 16 साक्षात्कार
- 17 परिताप के पाँच क्षण, ले. डॉ. किशोर काबरा, चौथा क्षण, पृ. - 82
- 18 उत्तर रामायण, ले. डॉ. किशोर काबरा, तृतीय सर्ग, पृ. - 128
- 19 उत्तर रामायण, ले. डॉ. किशोर काबरा, चतुर्थ सर्ग, पृ. - 207
- 20 वही वही वही, पृ. - 189
- 21 उत्तर भागवत, वही, द्वितीय सर्ग, पृ. - 70
- 22 परिताप के पाँच क्षण, वही, पाँचवा क्षण, पृ. - 107
- 23 साक्षात्कार

## षष्ठ अध्याय

डॉ. किशोर काबरा के  
प्रबन्ध काव्य के नारी पात्र

## षष्ठ अध्याय : डॉ.किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्य के नारी पात्र

### 6.1 प्रस्तावना

### 6.2 परिताप के पाँच क्षण

#### 6.2.1 मुख्य नारीपात्र

##### 6.2.1.1 अम्बा

###### 6.2.1.1.1 भोली बालिका

###### 6.2.1.1.2 चपल किशोरी

###### 6.2.1.1.3 मुग्धा नवयुवती

###### 6.2.1.1.4 आशंकित अभिसारिका

###### 6.2.1.1.5 विह्वल विरहिणी

###### 6.2.1.1.6 प्रज्ज्वलित विद्रोहिणी

###### 6.2.1.1.7 प्रखर तपस्विनी

###### 6.2.1.1.8 शिखण्डी के रूप में

#### 6.2.2 गौण नारीपात्र

##### 6.2.2.1 मत्स्य गंधा

#### 6.2.3 अन्य नारीपात्र

##### 6.2.3.1 अम्बिका और अम्बालिका

##### 6.2.3.2 द्रौपदी

### 6.3 धनुष - भंग

#### 6.3.1 मुख्य नारीपात्र

##### 6.3.1.1 सीता

###### 6.3.1.1.1 नारी सहज लज्जा

###### 6.3.1.1.2 सीता जनता की आकांक्षाओं का प्रतीक

###### 6.3.1.1.3 कृषि संस्कृति की प्रतीक के रूप में

###### 6.3.1.1.4 विश्व शान्ति एवं निःशस्त्रीकरण की पोषक

## 6.3.2 अन्य नारीपात्र

## 6.3.2.1 सीता की सखियाँ

## 6.4 नरो वा कुंजरो वा

## 6.4.1 मुख्य नारीपात्र

## 6.4.1.1 द्रौपदी

## 6.4.1.1.1 लाचार और बेबस नारी

## 6.4.1.1.2 परस्पर अन्तर्विरोधिता

## 6.4.1.1.2.1 कामुक्ता का विरोध

## 6.4.1.1.2.2 असंतुष्ट वासना का प्रतीक

## 6.4.1.1.3 असफल पत्नी

## 6.4.1.1.4 असुरक्षित नारी

## 6.4.1.1.5 नारी को सम्पत्ति मानने का विरोध

## 6.4.1.1.6 विद्रोहिणी नारी

## 6.4.2 गौण नारीपात्र

## 6.4.2.1 कृपि

## 6.4.2.1.1 अभावग्रस्त नारी जीवन

## 6.4.2.1.2 असफल गृहस्थी

## 6.4.2.1.3 पुत्र वत्सल माँ

## 6.4.3 अन्य नारी पात्र

## 6.4.3.1 घृताची

## 6.4.3.1.1 निर्दयी माता

## 6.4.3.2 जानपदी

## 6.5 उत्तर महाभारत

## 6.5.1 मुख्य नारीपात्र

## 6.5.1.1 द्रौपदी

6.5.1.1.1 सौंदर्य की प्रतिमा

6.5.1.1.2 तेजस्विनी और शक्ति स्वरूपा

6.5.1.1.3 वीरधर्मा क्षत्राणी

6.5.1.1.4 कृष्ण भक्त

6.5.1.1.5 संघर्षमय जीवन

6.5.1.1.6 आदर्श गृहिणी एवं पति परायणा

6.5.1.1.7 सन्धि की प्रबल विरोधी

6.5.1.1.8 पुत्र वत्सल माँ

6.5.1.1.9 कर्तव्य बोध का अनुभव करानेवाली

6.5.2 गौण नारीपात्र

6.5.2.1 सत्य भामा

6.5.2.2 उत्तरा

6.5.3 अन्य नारीपात्र

6.5.3.1 कुंती

6.5.3.2 माद्री

6.5.3.3 कृपि

6.5.3.4 उलूपी, चित्रांगदा और सुभद्रा

6.5.3.5 उर्वशी

6.5.3.6 हिडिम्बा

6.6 उत्तर रामायण

6.6.1 मुख्य नारीपात्र

6.6.1.1 सीता

6.6.1.1.1 बालिका के रूप में

6.6.1.1.2 मुग्धा नायिका

6.6.1.1.3 समर्पित पत्नी

6.6.1.1.4 ममत्व का औदार्य

6.6.1.1.5 आतिथ्य सत्कार की भावना

6.6.1.1.6 त्याग की मूर्ति

6.6.1.1.7 सत्त्व की रक्षा करनेवाली

6.6.1.1.8 वेदना और पीड़ा की प्रतिमा

6.6.2 गौण नारीपात्र

6.6.2.1 सुनयना

6.6.2.1.1 श्रम के प्रति श्रद्धा

6.6.2.1.2 मातृत्व की प्यास

6.6.2.2 मंदोदरी

6.6.2.3 कुकुआ

6.6.3 अन्य नारीपात्र

6.6.3.1 शूर्पनखा

6.6.3.2 त्रिजटा

6.6.3.3 गौतमी

6.6.3.4 अनसूया

6.6.3.5 उर्मिला

6.6.3.6 शबरी

6.6.3.7 शान्ता

6.6.3.8 कैकसी

6.6.3.9 कल्याणी

6.6.3.10 कौशल्या, सुमित्रा और कैकयी

6.6.3.11 मंथरा

6.6.3.12 मांडवी और श्रुतकीर्ति

6.6.3.13 धोबीन

## 6.7 उत्तर भागवत

### 6.7.1 मुख्य नारीपात्र

#### 6.7.1.1 राधा

6.7.1.1.1 भोली-भाली बालिका

6.7.1.1.2 किशोरी रूप में राधा

6.7.1.1.3 कृष्ण की जीवन शक्ति

6.7.1.1.4 कृष्ण के प्रति प्रेम समर्पण :

6.7.1.1.4.1 निष्काम प्रेम योगीनी

6.7.1.1.4.2 निश्छल प्रेम की जलधारा

6.7.1.1.5 राधा का भविष्य दर्शन

6.7.1.1.6 कृष्ण के पथ की बाधिका नहीं

6.7.1.1.7 भक्ति की चरम सीमा

6.7.1.1.8 गोपियों की प्यारी

### 6.7.2 गौण नारीपात्र

#### 6.7.2.1 यशोदा

6.7.2.1.1 अपार मातृत्व

#### 6.7.2.2 देवकी

6.7.2.2.1 देवकी का यौवन

6.7.2.2.2 दर्द से सभर ममता

#### 6.7.2.3 द्रौपदी

6.7.2.3.1 सहिष्णुता

6.7.2.3.2 आक्रोश

6.7.2.3.3 गृहिणी के रूप में

#### 6.7.2.4 रुक्मिणी

6.7.2.4.1 रूप, शील, गुण और प्रतिभा युक्त राजकुमारी



6.7.2.4.2 चिन्तन चारुता

6.7.2.4.3 समय सूचकता

6.7.3 अन्य नारीपात्र

6.7.3.1 विदुरानी

6.7.3.1.1 भक्ति , भावुक्ता एवं तन्मयता

6.7.3.2 कुब्जा

6.7.3.2.1 बहिर्कुरूपता और अन्तर्शुचिता

6.7.3.3 पूतना

6.7.3.3.1 ममता

6.7.3.3.2 पूतना का अन्तर्द्वन्द्व

6.7.3.3.3 मुमुक्षा

6.7.3.4 रोहीणी

6.7.3.5 रेवती

6.7.3.6 गुरूम्माँ

6.7.3.7 पटरानियाँ

6.7.3.8 कीर्ति

6.7.3.9 गोपियाँ

6.7.3.10 कुंती

6.7.3.11 गांधारी

6.7.3.12 उत्तरा

6.8 उपसंहार

6.9 संदर्भ-सूची

## डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्य के नारी पात्र :

### 6.1 प्रस्तावना :

कथा का प्राण उसका पात्र होता है। पात्र के माध्यम से ही कथा विकसित होती है और उसकी अन्विति पात्र के चरित्र-चित्रण पर निर्भर करती है। पात्र कथा या कथानक के घटक होते हैं। उसके अभाव में न तो घटनाओं की सृष्टि हो सकती है और न ही किसी प्रयोजन की सिद्धि ही संभव है। कथा के सजीव तत्त्व पात्र ही होते हैं और ये पात्र ही घटनाओं को आकार व प्रकार प्रदान करते हैं। इन्हीं के आधार पर जीवन की सही व्याख्या सम्भव है और ये ही कथा के मूलधार होते हैं। अतः बिना पात्र के कथा की सृष्टि असंभव है।

रामायण, महाभारत और श्रीमद् भागवत भारतीय संस्कृति के पोषक ग्रंथ हैं। इनके पात्र समाज और संस्कृति से जुड़े हुए हैं। चाहे कोई भी प्रबन्ध काव्य हो, पात्रों की सृष्टि अपने युग के अनुकूल होती है। पात्र युगबोध का प्रतिनिधि होता है। प्रमुख तौर से मुख्य पात्र। जिस युग की जैसी चेतना होगी, उस युग का पात्र भी तदनुरूप चरित्र ग्रहण करेगा। प्रत्येक रचनाकार पात्रों के माध्यम से अपने विचार, भाव और लक्ष्य को प्रकट करता है। एक ही पात्र अनेक रचनाकारों के यहाँ भिन्न रूप ग्रहण कर लेता है। प्रबन्ध काव्य की कथा चाहे ऐतिहासिक हो या पौराणिक, चरित्र अपने युगानुरूप अलग-अलग स्वरूप ग्रहण करते हुए दिखायी पड़ते हैं। पात्रों का वर्गीकरण अलग-अलग विद्वान अलग-अलग दृष्टिकोण से करते हैं। प्रायः रचनाओं में दो तरह के पात्र होते हैं - पुरुष पात्र और नारी पात्र। यहाँ हमारा प्रयोजन 'डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्य के नारी पात्र' से है। अतः हम यहाँ उनके प्रबन्ध काव्यों के नारीपात्रों का ही विश्लेषण करेंगे।

डॉ. किशोर काबरा के निम्नांकित छः प्रबन्ध काव्य हैं, जिसके नारी पात्रों का हम विशद विश्लेषण करेंगे।

- (1) परिताप के पाँच क्षण
- (2) धनुष-भंग
- (3) नरो वा कुंजरो वा
- (4) उत्तर महाभारत
- (5) उत्तर रामायण
- (6) उत्तर भागवत

## 6.2 परिताप के पाँच क्षण :

‘परिताप के पाँच क्षण’ डॉ. किशोर काबरा का प्रथम खण्ड काव्य है। इसकी कथा महाभारत की कथा पर आधारित है। इस काव्य ग्रंथ के नायक भीष्म एवं नायिका अम्बा हैं। भीष्म एवं अम्बा के जीवन की पूरी कथा को कवि ने पाँच क्षणों में विभाजित किया है।

काशीराज की जिन तीन पुत्रीयों का भीष्म ने अपहरण किया था, अम्बा उसमें से एक है, जिसे किसी भी पुरुष का सहारा नहीं मिलता है और खुद पुरुष बनने के लिए विवश होना पड़ता है। भीष्म के पात्र द्वारा कवि ने मानव के अन्तर्मन की व्यथा का यथार्थ चित्रण किया है। शरशैय्या पर पड़े हुए भीष्म अपने अनेक सवालों के उत्तर ढूँढने का प्रयास करते हैं, किन्तु उसे कोई उत्तर नहीं मिलता है। इच्छा मृत्यु का वरदान प्राप्त करने के बाद भी भीष्म गहन विशाद में पड़े हुए है। वे भगवान श्री कृष्ण से प्रश्न पुछते हैं कि - ‘हे भगवान मेरे प्राण किस मोह में अटके हैं? क्यों बाण शैया पर भी मेरे प्राण देह का त्याग नहीं कर पा रहे हैं? मैंने कौन-सा पाप किया है? जिस का ऐसा फल मैं भुगत रहा हूँ?’ तभी कृष्ण उनके पाप का परिचय कराते हैं।

लगता है कि मानो कवि ने नारी अपमान के प्रश्न को उठाने के लिए ही पुरे काव्य का निर्माण किया हो। यहाँ हमारा तात्पर्य ‘डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्य के नारी पात्र’ से है अतः हम इस खण्डकाव्य के नारी पात्रों का ही विश्लेषण करेंगे।

### 6.2.1 मुख्य नारी पात्र :

#### 6.2.1.1 अम्बा :

अम्बा ‘परिताप के पाँच क्षण’ खण्डकाव्य की नायिका है। मानो कवि ने इस काव्यग्रंथ का प्रकटीकरण ही गुप्तजी की उर्मिला तरह अम्बा जैसी उपेक्षिता नारी को उपर उठाने के लिए ही किया हो। वैसे प्रत्येक नारी नारीत्व से परिपूर्ण होना चाहती है। जीना और जीलाना चाहती है, किन्तु अम्बा एक ऐसी नारी है, जो नारी होते हुए भी नारीत्व का पूर्णतया एहसास नहीं कर पायी। न वह जिन्दगी सुख चैन से जी सकी और न ही वह संतुष्ट होकर मर सकी। वह त्रिकोणात्मक दुत्कार में फँसी हुई प्रतिशोध की ऐसी प्रतिमूर्ति है, जो न भोग्या बन सकी, न त्यक्ता। न वह स्त्री रह सकी और न पुरुष। यह वह नारी है, जो न ही वर प्राप्त कर सकी और न ही बैर ले सकी।

कवि ने इस काव्यग्रंथ में अम्बा को नारी के कई बिम्बों को लेकर अवतरित किया है। वह भोली बालिका, चपल किशोरी, मुग्धा नवयुवती, आशंकित अभिसारिका, समर्पित प्रेयसी, विह्वल

विरहिणी, प्रज्ज्वलित विद्रोहिणी, प्रखर तपस्वीनी के रूप में पूरे खण्डकाव्य पर छायी हुई है। हम यहाँ अम्बा के चरित्र का विस्तार से अंकन करेंगे।

### 6.2.1.1.1 भोली बालिका :

इस खण्डकाव्य के तीसरे सर्ग में अम्बा के भोलेपन को चित्रित किया गया है। उपवन में अनजान शाल्व युवराज को वह प्रथम मुलाकात में ही अपना सर्वस्व अर्पण करके वह हमें उसके भोलेपन का दर्शन कराती है।

अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका तीनों मिलकर गुड़िया के ब्याह रचाती है। उस समय खुद की भी परवाह किये बिना वे तीनों पवन के उन्मत झोंकों से घुमती थी। धरती से गगन तक की सृष्टि को वह गुड़िया की अजीब दुकान समझती थी। यहाँ उसकी निःस्वार्थ बाल्यावस्था का हमें दर्शन होता है। कवि के शब्दों में —

“सभी ने साथ में मिलकर  
रचाए ब्याह गुड़िया के  
चुराई गंध उपवन की, सजाई सेज दुल्हन की  
सुनाएँ गीत सावन के मचाई धूम फागून की।

X    X    X

स्वयं से बेखबर हम घूमते सागर-तरंगों से  
पवन के मत्त झोंकों से धनुष के सात रंगों से

X    X    X

धरती से गगन तक सृष्टि  
गुड़िया की अजीब दुकान ॥”<sup>1</sup>

### 6.2.1.1.2 चपल किशोरी :

प्रस्तुत काव्यग्रंथ में अम्बा एक चपल किशोरी के रूप में भी हमारे सामने प्रस्तुत होती है। किशोरावस्था के दौरान जो शारीरिक परिवर्तन होता है, उसे वह अपनी चपलता से पहचान लेती है। जब उद्यान में वह शाल्व युवराज से मिलती है, तब शाल्व युवराज द्वारा पुछे गये सारे प्रश्नों के उत्तर वह बड़ी ही चपलता से देती है। देखिए —

“प्रश्न मेरे सब चुराए,

दिल चूरा सपने चुराए ।  
 और बनकर ठीठ तुमने  
 शब्द जिह्वा के चुराए  
 अम्बा नाम मेरा  
 जानते हो?  
 कन्यका हूँ श्रेष्ठ काशीराज की!  
 व्यंग्यवाणी समझाती हूँ  
 शाल्व के युवराज की ।”<sup>2</sup>

इस प्रकार किशोरी सहज कुशलता, तत्परता एवं चपलता भी उसमें पायी जाती है ।

### 6.2.1.1.3 मुग्धा नवयुवती :

उपवन में अम्बा एक मुग्धा नवयुवती के रूप में हमारे सामने उभर आती है । वह मुग्ध बनकर अपने सारे तन को देखा करती है और उसका नखशीख वर्णन भी करती है । खुद उसीके शब्दों में —

“कानों के सिरो पर बन गई आरक्त लज्जा की ललाई,  
 आँख के नभ कोर को में बूँद बनकर छलछलाई ।

बरसात -

गाल-ओठों पर छिड़क शबनम गुलाबी

कंठ को दे बाँसुरी के प्राण

नीचे जो ढली तो

युगल कुंभों में अटककर रह गई ।

X    X    X

पुष्ट जंधाएँ मनोहर पिंडलियाँ

पंखुरियों से पैर, कैसर अँगुलियाँ,

X    X    X

और क्यों-ज्यों बढ़ चली मुझ पर वयस की धूप,

प्रात मानो दे गया मुजको कमल का रूप ।

और सन्ध्या से मिली उजली प्रणय की धार,  
 तारिका ने भी दिया मोती जड़ा उपहार ।  
 रातरानी से मिली मादक मदिर-सी गंध ।  
 निर्झरों से गीत-गुंजन, वल्लरी से बंध ।  
 कुछ हुआ ऐसा कि कुछ कहते नहीं बनता ।  
 भार था ऐसा कि कुछ सहते नहीं बनता ।  
 द्वार करती बंद  
 भीतर से स्वयं को थामने  
 रोज घण्टों देखती मैं आईने के सामने ।”<sup>3</sup>

वह अपने सौंदर्य पर मुग्ध होकर सोचती है -

“आह,  
 क्या यह मैं स्वयं हूँ या किसी का बिम्ब है?  
 उर्वशी या मेनका का जागता प्रतिबिम्ब है?

X      X      X

मुझे क्या हो गया है,  
 कह नहीं सकती,  
 मगर कुछ हो गया ऐसा  
 जिसे मैं सह नहीं सकती ।”<sup>4</sup>

उद्यान में उन्मुक्त रूप से घुमती हुई अम्बा के रूप सौंदर्य से मोहित होकर शाल्व युवराज उसे प्रश्न पुछता है, तब अम्बा मुग्ध होकर उसके प्रश्नों का उत्तर देती हुई कहती है -

“प्रणय क्या केवल मात्र पदार्थ  
 भीख में जिसको माँगा जाय?  
 प्रणय क्या उत्तरीय का छोर  
 स्कंध पर जिसको टांगा जाय?”<sup>5</sup>

अम्बा के मतानुसार प्रणय की प्रथम भूमि विश्वास और अंतिम क्षण अद्वैत है। शाल्व युवराज से हुआ वार्तालाप उसकी मुग्धावस्था का परिचायक है। वैसे अजनबी और अनजान शाल्वराज के

परिणय को प्रथम क्षण में ही स्वीकार कर लेना और उनका इंतजार करके विरहाग्नि में जलना ही उसकी मुग्धावस्था है।

#### 6.2.1.1.4 आशंकित अभिसारिका :

अम्बा का यह रूप देखकर पाठकों के मन में भी उसके प्रति करुणा का भाव जाग उठता है। इस अवस्था में उसकी दशा त्रिशंकु जैसी हो जाती है। अम्बा अपना सर्वस्व शाल्व युवराज को समर्पित कर देती है और उसे अपना पति मान लेती है। युवराज शाल्व के चले जाने के बाद हरक्षण उसके विरह की आग में झुरती है। भीष्म जब उसका अपहरण करते हैं, तब वह उसे स्पष्ट शब्दों में कह देती हैं —

“सुन लो भीष्म,  
मैं इस अपहरण को स्पष्ट अस्वीकार करती हूँ।  
मैं यहाँ से जा रही हूँ शाल्व के अधिवास,  
उस नवयुवक परदेशी पिया के पास  
जिसको मैं हृदय से प्यार करती हूँ ॥”<sup>6</sup>

यहाँ उसके प्रेयसी रूप की झलक मिलती है। अम्बा एवं शाल्व युवराज की प्रणयकथा सुनकर भीष्म ने अम्बा को शाल्वराजा के पास भेजा, किन्तु भ्रमरवृत्ति के शाल्व ने उसे ‘भीष्म का उच्छिष्ट’ कहकर ठुकरा दिया और स्पष्ट रूप से अम्बा का स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। वह कहता है —

“छीनकर ले जाय कोई व्यक्ति  
भोग्या भामिनी को,  
लौटकर आ जाय वह स्वयमेव,  
पर उस कामिनी को  
कौन भोगेगा  
पुरुष संसार में  
तुम ही कहो?”<sup>7</sup>

इतना ही नहीं शाल्व अम्बा का घोर अपमान भी करता है। वह कहता है -

“मूँह दिखाने आ गई क्यों तू अरी,

निर्लज्ज नारी,  
लाज मुझको आ रही है  
देखकर तुमको कुँआरी।”<sup>8</sup>

इस प्रकार शाल्व युवराज अम्बा के प्रणय को ठुकरा देता है। भीष्म तो अपनी प्रतिज्ञाओं के दायरे में आबद्ध थे, अतः वे उसे नहीं अपना सके। तभी बेबस और विवश होकर वह विचित्रवीर्य के पास जाती है, पर वह भी अपने को अशक्त बताकर अम्बा को नहीं स्वीकारता है। वरन् उसको बड़ा ही अपमानित करता है। वह कहता है —

“दूर हटजा वासना की क्रीत दासी!  
तू रही तो जहर खाकर मैं मरूँगा  
या  
लगा दूँगा कभी स्वयमेव फाँसी।  
मुझ सरीखे अल्पभोगी संयमी को  
नारीयाँ दो ही बहुत है,  
तीसरी को क्या करूँगा?  
तू दशानन की बहन-सी  
माँगती है प्रणय की भिक्षा  
कभी किससे,  
कभी किससे,  
कभी किससे!”<sup>9</sup>

इस प्रकार प्रणय के त्रिकोणात्मक दुत्कार से अम्बा का पुरा जीवन ही दुःखमय बन जाता है।

#### 6.2.1.1.5 विह्वल विरहिणी :

अम्बा शाल्वकुमार के प्रणय सूत्र में बँधने के बाद उसके वियोग में तड़पती रहती है। वह हरपल और हरक्षण अपने प्रिय को याद करती है। भयंकर काली रातों में गरजते हुए बादलों में सन्-सन् करते पवनों में भी वह अपने प्रिय का स्मरण करती रहती है। उसे प्रिय के बिना अपनी जीवनरूपी वृक्ष की डाल भी सुनी-सी लगती है। इस वियोग की व्यथा को न तो वह किसी से कह सकती है और न ही सह सकती है। परदेश गए प्रियतम को याद करते-करते उसकी वरमाल भी



सुख गई है। कवि के शब्दों में उसकी विरह व्यथा देखिए —

“कटेगी रात करवट में,  
कटेगा दिन अँगारों में।  
अरे माझी, हमारी नाव  
ढूँधी है कगारों में।

X      X      X

हाय, कब तक सी सक्कूँगी प्यार से  
घाव अपने  
बिजलियों के तार से?  
रात काली चल रहा सन्-सन् पवन  
गरजते बादल  
सिसकता है गगन।  
थामकर अपना कलेजा चुप रहूँ  
पीर हा,  
कैसे कहूँ, किससे कहूँ।  
X      X      X  
हाय परदेशी, देकर पीर  
लगे तुम किस नदिया के तीर?”<sup>10</sup>

इस प्रकार शाल्व के जाने के बाद प्रिय विरह की व्यथा इस विह्वल विरहिणी को व्यथित कर देती है। वह प्रतिपल उसकी यादों में खोई रहती है। प्रिय वियोग की यह स्थिति वह न किसी से कह सकती है, और न ही सह सकती है।

#### 6.2.1.1.6 प्रज्जवलित विद्रोहिणी :

अम्बा प्रज्जवलित विद्रोहिणी के रूप में भी हमारे सामने आती है। वैसे नारी को जीवन जीने के लिए अदने पुरुष का ही सही आश्रय तो अवश्य चाहिए ही। किन्तु अम्बा एक ऐसी अभागी औरत है जो चाहकर भी किसी के आश्रय की छाँह तले न जी सकी। शाल्वराज ने जब उसे ‘भीष्म का उच्छिष्ट’ कहकर ठुकरा दिया, तब उनका क्रोधाग्नि भभक उठता है। उनका यह तीखा रोष उनके द्रढ़ चरित्र की प्रतीति कराता है। वह स्वाभिमानपूर्वक शाल्व के द्वार पर थूँककर वापस लौट

आती है। अम्बा का भीष्म के प्रति उतना ही क्रोधावेश अभिव्यक्त हुआ है। वह बड़े ही स्पष्ट शब्दों में भीष्म से कह देती हैं -

“अपहरण मेरा किया निर्लज्ज-सा,  
अब वरण करने में तुम्हें क्यों लाज आती है?  
नारीत्व से ज्यादा नहीं है  
प्रण तुम्हारे कीमती।  
अपनी प्रतिज्ञा के  
कँटीले जंगली रोगी धतूरे को जिलाने के लिए  
तुम  
एक नारी की  
सुनहरी चंदनों मादक मनोहर वाटिका को  
विष पिलाना चाहते हो?”  
एक मुग्धा हंसिनी की  
चपल-सी निर्दोष झीलों के  
नरम मोती चूराकर  
वंश के निर्वश बगुले को  
खिलाना चाहते हो?”<sup>11</sup>

नारी को जीवन जीने के लिए तन-मन की भूख ना सही पर अन्न और वस्त्र का आधार चाहिए। इसीलिए अम्बा अपने जीवन को आकार एवं आधार देने के लिए विचित्रवीर्य के पास आती है किन्तु वह तो उसे बड़े ही कड़े शब्दों से अपमानित करता है। वह कहता है —

“उस शाल्व ने तुझको नहीं रक्खा,  
इसीसे हो रही शंका मुझे  
तुझ पर लगा है दाग कोई प्रणय का  
पिछले प्रहर में।  
मैं तुझे रक्खूँ ?  
अरी ओ कलमूँही निर्लज्ज नारी,  
डूब मर जाकर नदी की धार में

या

जवानी बेच अपनी रूप के बाजार में ।”<sup>12</sup>

नारी दुःख सह सकती है, किन्तु वह कभी अपना अपमान नहीं सह सकती । विचित्रवीर्य के विचित्र वचनों को सुनकर अम्बा बड़ा तीक्ष्ण व्यंग करती है —

“आज ही मैं जान पाई हूँ  
नपुंसक भी  
वचन के वीर होते हैं,  
देखकर लाचार अबला को नजर के सामने  
शेर मिट्टी के  
अकड़ शमशीर होते हैं ।”<sup>13</sup>

अन्त में थककर, हारकर वह भीष्म को अपना हाथ थाम लेने की प्रार्थना करती है । वह केवल उसके चरणों की धूप और छाँव ही माँगती है । वह भीष्म से कहती है -

“भीष्म,  
हाथ मेरा थामकर  
तुमने मुझे रथ में बिठाया था ।  
रूप सी हूँ या नहीं -  
यह देखने के मिस  
प्रकंपित हाथ से  
मेरा जरा घूँघट हटाया था  
आज  
लो मैं आ गई परदे हटाकर सामने  
सब ओर से दुत्कार खाकर ।  
मैं नहीं कहती -  
मुझे अर्ध्दाङ्गीनी अपनी बनालो  
लग्न - मण्डप के निरे पाखंड का आधार पाकर ।  
मैं नहीं कहती -  
मुझे तुम शहर दे दो, गाँव दे दो ।

बस,  
 मुझे अपने चरण की  
 धूप दे दो, छौंव दे दो ।  
 जीत दे दो,  
 हार दे दो,  
 बस मुझे, आकार दे दो ।  
 एक नारी को  
 पुरुष का मौन हाहाकार दे दो ।”<sup>14</sup>

किन्तु वचन से आबद्ध भीष्म विवश और लाचार होकर उनका अस्वीकार कर देते हैं। तभी अम्बा एक सर्पिणी की भाँति फूफकार कर उठती है। उनका क्रोध ज्वालामुखी की तरह भभक उठता है। उनकी प्रतिशोध की भावना प्रज्वलित हो उठती है और वह चीखकर, चिल्लाकर कह उठती है।

“भीष्म,  
 तुमने कर दिया बरबाद मेरी जिन्दगी को,  
 मैं तुम्हारी मृत्यु को बरबाद कर दूँगी ।  
 चरण बनना चाहती थी  
 वरण करना चाहती थी  
 किन्तु अब वारण बनूँगी,  
 बच नहीं सकते अरे गांगेय, मुझसे!  
 मैं तुम्हारी मृत्यु का कारण बनूँगी ।  
 भीष्म, मैं प्रतिशोध लूँगी,  
 मैं प्रतिशोध लूँगी,  
 प्रतिशोध लूँगी,  
 लूँगी!”<sup>15</sup>

उसके तप्त हृदय से अहर्निश एक ही दावा प्रज्वलित रहता है कि मुझे भीष्म से प्रतिशोध लेना है। वह चाहती है कि अपने क्रोध की जलराशि से उसके उदर के आँतों को जलाकर क्षार कर दे। वह एक विप्लव मचा देना चाहती है। खुद कवि ने इस प्रज्वलित विद्रोहिणी को घायल शेरनी, सर्पिणी,

कालिका, चिण्डिका, भैरवी, भूतिनी, खप्पर धारिणी जैसी उपमा देकर उनके विद्रोह को व्यक्त किया है।

इस प्रकार शाल्व युवराज, विचित्रवीर्य एवं भीष्म तीनों के बीच जब उसकी दशा त्रिशंकु जैसी हो जाती है, तब उसका यह विद्रोहिणी रूप हमारे सामने उभरता है।

अम्बा का व्यक्तित्व इस बात का गवाह है कि 'नारी कुसुम से अधिक कोमल है तो वज्र से अधिक कठोर भी, वह कामिनी है तो कराली भी है। एकबार वह कोई निर्णय ले लेती है तो, कठोर निर्णय, भीष्म प्रतिज्ञा तो फिर काल भी उसे जीत नहीं सकता।' <sup>16</sup>

### 6.2.1.1.7 प्रखर तपस्विनी :

चौथे क्षण में अम्बा का यह रूप मुखरित होता है। जब उसकी स्थिति त्रिशंकु जैसी हो जाती है, तब वह भीष्म से प्रतिशोध लेने के लिए तपस्विनी का रूप धारण करती है। तप के कारण उसका सोने जैसा शरीर झुलसकर ताम्र जैसा कंकाल बन जाता है। अम्बा भीष्म के सामने अपना तपस्विनी रूप प्रकट करते हुए कहती है —

“तप किया मैंने,  
अहा, क्या तप किया है!  
तप्त सोने-सा प्रकाशित तन  
झुलसकर ताम्र का कंकाल बनकर रह गया !  
रह गया सूखा  
सुकोमल रूप का, रस का, सुगंधों का खड़ा हिताल,  
ताल बस पाताल बनकर ढह गया ।  
ढह गए मेरे समुन्नत वक्ष के दिग्पाल,  
पाल बस चौपाल बनकर बह गया ।  
बह गया सब,  
रह गया भूचाल,  
बस वाचाल बनकर रह गया —  
अर्काय नमः,  
अरूणाय नमः,

उग्राय नमः,  
 हां ह्रीं ह्रौं सः सूर्याय नमः  
 सूर्याय नमः ।”<sup>17</sup>

अंबा के ज्वलित तप और त्याग से प्रभावित होकर आदित्य उसे इच्छित वरदान देने के लिए प्रकट होते हैं। भगवान सूर्य अम्बा को वर के रूप में एक वरमाला देते हैं, जिसे लेकर वह परशुराम के पास जाती है। वे माला तो नहीं पहनते हैं, निरा उपदेश ही देते हैं। अंत में वह माला अंबा द्रुपद के दरबार में फेंककर दुबारा घोर तप करने लग जाती है। हिमशिखर पर की हुई सदाशिव की आराधना उन्हीं के शब्दों में देखिए —

“कैसे युग बिताए है  
 सुलगती साधना में,  
 सृष्टि संहारक सदाशिव की अङ्गि आराधना में !  
 ध्यान की चौथी अवस्था में  
 बसी मेरी सुबकती श्वास,  
 हिल गया हिमवान  
 कंपित हो गया शिव का अचल आवास ।”<sup>18</sup>

यानि कि अंबा ने इतनी प्रखर साधना की कि भगवान आशुतोष भी उन्हें वरदान देने के लिए प्रकट होते हैं।

### 6.2.1.1.8 शिखण्डी के रूप में :

अंबा उस नारी का नाम है, जो नर और नारी दोनों की शक्तियों का सम्मिलित रूप है। चौथे क्षण में वह अलग ही रूप लेकर हमारे सामने प्रस्तुत होती है। इस रूप में वैसे तो उसका विद्रोहिणी रूप ही झलकता है ; किन्तु इस रूप में कवि ने - ‘नारी जब चिण्डका बन जाती है, तो कुछ भी करने को सक्षम हो जाती है’ इस बात की प्रतीति कराई है।

सूर्य प्रदत्त वरमाला से अम्बा अपने बैर की आग न बुझा पायी, तो सदाशिव की आराधना के फल स्वरूप आत्मसमर्पण से उसे यह पुरुष तन और नारी मन मिला था।

नारी में प्रतिशोध की भावना प्रबल होती है। चाहे उसके लिए अपनी जान भी कुर्बान न करनी पड़े? पर वह दुश्मन को मात करने के सारे प्रयत्न करती है। अम्बा का शिखण्डी रूप इस बात

की प्रतीती कराता है। वह भीष्म से कहती है —

“सब ने तिरस्कृत ही किया  
मेरी कथा को  
किन्तु  
मेरे दमित मन का क्षुब्ध सर्पाकार  
करवट ले रहा है।  
तुम्हारे प्रश्न का उत्तर तुम्हें देगी वही नारी  
न जिसको भोग्या रखा पूर्व प्रेमी का  
न जिसको तुम स्वयं ही भोग पाए।  
मैं त्रिशंकी - सी बनी  
आजन्म जलती ही रही  
प्रतिशोध के अंगार पर  
तुमने किया  
नारीत्व का जो बुर्जुआ अपमान  
अपने दंभ के, पाखंड के आधार पर।  
ठीक है  
उसका लिया बदला  
शिखंडी रूप में मैंने।”<sup>19</sup>

शिखंडी की आँखों में प्रतिशोध की इतनी तीव्र द्रष्टि थी कि जो भीष्म शस्त्र से भी मर न पाए, वे शिखण्डी की नजर मात्र से मर गए। भीष्म के मरने से पहले वह उसके समक्ष एक प्रश्न रखती है —

“मौत के पहले बता दो -  
क्या मुझे तुम चाहते थे?  
उत्तरायण हो रहा है  
भीष्म बोलो  
क्या मुझे तुम चाहते थे?”<sup>20</sup>

यह प्रश्न भीष्म के समक्ष रखकर शिखण्डी रूप में वह अपने मन को संतुष्ट करने का प्रयास

करती है। भीष्म भी अंत में अपने अंतर्मन की अनुभूतियों को उकेर देते हैं। वे कहते हैं —

“देह अर्जुन के शरों से  
छिद रही थी,  
मर रही थी,  
किन्तु मेरे प्राण तो तेरी नजर पर जी रहे थे।”<sup>21</sup>

इस प्रकार शिखण्डी बनकर अम्बा भीष्म की मृत्यु का कारण बनती है।

अंततः हम कह सकते हैं कि अम्बा के पात्र द्वारा कवि ने नारी अपमान के प्रश्न को बड़ी गहराई से उठाया है। इस प्रबन्ध के द्वारा कवि ने अम्बा के रूप में नारी के चरित्र के विभिन्न रूपों को उभारने की कोशिश की है। नारी पत्नी के रूप में पूर्ण, माँ के रूप में परिपूर्ण और जगत के हित में संपूर्ण बनती है, किन्तु अगर स्त्री की मन की इच्छा पूरी नहीं होती है, तो वह अक्रामक हो जाती है और जिससे चाहती है, उससे बैर लेने लगती है। चाहे उसके लिए आत्मसमर्पण ही क्यों न करना पड़े।

## 6.2.2 गौण नारी पात्र :

### 6.2.2.1 मत्स्यगंधा :

मत्स्यगंधा सम्राट शान्तनु की पत्नी और भीष्म की माँ है, जो द्वितीय क्षण में हमारे समक्ष प्रस्तुत होती है। मत्स्यगंधा के पात्र द्वारा कवि ने स्त्री सहज प्रेम का प्रदर्शन किया है। अपनी वासना बुझाने के लिए वह वृद्ध पति का सहारा लेती है। रानी कैकेयी की तरह उनके मातृत्व पर भी पुत्र के प्रति अंधा प्रेम छा जाता है और अपने पुत्र के खातिर पुत्र से याचना करती है। मत्स्यगंधा भीष्म के समक्ष कहती है —

“तुम्हारी मत्स्यगंधा माँ  
बनी वात्सल्य की करुणार्द्र धड़कन  
और आँसू की तरल हिचकी  
पसारे दैन्य का आँचल  
स्वयं के पुत्र के खातिर  
स्वयं के पुत्र से कुछ माँगने आई  
विवश होकर।”<sup>22</sup>



मत्स्यगंधा के अंधे पुत्रप्रेम के कारण भीष्म का पुरा जीवन ही बदल जाता है। न चाहते हुए भी उसे प्रतिज्ञा करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। जिसे मत्स्यगंधा द्वारा किये गये व्यंग्य के द्वारा एक मनोवैज्ञानिक सत्य को स्पष्ट किया है, जिसे भीष्म पूरे जीवनभर झेलते रहे। देखिए —

“अस्त होते सूर्य के पीताम सोने में।  
 वृद्ध जर्जर वासनोन्मुख प्रणय की  
 उस बहकती उत्ताल बरसाती नदी को  
 मार्ग देने के लिए  
 तुमने स्वयं ही  
 स्वप्नमय सौदामिनी की  
 भंग की सारी कलाएँ,  
 और मन मंदाकिनी के मुखर मुख पर  
 शील की देकर शिलाएँ  
 तुम रुके हिम शैल - से  
 प्रण के ठिठुरते पार्श्व में।”<sup>23</sup>

भीष्म के प्रतिज्ञा करने के बाद मत्स्यगंधा प्रायश्चित भी करती है। स्वयं मत्स्यगंधा की उक्ति द्रष्टव्य है —

“होती माँ तुम्हारी उन क्षणों में  
 यदि नियति की भूल से  
 तो तुम्हारे प्रण कभी उगते नहीं  
 उद्यान में वनफूल - से  
 हाय,  
 गंगा की लहर के साथ जिसने नाचना सिखा —  
 उसीने पैर में गांगेय के  
 वैराग्य की बेड़ी लगा दी।  
 उस समय मैं माँ नहीं  
 सम्राट शान्तनु की छिपी दुर्वासना थी।  
 उस समय मैं माँ नहीं,

साम्राज्य-लोलुप बाप की दुर्भावना थी ।  
 ओह,  
 उस दुर्वासना - दुर्भावना ने  
 दो विषैले बीज बोए  
 पितृप्रेमी पुत्र के निष्पाप रम्योद्यान में ।”<sup>24</sup>

वात्सल्य से वंचित भीष्म मत्स्यगंधा के विलाप को नहीं देख सकते हैं। इसीलिए ही वे प्रतिज्ञा में आबद्ध हो जाते हैं। मत्स्यगंधा को हरपल अपने वंश की चिंता सताती है। वह अपने बेटे को राज्य भी नहीं दे सकती है और उनसे पुत्र की अपेक्षा भी नहीं रख सकती है। उसे अपने कुरुवंश का अंत नज़र आता है। इसीलिए वह बड़ा दुःख व्यक्त करती है। भीष्म के सामने वह अपने को अभागी बताती है। उसके करुण विलाप के कारण भीष्म प्रतिज्ञा करते हैं।

इस प्रकार मत्स्यगंधा के पात्र द्वारा कवि ने वात्सल्य का एक नया स्वरूप हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

### 6.2.3 अन्य नारी पात्र :

‘परिताप के पाँच क्षण’में अन्य दो पात्र हैं अम्बिका और अम्बालिका जिसके माध्यम से कथा का प्रवाह प्रवाहित रहता है।

#### 6.2.3.1 अम्बिका और अम्बालिका :

काशीराज की तीन पुत्रियाँ अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका का अपहरण करके भीष्म ने उसे अपने निर्वीर्य अनुज विचित्रवीर्य को भेंट किया था, किन्तु अम्बा उस अपहरण का अस्वीकार करके अपने प्रियतम शल्व के पास चली जाती है और अम्बिका और अम्बालिका दोनों की विचित्रवीर्य के साथ शादी होती है। इन दोनों पात्रों का सांकेतिक उल्लेख मात्र है। अम्बा की जीवनगाथा प्रस्तुत करने में ये पात्र सहायक होते हैं। अम्बा शरशैय्या पर पड़े भीष्म के सामने अपने जीवन की करुण कहानी व्यक्त करती हुई तीनों बहनों के अपहरण की कथा याद दिलाते हुए कहती हैं -

“मैं अकेली ही नहीं थी बालिका,  
 और दो बहने मेरी थी -  
 अम्बिका,  
 अम्बालिका ।”<sup>25</sup>

अम्बा अपनी करूण कथा कहती हुई, भीष्म पर व्यंगबाण कसते हुए, अपनी बहनों के प्रति सहानुभूति प्रकट करती हुई भीष्म से कहती है —

“तुमने  
अम्बिका अम्बालिका के बाल स्वप्नों का  
अरे, निःस्वत्व भाई की  
विकल पुत्रैषणा की वेदिका पर  
हनन कर डाला।”<sup>26</sup>

अर्थात् अम्बा कहती है कि भीष्म ने अपने निःस्वत्व एवं निर्वीर्य भाई की पुत्रैषणा हेतु अम्बिका और अम्बालिका दोनों का जीवन ही खत्म कर दिया।

इस प्रकार भीष्म के कारण अम्बिका और अम्बालिका दोनों बहनों को निर्वीर्य एवं स्वत्वहीन पति को झेलने के लिए विवश होना पड़ता है। इन दोनों पात्रों के द्वारा कवि ने नारी की विवशता को प्रकट किया है।

### 6.2.3.2 द्रौपदी :

कवि श्री काबराजी ने प्रस्तुत प्रबन्ध के ‘पाँचवे क्षण’में भीष्म जब अर्जुन के समक्ष परिताप करते हैं, तब द्रौपदी के पात्र का केवल नामोल्लेख किया है। वे अर्जुन के समक्ष अपने विगलित मन की व्यथा को व्यक्त करते हुए कहते हैं —

“पार्थ,  
मैंने पाप हाथों से नहीं  
हर वक्त आँखों से किया है।  
मैं भरे दरबार में  
आँखें गड़ाकर नग्न होती द्रौपदी को  
देखने में मग्न था।  
बस, सोचना था —  
वस्त्र उतरेँ,  
वस्त्र उतरेँ,

वस्त्र उतरें,  
 एक ही चिन्ता मुझे थी —  
 वस्त्र इतने हट गए  
 पर नग्न होती क्यों नहीं यह द्रौपदी?  
 वश चला होता  
 स्वयं ही जा पहुँचता चीर हरने,  
 यदि नहीं घनश्याम आते  
 द्रौपदी की पीर हरने ।”<sup>27</sup>

### 6.3 धनुष - भंग :

डॉ. किशोर काबरा कृत ‘धनुष-भंग’ रामायण कथा पर आधारित काव्यग्रंथ है। किन्तु फिर भी इनके पात्र परम्परागत चरित्रों से बिल्कुल अलग है। इसकी कथा भले ही पौराणिक है, किन्तु आधुनिक कवि काबराजी ने उसमें नये ही अर्थ एवं भाव भर दिये हैं। इस काव्यग्रंथ की पात्र सृष्टि के अंतर्गत नारी पात्र के रूप में अकेली सीता ही विद्यमान है, जो ग्रंथ में आदि से लेकर अंत तक कथासूत्र को संजोए हुए है। राम के द्वारा धनुष भंग करने पर जयमाला पहनाने के लिए वह आगे बढ़ती है, पर माला ऊँची करके ठिठक जाती है और उसी क्षण उसकी पलकों पर जनकराजा के पूर्व पुरुष नीमी आ बैठते हैं और इक्कीस पीढ़ियों की कथा कहते हैं। यहाँ सीता को धरती एवं प्रकृति से जुड़े द्रष्टव्यों और गाँव के व्यक्तियों की शांति, सन्तोष एवं सहजता की प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है।<sup>28</sup> शेष नारी पात्रों में उनकी सखियों का उल्लेख मात्र है।

#### 6.3.1 मुख्य नारी पात्र :

##### 6.3.1.1 सीता :

प्रस्तुत काव्य संग्रह का प्रमुख नारीपात्र सीता है, जिसे इस प्रबन्ध काव्य की नायिका के अलंकरण से अलंकृत करना सर्वथा समीचीन है। काव्य में सीता परम्परागत आदर्श रूप में प्रस्तुत न होकर एक प्रतीक के रूप में एक विचारधारा के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत हुई है। काव्य का शुभारंभ ही सीता के पात्र से होता है। उनकी चारित्रिक विशेषताएँ कुछ इस प्रकार हैं -

##### 6.3.1.1.1 नारी सहज लज्जा :

कविवर किशोर काबरा भारतीय संस्कृति के प्रेमी है और भारतीय जीवन में यहाँ के जीवनमूल्यों

को बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। भारतीय संस्कृति में नारी सहज लज्जा को प्राधान्य दिया गया है। अतः काव्य नायिका सीता, शील, सौंदर्य एवं लज्जा की प्रतिमूर्ति है। स्वयंवर के समय धनुष-भंग होने के बाद जब श्रीराम के गले में जयमाला पहनाने के लिए आगे बढ़ती है, तब उनकी द्रष्टि झुकी हुई है और वह जयमाला हाथ में लिए हुए ही स्तम्भित - सी रहती है। तुलसीदासजी की सीता भी बड़ी लज्जाशील है। वह भी धनुष-भंग हो जाने के बाद श्रीराम के गले में जयमाला पहनाने से पूर्व राम को देखना चाहती है, किन्तु गुरुजनों, स्वजनों एवं परिवारजनों के बीच वह लज्जा के मारे देख नहीं सकती है। तब झुकी हुई द्रष्टि से ही वह अपने कंकण के नंग की परछाई में राम के सौन्दर्य को देख लेती है। हमारी सीता में भी कवि ने नारी सहज इस लज्जाशीलता के गुण को बड़ी ही सहजता से चित्रित किया है। उसका क्षण-क्षण रूकना और उन्मीलित आँखों में ध्यानमग्न हो जाना ही उसके चरित्र की उत्तम विशिष्टता है। जानकी के चरित्र के इस गुण से सभी आकृष्ट हैं। यहाँ भारतीय जीवनद्रष्टि, संस्कृति एवं संस्कार के प्रति कवि की आस्था दृढ़ होती हुई दिखाई देती है। कवि के शब्दों में —

“रुक गई जयमाल ठिठके स्वप्न - सी,  
अंगुलियों में कुछ थमा-सा रह गया।  
झुक गई दो डालियाँ फूलों भरी,  
आँख का आनन्द गलकर थरथराया  
और सहसा बह गया।  
पुतलियों को हो गया रोमांच,  
क्षण की उफनती जलधार  
हिम-सी जमगई सब ओर से।”<sup>29</sup>

सीता भारतीय नारी की प्रतीक है। इसीलिए कवि का उनमें इस गुण का चित्रण करना सहज एवं स्वाभाविक ही है। वह पाश्चात्य रमणियों की तरह स्वयंवर में आकर सीधे ही श्रीराम के गले में जयमाला नहीं पहना देती है। कवि लिखते हैं —

“सोचती सखियाँ  
कि शायद  
लाज की मारी सिया जयमाल पहनाती नहीं है।”<sup>30</sup>

### 6.3.1.1.2 सीता जनता की आकांक्षाओं का प्रतीक :

सीता खेत और खलिहानों की प्रतिच्छाया है, सीता हल - बैल और हँसिए - खुरपी का प्रतिबिम्ब है। सीता श्रम - बिन्दुओं के मुखर प्राणों से सनी हुई साकार प्रतिमा है। सीता गाँव - गोठ एवं गली - चौरे की साँसों में सोई हुई शक्ति है। गाय बछड़े की घंटियों के टिन-टिन में सीता की गुनगुनाहट छिपी है। थरथराते छंद जैसी झील की गहराइयों और ओस कण का रोमांच ओढ़े दूब की दुल्हनों में सीता के प्राण बसते हैं। गाँव के हर द्रश्य के साथ सीता जुड़ी है। बड़े सबरे जब कुक्कुट अपना स्वर प्रभात में घोलता है, जब कौए का सोया-सिमटा काँव जाग उठता है, तब गाँव का जनजीवन रात की दोहर फेंककर इस नए सबरे के साथ जुड़ जाता है। घर-घर बजती दूध की धार, सास-वधू के मिले-जुले स्वरों के साथ चक्कियों की घर-घर, पनघट की राह पर पायल की रुनझुन, चूड़ी की खन-खन, खपरैलों से निकलता कड़वा धुआँ, खदबद करती हुई जौ-मकई की राब, रंभाते-डंकराते-हुँकारते पशुओं को गली-गोठ से लेकर निकलनेवाले ग्वाले, माटी की सौंधी गंध से जुड़ने के लिए हल-बैलों को लेकर खेत की ओर जानेवाले किसान, दोपहरी के लिए निकलनेवाले ग्वाले, आम की छाया में बैठे महरा और महरिया ये सभी सीता के अलग-अलग चित्र हैं। प्रत्येक चित्र में लोकजीवन की आकांक्षाएँ छिपी हुई हैं। कवि के शब्दों में —

“तू  
खेत में, खलिहान में खोई हुई।  
गाय-बछड़ों के गली की घंटियों में  
गुनगुनाती,  
दूर पेड़ों पर चढ़ी  
प्रातः किरण-सी कुनमुनाती।  
चोंच खोले  
चहचहाते काँपते खगवृन्द जैसी,  
झील की गहराइयों में  
थरथराते छंद जैसी।  
ओस का रोमांच ओढ़े  
दूब-सी दुल्हन सयानी,

X X X

जानकी बेटी!  
 गाँव के हर द्रश्य में,  
 हर चित्र में,  
 हर बिम्ब में, प्रतिबिम्ब में  
 तेरा हृदय ही धड़कता है।”<sup>31</sup>

### 6.3.1.1.3 कृषि संस्कृति की प्रतीक के रूप में :

कविने सीता के पात्र द्वारा भारत की कृषिप्रधान संस्कृति को पूरा स्वर प्रदान किया है। सीता हल की पुत्री है अर्थात् मिट्टी एवं कृषि से उनका अखूट और अधिक लगाव है। कृषि और कृषि संस्कृति उसके प्राणों में बसी हुई है। वह खेत और खलिहानों की प्रतिच्छाया है। हल, बैल और हँसिये - खुरपी का प्रतिबिम्ब है, श्रम बिन्दुओं के मुखर प्राणों से सनी हुई साकार प्रतिमा है। वह जनता की साँसों में सोई हुई शक्ति है। स्वयं निमि अपनी इस पुत्री की प्रशस्ति में बोलते हैं कि -

“जानकी!  
 तू इस धरा की  
 मौन माटी से बनी,  
 श्रम-बिन्दुओं के मुखर प्राणों से सनी  
 साकार प्रतिमा है।  
 तू  
 गाँव की हर साँस में सोई हुई,  
 तू  
 खेत में, खलिहान में खोई हुई।”<sup>32</sup>

निमि को पूरा विश्वास है कि सीता ही इक्कीस पीढ़ियों से चल रहे शास्त्र, शस्त्र और श्रम के संघर्ष को मिटा सकेगी और शास्त्र और शस्त्र के बीच के संघर्ष को श्रम से ही मिटाया जा सकता है। लालची ब्रह्मतेज और उदण्ड क्षात्रतेज के संत्रास से मुक्ति पाने के लिए धनुष का भंग होना आवश्यक है। धनुष मोह और जड़ता का प्रतीक है। उसका टूटना शस्त्र का पराजय है। भूमिजा सीता जनजीवन की धड़कन है। अर्थात् कृषि सभ्यता और संस्कृति की प्रतीक सीता का शस्त्र के सामने विजय होता है। सीता स्वयंवर में धनुष-भंग हुआ जो कुल परम्परा से उसके यहाँ पूजा जाता था। पलकों पर बैठे हुए निमि का उसी दिन उद्धार हुआ। उसने हल की बेटी सीता से कहा कि आज

उसके सारे प्रश्न हल हुए हैं। कवि ने पुरे विश्वास के साथ बताया है कि जब भी धनुष (शस्त्र) की पूजा होती है, जब धनुष पुराना हो जाता है, तब यही प्रतिक्षा रहती है कि यह टूटे और कृषि संस्कृति की शस्त्र पर विजय हो ! कवि ने खुद कहा है —

“जब भी होंगे धनुष पुराने  
कोई सीता उभरेगी जयमाला लेकर  
फिर टूटेंगे धनुष  
जीत हरदम होगी  
हल-बैलों और किसानों की।  
खेत और खलिहानों की।  
शास्त्र, शस्त्र श्रम का यह शाश्वत युद्ध  
आज की बात नहीं है  
हर युग में इसका होता रहता आवर्तन।  
पहले शास्त्र जीतता है,  
फिर शस्त्र,  
अन्त में श्रम का ही होता अभिनन्दन।”<sup>33</sup>

कवि ने युद्ध प्रधान विश्व में कृषि और श्रम की महत्ता को स्थापित किया है एवं अस्त्र-शस्त्र को मूल्यहीन बताया है। शास्त्र और शस्त्र की भयावह टक्कर के प्रतीक गुरु वशिष्ठ और सीता के पूर्वज निमि जब समाज कल्याण की भावनापूर्ति में परस्पर अभिशाप देकर अवरोध बने तब मानवजाति के हित और कल्याण की एकमात्र आशा है - कृषि सभ्यता और संस्कृति। सीता इसी सभ्यता का प्रतिनिधित्व करती है। कृषि सभ्यता के साथ जुड़े हुए श्रम के माध्यम से कवि ने यह बताना चाहा है कि - ग्रामीण अंचल का सीधा संबंध धरती से है, मिट्टी की मधुर महक से है, खेत और खलिहानों से है। हल और हँसिया श्रमयुक्त जीवन के प्रतीक हैं। अतः धरतीपुत्री सीता श्रमयुक्त जीवन का प्रतिनिधित्व करती है।

#### 6.3.1.1.4 विश्वशान्ति एवं निःशस्त्रीकरण की पोषक :

प्रस्तुत काव्यग्रंथ की प्रमुख घटना धनुष-भंग प्रसंग पर ही केन्द्रित कर रखी गई है। इस घटना के माध्यम से कवि ने आधुनिक विश्व की युद्ध की समस्या पर गहरा चिन्तन व्यक्त किया है। विश्व की बड़ी-बड़ी महासत्ताएँ आज अणुशस्त्रों से सज्ज हैं। शस्त्रों का शैतानी भय लोगों के मन



और मस्तिष्क पर छाया हुआ है। दिन-प्रतिदिन शस्त्रों के बढ़ते व्याप को देखकर कवि ने हमें निःशस्त्रीकरण का बोध दिया है। कवि के अनुसार शस्त्र मनुष्य के जीवन पर्यन्त की उपलब्धि नहीं है। मनुष्य ने शस्त्र बनाये हैं, किन्तु इन शस्त्रों का उद्देश्य मनुष्य पर आरुढ़ होना नहीं है। शस्त्र का प्रयोग मनुष्य के हीत में हो तो ही उसका महत्व है। मनुष्य के जीवन में किसी भी शस्त्र का चाहे वह देवताओं के द्वारा ही दिया हुआ क्यों न हो, कोई महत्व नहीं रखता। शिव-धनुष का भंग होना भी इसी बात का प्रतीक है। निमि की छड़ी पीढ़ी में देवरात ने शंकर से यह धनुष प्राप्त किया था। तभी से यह पिनाक आराध्य देव की तरह पूजा जाने लगा था। बचपन में सीता ने यह धनुष उठा लिया था इसी कारण उनके लिए ऐसा ही वर चाहिए था, जो इस धनुष को उठा सके। निमि सीता से कहते हैं कि धनुष मन की सबलता एवं निष्ठता का बिम्ब है। धनुष सँवारता भी है और सँहार भी करता है। धनुष का टूटना निःशस्त्रीकरण की जीत है। कवि निमि के माध्यम से यही जीवन दर्शन संसार को देना चाहते हैं कि संसार में शस्त्र बनानेवाले हमेशा उनका प्रदर्शन करते रहे, किन्तु मानव के आगे उनकी विजय नहीं होगी। इस पृथ्वी पर श्रमिकों एवं कृषकों के सामने शस्त्र या तो युद्ध के कोई भी साधनों का महत्व नहीं है। श्रम द्वारा ही मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर सकता है। निमि की यही मान्यता रही है —

“शस्त्र के और शास्त्र के गृह-युद्ध की दावाग्नि को,  
श्रम का सुशीतल जल  
अकेला जल  
बुझाता है, बुझाएगा।”<sup>34</sup>

निमि सीता को युद्ध की विभीषिका के बारे में कहते हैं -

“बेटी!  
युद्ध कितना है भयंकर!  
युद्ध के परिणाम कितने हैं घिनौने!  
X X X  
युद्ध की लपटें  
समूची जातियों को बाँस-वन-सी  
रोज तिल तिलकर जलाती हैं।”<sup>35</sup>

भारत कृषिप्रधान देश है किन्तु वर्तमान क्षणों में कृषि के प्रति अलगाव का भाव बड़ी तीव्रता

से बढ़ रहा है। प्रजा के हृदय से कृषि-कर्म की भावना दूर होती जा रही है। निमि के हृदय में कृषि के प्रति गहन आस्था है और वे चाहते हैं कि लोगों के हृदय में भी इस कर्म के प्रति अटूट आस्था उत्पन्न हो।

काव्य के प्रारंभ में निमि भारतीय नारी जीवन के महत्व को प्रतिपादित एवं स्थापित करते हैं। हमारे यहाँ कृषि क्षेत्र में नारी का बहुत बड़ा योगदान रहा है। भारत में नारी जीवन को जो महत्ता प्रदान की गई है, उसे निमि सीता के रूप में स्थापित करते हैं। वे कहते हैं —

“बेटी जानकी!  
कितने युगों से  
कह रहे अपलक प्रतीक्षा  
हर पलक पर बैठकर  
मेरे अभागे पल!  
आज तेरे अश्रु का जलदान पाकर  
एक पीढ़ी तर गई है।  
पुत्र जिसको कर न पाए,  
आज बेटी कर गई है।”<sup>36</sup>

इस प्रकार प्रस्तुत खण्डकाव्य में काबराजी ने परंपरागत रामायणकालीन सीता की अपेक्षा एक नये प्रतीक के रूप में चित्रित करके उनके चरित्र को और गरिमा प्रदान की है। सीता जनशक्ति के रूप में प्रकट हुई है। वह केवल जनक सुता ही नहीं है, धरती की बेटी है, जो जनता की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करती है। कवि ने सीता स्वयंवर में धनुष-भंग के द्वारा समाज को विश्वशांति एवं निःशस्त्रीकरण का संदेश दिया है। इस काव्य की पुरी कथा के सभी सूत्रों के साथ वह जुड़ी हुई है। इसीलिए सीता कथा नायिका के गौरव से शोभान्वित है।

### 6.3.2 अन्य नारी पात्र :

#### 6.3.2.1 सीता की सखियाँ :

मैंने पहले ही स्पष्ट कर दिया है कि ‘धनुष-भंग’ खण्डकाव्य में केवल सीता ही नारी पात्र के रूप में अवतरित हुई है। अन्य नारी पात्रों में उनकी सखियों का एक ही जगह पर सांकेतिक उल्लेख मात्र है। सीता को जयमाल हाथ में लेकर रूकी हुई देखकर उसके अन्तर्मन के भावों को भापने का

प्रयत्न करती है ! देखिए —

“सोचती सखियाँ

कि शायद

लाज की मारी सिया जयमाल पहनाती नहीं है।”<sup>37</sup>

## 6.4 नरो वा कुंजरो वा :

‘नरो वा कुंजरो वा’ प्रबन्ध काव्य में डॉ. किशोर काबरा ने महाभारत के प्रमुख पात्र कौरवों-पाण्डवों के गुरु द्रोणाचार्य के चरित्र को प्रधानता दी है। ‘नरो वा कुंजरो वा’ यह अर्द्ध सत्य पर आधारित कथन पर ही पूरी कथा निर्भर है। युधिष्ठिर द्वारा कहे गये ‘अस्वत्थामा हता’ वाक्य में युधिष्ठिर का अर्द्ध सत्य है, गुरु द्रोण यह वाक्य सुनकर ही शस्त्र छोड़कर भूमि पर बैठ जाते हैं। द्रोण को युधिष्ठिर पूरी बात बताना चाहते हैं, किन्तु वे गुरु द्रोण कि जिसका पूरा जीवन ही अर्द्ध सत्य पर टिका हुआ है - पूरे सत्य को कैसे सुन सकते हैं? जिसने अपने प्यारे बच्चे को दूध की जगह आटे का घोल पिलाया हो, वह पुत्र प्रेम में अंधे द्रोण ‘अस्वत्थामा हता’ के साथ ‘नरो वा कुंजरो वा’ कैसे सुन सकते हैं?

कवि ने इस अर्द्ध सत्य पर आश्रित घटना को कविता का प्रतिपाद्य बनाया है। गुरु द्रोण के सिवा राजा द्रुपद, अस्वत्थामा, युधिष्ठिर, अभिमन्यु, एकलव्य जैसे पात्र भी कथा में निजि अस्तित्व रखते हैं।

नारी पात्रों के अंतर्गत द्रौपदी ही मुख्य पात्र के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होती है। अन्य नारी पात्रों में घृताची, कृपि, जानपदी का संकेत मात्र है, जिसके माध्यम से कथा का प्रवाह आगे बढ़ता है।

### 6.4.1 मुख्य नारी पात्र :

#### 6.4.1.1 द्रौपदी :

महाभारत के प्रमुख नारी पात्रों में द्रौपदी का स्थान उल्लेखनीय है। महाभारतीय कथा में उसका होना अनिवार्य है। काबराजी के महाभारत कथा पर आधारित प्रबन्ध काव्य ‘नरो वा कुंजरो वा’ और उत्तर महाभारत दोनों में द्रौपदी का चरित्रांकन हुआ है। दोनों काव्यग्रंथ में चरित्रगत समानता होते हुए भी कवि की लेखनी की अनुपम अभिव्यक्ति से दोनों में स्पष्ट अंतर परिलक्षित होता है।

प्रस्तुत प्रबंध काव्य में चतुर्थ सर्ग में द्रौपदी हमारे समक्ष उपस्थित होती है। जिसे राजा द्रुपद ने यज्ञ करके प्राप्त किया था। वैसे एक पतिव्रत और एक पत्नीव्रत धर्म से ही भारतीय संस्कृति की पहचान होती है, किन्तु द्रौपदी की कहानी नारी जीवन की विवशता को प्रकट करती है। पाँच पतियों की पत्नी पाँचाली जीवन के महत्वपूर्ण एवं विभिन्न आयामों को लेकर अवतरित हुई है। द्रौपदी के पात्र द्वारा कवि ने नारी सम्मान एवं नारी के उद्धार करने की बात कही है। 'नरो वा कुंजरो वा' की द्रौपदी के चरित्र के विभिन्न पहलू इस प्रकार है।

#### 6.4.1.1.1 लाचार और बेबस नारी :

महाभारत की द्रौपदी की तरह काबराजी की द्रौपदी भी लाचार और विवश नारी के रूप में हमारे सामने आती है। पाँचों पाण्डवों में से अर्जुन को वह अत्याधिक चाहती है, किन्तु उसकी विवशता है कि वह इस बात को किसी के सामने व्यक्त नहीं कर सकती है। स्त्रीयों को कलंक का हमेशा डर रहा करता है। उसके जीवनकाल में यदि छोटा-सा कलंक भी लग जाता है, तो उसका सारा जीवन ही क्लृषित बन जाता है। द्रौपदी इसीलिए विवश है; उसके मन में यही भय सता रहा है कि कहीं युधिष्ठिर उस पर पक्षपात का कलंक न लगा दे। उसीके शब्दोंमें —

“पर युधिष्ठिर चतुर हैं,  
सब आँख खोले देखते हैं, परखते हैं, डोलते हैं,  
और ताना मारकर सच बोलते हैं।  
मैं अधिक किससे जुड़ी हूँ।  
लग रहा है,  
ये युधिष्ठिर  
बर्फ की ठंडी सफेदी पर जहाँ मैं मर रही हूँगी,  
कलंकित वाक्य मेरे चेहरे पर आह थूकेंगे जरूर —  
‘द्रौपदी हम पाँच में से चाहती थी वीर अर्जुन को अधिक,  
अतः एवं पहले मर रही है।’”<sup>38</sup>

द्रौपदी जीवनभर दुसरो की इच्छा के अधीन रही है। उसने मानो अपना स्वत्व ही खो दिया हो। द्रौपदी अपने स्वयंवर में कर्ण के दिव्य सौन्दर्य को देखकर मोहित हो जाती है। मन ही मन वह उसके प्रेमपाश में बँधकर उसे वरने की इच्छा भी प्रकट करती है। किन्तु यह भी उसके जीवन की विवशता है कि वह कर्ण के गले में जयमाला नहीं पहना सकी। वह खुद अपनी इस बेबसी को बयान

करती है —

“आह, अपने स्वयंवर में  
कर्ण को मैं देखकर भी चकित —  
कितना दिव्य था वह पुरुष, कितना दिव्य उसका तेज !  
जिसके सामने सब जुगनुओं-से लग रहे निस्तेज ।  
उस दिन कर्ण अपने बाण से  
उन मछरियों के साथ ही मेरे भ्रमित दुर्भाग्य को भी  
काटकर नीचे गिरा देता ।

X X X

किन्तु मैं थी विवश,  
हाँ अपने पिता की आँखमें कुछ देखकर  
मैंने कहा था —  
‘सूत का यह पुत्र है,  
मैं नहीं इसको वरूँगी ।’<sup>39</sup>

इस प्रकार पिता के इशारे से ही वह कर्ण का त्याग करने के लिए तैयार हो जाती है । किन्तु कवि ने द्रौपदी की इस विवशता के सामने प्रश्न उठाया है —

“द्रौपदी!  
तूने जगत में जन्म लेकर  
व्यर्थ ही क्यों सांस का यह भार ढोया?  
आह, तू जब कह सकी है —  
‘सूत का यह पूत है,  
मैं नहीं इसको वरूँगी ।’  
‘पाँच पतियों की नहीं पत्नी बनूँगी मैं,  
एक ही पति को वरूँगी मैं ।’  
बोल कृष्णा  
क्यों नहीं तू कह सकी थी?<sup>40</sup>

अर्थात् कवि का कहना है कि जब तु स्वयंवर में ‘सूत पूत’ कहकर पिता के इशारे मात्र से

कर्ण को वरने से इन्कार कर दिया था किन्तु स्वयंवर में तुजे अर्जुन ने जिता था फिर भी पाँच पितयों को वरने से तुने इन्कार क्यों नहीं किया?

द्रौपदी का जीवन संघर्ष और करूणा की कहानी है। उसे विवशता का भार पूरे जीवनभर ढोना पड़ता है। द्रौपदी के माध्यम से कवि ने नारी हृदय के मनोभावों एवं विडम्बनाओं का चित्रण किया है। वह पुरुषवर्ग को संबोधित करते हुए कहती है -

“आप सब है पुरुष  
स्त्री की बात क्या कुछ समझ पाएँगे?  
स्त्री का हृदय  
कोमल भावना से उछलता-सा धबकता-सा हृदय,  
उबले रक्त से प्रतिक्षण मचलता सुबकता-सा हृदय,  
खाने और सोने से अलग कुछ सोचता-सा हृदय,  
अपनी रिक्तता में स्वयं को ही कोंचता-सा हृदय,  
स्त्री का हृदय  
तन के तीर पर  
मन के अमिय विश्वास में डूबा हुआ उत्तप्त जीवित प्रेम  
पति से मांगता है,  
और उसको प्राप्त करने के लिए  
सब वर्जनाएँ, संहिताएँ नियम की सब श्रृंखलाएँ  
लॉघता है।”<sup>41</sup>

द्रौपदी के नारी हृदय की व्यथा को कोई समझ नहीं पाया है, यही उसके जीवन की करूणा है, यही उसकी विवशता है, यही उसके जीवन की दुःखद कथा है। एक सहज नारी की तरह जीने की आकांक्षी द्रौपदी के मन की अभिलाषा को भी कवि ने व्यक्त किया है —

“स्त्री स्वयं यदि नहीं चाहे,  
एक पति को भी समर्पित हो नहीं पाती।  
आह,  
मैं अपने पृथक् गुण-धर्मवाले पाँच पतियों की  
विषम पंचाग्नियों के कुंड में  
कैसे समर्पित हो सकी मैं जानती हूँ।”<sup>42</sup>

द्रौपदी चाहती है कि वह एक क्षत्रिय विरांगना की तरह वीरता से जिये किन्तु मानो मजबूरी और उसका चोली-दामन का संबंध हो गया हो। स्वयंवर में अर्जुन को प्राप्त करके उसका वरण करने के बजाय उसे पाँच पतियों का वरण करने के लिये मजबूर होना पड़ता है। और वह अपनी विवशता किसी के सामने बता भी नहीं पाती है। वीरांगना की तरह जीने की तमन्ना रखनेवाली कृष्णा को वारांगना की तरह जीना पड़ता है। और इसी आग में वह जीवनभर जलती रहती है। वह गुरु द्रौण के सामने अपने मनोभावों को प्रकट करते हुए कहती है —

“गुरुवर, मैं द्रौपदी नहीं,  
मैं पुरुष मात्र के लिए मनोरंजन की सस्ती चीज,  
मात्र बच्चे जनने का एक यंत्र हूँ।

X X X

गुरुवर, मैं द्रौपदी नहीं,  
मैं नारी के बिखरे सपनों की  
अश्रु-रक्त से लिखी हुई कविता हूँ।  
गुरुवर, मैं द्रौपदी नहीं,  
मैं उसके मनका बिम्ब मात्र हूँ,  
द्वार के नारी जीवन का हलका-सा प्रतिबिम्ब मात्र हूँ।”<sup>43</sup>

इस प्रकार द्रौपदी का जीवन विवशता की करुण कहानी है। जिस अर्जुन ने उसे वरा था, उसीका प्रेम वह नहीं पा सकी थी, यही उनके जीवन की सबसे बड़ी विवशता है।

#### 6.4.1.1.2 परस्पर अन्तिर्विरोधिता :

##### 6.4.1.1.2.1 कामुक्ता का विरोध :

द्रौपदी सामान्य नारी की तरह एक पति के प्रेमपाश में बँधकर अपना सुखी संसार बसाना चाहती थी। उसने अपने जीवन के लिए बड़े ही सयाने सुनहरे स्वप्न सँजोये थे —

“सलोना एक पति होगा  
तरुण अल्हड किसी मदमस्त महुए की तरह,  
मैं लाल मोती से जड़ी धुँधची लता-सी

लिपटकर जिससे रहूँगी ।  
 फिर खिलौनों की तरह सन्तान होगी दो —  
 किलकता मचलता सूरज,  
 ठुमकती फुदकती चंदा ।  
 सुहानी और छोटी - सी मढ़ैया,  
 तीन बाजु घेरकर बैठा हुआ आँगन,  
 दुवारे पर लचते झूमते छतनार पौधे चार,  
 आगे -

अहा चौदह भुवन का सुख मुझे कृत कृत्य करता हो ।  
 स्फटिक आवास पति का चाहिए,  
 हर पाख के पंद्रह दिनों विश्वास पति का चाहिए ।  
 यदि मिल गए सब पीढ़ियों को सोलहो संस्कार,  
 मेरे हो गए उस रोज पूरे सोलहो शृंगार ।”<sup>44</sup>

द्रौपदी का यह स्वप्न तो स्वप्न बनकर ही रह जाता है । उसे बरनेवाला तो सिर्फ एक अर्जुन ही था किन्तु वह चबेने की तरह पाँच पतियों के बीच बँटकर रह जाती है । उसका मन पुरुषों की कामुक वृत्तियों का विरोध करता है । पाँच पतियों द्वारा उसे भोगने के लिए बनाई गई व्यवस्था का चित्रण करके द्रौपदी पुरुषों की कामुकवृत्ति का विरोध करती है । देखिए —

“एक नारी की विवशता देखिए,  
 पाँच नर जिसको स्वयं की पारियों में भोगते हों ।  
 क्रम बँधे है, वार तिथि-नक्षत्र सारे तय हुए है ।  
 पाँच को पहचानती तो क्या,  
 स्वयं को ही नहीं पहचान पाई मैं  
 सभीने ले लिए है भाग अपने  
 माँस, मज्जा और हड्डी के,  
 मगर मेरे हृदय को आज तक किसने किया है?”<sup>45</sup>

उसे इस तरह पाँच पतियों के बीच पलना पड़ता है । दूर्योधन और दुःशासन भी उसे पाँच



पतियोंवाली कहकर अपमानित करता है। वह गुरू द्रौण के सामने पुरुषों की कामुक वृत्तियों पर करारा व्यंग करती है —

“पाँचाली सही है नाम मेरा

X X X

पाँच पतियोंने मुझे मिल-बैठकर भोगा  
हजारों बार जूठी पत्तलों की तरह,  
और पंचों ने किया मुझको भरे दरबार में निर्वस्त्र वैश्या की तरह।

X X X

चीर मेरे चीथ डाले थे वहाँ दुश्शासनों ने  
सभी मेरे नग्न होने की प्रतीक्षा कर रहे थे।”<sup>46</sup>

यहाँ द्रौपदी पुरुष वर्ग की कामुकता का विरोध करती हुई द्रष्टिगत होती है। समग्र सभा के बीच जब वह निर्वस्त्र की जाती है, तब वह अपने पतियों एवं गुरुजनों पर व्यंग बाण लगाते हुए सहायता की याचना करती है।

“धर्म के अवतार सारे चुप रहे गर्दन झुकाकर  
शौर्य के संस्कार सारे मर गए आसन बिछाकर  
सब गदाएँ, सब धनुष,  
सब रूप-ज्योतिष और घोड़ों के सभी सामान  
कोनों में पड़े थे मौन-मिट्टी से।

X X X

शायद भयंकर कांड रूक जाए किसी भी तरह,  
बेबस एक अबला की यहाँ पर लाज बच जाए  
किसी भी तरह।

हाय रे दुर्भाग्य!

आँख सबके भी ; मगर पानी नहीं था,

सब वहाँ निर्लज्ज भिक्षुक थे

कोई दानी नहीं था।”<sup>47</sup>

### 6.4.1.1.2.2 असंतुष्ट वासना का प्रतीक :

द्रौपदी के चरित्र में परस्पर दो अन्तर्विरोधी भाव देखने को मिलते हैं। कविने द्रौपदी को असंतुष्ट वासना की ज्वाला के प्रतीकात्मक रूप में अभिव्यक्त किया है। उसके चित्रण द्वारा कवि ने आधुनिक भोग-विलास में चूर बननेवाली आधुनिका का चित्रण किया है। स्वयंवर में वह अर्जुन को वरमाला पहनाती है; किन्तु जब पाँच पतियों में उसका बँटवारा होता है, तब अपने अतृप्त मन की वासना में पाँच पतियों के सुखद रोमांच की कल्पना के कारण शायद पाँचों का स्वीकार कर लेती है। और यही पाँच पतियों की पत्नी पाँचाली इसी वजह से राजनीति का शिकार बनकर रह जाती है। स्वयं कवि ने द्रौपदी से यह सवाल पूछा है —

“कहीं अतृप्त मन की वासना में  
पाँच पतियों के सुखद-संसर्ग का रोमांच था,  
जिसने किया था जड़ तुझे?”<sup>48</sup>

द्रौपदी के चरित्र द्वारा कवि ने भोग-विलास युक्त आनेवाली पीढ़ी की मनोदशा का चित्रण प्रस्तुत किया है। उसके चरित्र के चित्रांकन से कवि ने द्वापर युग की द्रौपदी का चित्रण नहीं किया, बल्कि कलियुग की नारी का खुला चित्र प्रदर्शित किया है। कलियुग की नारी की कवि कल्पना कुछ इस प्रकार है।

“द्वापर में तुम एक द्रौपदी भरी सभा में बचा न पाए,  
कलियुग में अब द्रौपदियों पर सबकी आँखें गड़ी रहेंगी।  
द्वापर में दुःशासन ने जिन द्रौपदियों के चीर हरे थे  
कलियुग में वे बिना वस्त्र के राजपथों पर खड़ी रहेंगी।  
द्वापर की द्रौपदी पाँच पतियों में बँटकर टूट गई थी,  
कलियुग की द्रौपदी टूटकर सौ पुरुषों से जुड़ जाएगी।  
द्वापर की द्रौपदी दांव पर रखी गई थी भरी सभा में,  
कलियुग की द्रौपदी दांव की ओर स्वयं ही मुड़ जाएगी।  
द्वापर की द्रौपदी कह सकी-सूत पुत्र को नहीं वरूंगी,  
कलियुग की द्रौपदी करेगी काला मुँह अब सूत-पूत से।

X X X

द्वापर की द्रौपदी आज तक क्वारी कन्या कहलाती है,

कलियुग की द्रौपदियां क्वारी ही माताएँ बन जाएगी ।  
 द्वापर की द्रौपदी महाभारत की मात्र कहानी होगी,  
 कलियुग की द्रौपदियाँ घर-घर की गाथाएँ बन जाएगी ॥”<sup>49</sup>

अर्थात् द्रौपदी तो पाँच पुरुषों से जुड़ी हुई थी, लेकिन कलियुग की नारी सौ पुरुषों से जुड़ जाएगी । वह कँवारी ही माताएँ बनेगी । द्वापर की द्रौपदी तो महाभारत की कथा बनकर रह गई है, किन्तु कलियुग की द्रौपदी घर-घर की कहानी बनकर गुंजेगी । इस प्रकार द्रौपदी के माध्यम से कवि ने विषय-वासना में व्यस्त रहनेवाली भोग विलासिनी आधुनिका का चित्र अंकित किया है ।

#### 6.4.1.1.3 असफल पत्नी :

द्रौपदी असफल पत्नी के रूप में हमारे समक्ष आती है । सामान्यतया हम देखते हैं कि समाजमें कई स्त्रीयाँ ऐसी हैं, जो जीवन के लंबे सफर तक साथ रहकर भी अपने पति को पुरा नहीं समझ पाती हैं, तब द्रौपदी को तो पाँच पतियों के बीच रहना था । वह कैसे अपनी गृहस्थी की डोर को सँभाल पाती ? कैसे वह सभी के साथ संतुलन बनाये रखती ? वह अपनी व्यथा को व्यक्त करती हुई कहती है —

“मैं अपने पृथक् गुणधर्मवाले पाँच पतियों की  
 विषम पंचाग्नियों के कुंड में  
 कैसे समर्पित हो सकी मैं जानती हूँ ।

X X X

मैं समर्पित हो न पाई किसी के पाँव में पूरी तरह  
 मैं कभी भी बस न पाई हृदय के गाँव में पूरी तरह ।”<sup>50</sup>

पाँचाली की पीड़ा यही है कि वह किसी एक पति के प्रेम पाश में बँध न सकी और न वह किसी एक के प्रति समर्पित भी हो सकी । वह पत्नी के रूप में असफल रही । वह खुद अपनी गृहस्थी की असमर्थता का चित्रण करते हुए कहती है कि —

“पाँच पतियों से नहीं चलती गृहस्थी,  
 पाँच पतियों से नहीं नारीत्व की शोभा,  
 पाँच पतियों से नहीं सन्तान का कल्याण,  
 घर का गाँव-खेड़े का, नगर का देश का कल्याण ।”<sup>51</sup>

पाँच पतियों के बीच उनकी गृहस्थी की डोर वह बड़ी मुश्किल से पकड़ पाती है। पाँचों के रहते हुए भी वह अपने को असंतुष्ट-सी, अधुरी-सी महसूस करती है। पाँचों पतियों से वह अलग-अलग संबंधों से जुड़ी हुई है। देखिए —

“आह मेरे पाँच पति!

दो को हमेशा मानती हूँ जेठ,

दो को मानती देवर,

क्योंकि -

मैं करूँ यदि प्रेम की, सौंदर्य की, अभिसार की बातें,

वे करेंगे धर्म, दर्शन, सत्य की संस्कार की बातें।

मैं करूँ यदि भोग की, क्रीडा-कला की

या प्रणय-उत्ताप की बातें,

वे करेंगे मल्लविद्या की, सुवासित व्यंजनों की

या उदर के माप की बातें।

मैं करूँ यदि वस्त्र-कपड़ों की घरों की

नमक-मिर्ची दाल की बातें,

वे करेंगे तारकों की, राशियों की,

या ग्रहों की चाल की बातें।

मैं करूँ यदि फूल-पौधों की, शुकों की, सारिकाओं की

भ्रमर की रस-भरी बातें,

वे करेंगे अश्वविद्या की, धनुष की, तीर की,

तलवार की सब विष-भरी बातें।

पाँच में से एक ही ऐसे - बचे

पतिदेव जिनको मानती हूँ।

मछरिया की पुतरिया को बाण से जिसने बिंधा

भरतार उनको जानती हूँ।

और मुझको सही अर्थों में उन्हींने तो बरा है।”<sup>52</sup>

इस प्रकार एक असफल गृहिणी के रूप में वह हमारे सामने आती है। पाँच पतियों के रहते उसकी गृहस्थी की झंझटें बहुत बढ़ जाती हैं।

#### 6.4.1.1.4 असुरक्षित नारी :

सामान्यतया भारतीय जीवन में पत्नी की सुरक्षा का उत्तरदायित्व पति का है। एक पति के ही सक्षम होने से स्त्री को कोई आँख उठाकर नहीं देख सकता। द्रौपदी का दुर्भाग्य है कि पाँच पतियों के होते हुए भी वह असुरक्षित-सी है। भरी सभा में जब दुःशासन उसका वस्त्राहरण करता है, तब उसके पाँचो पति वहाँ मौजूद हैं फिर भी उसकी रक्षा नहीं कर पाते हैं। तब द्रौपदी का मन विद्रोह से भर जाता है। आक्रोशपूर्ण वचनों से वह अपने पतियों एवं स्वजनों पर व्यंग करती है। द्रौपदी के शब्दों में —

“शौर्य के संस्कार सारे मर गए आसन बिछाकर,  
सब गदाए, सब धनुष,  
सब रूप-ज्योतिष और घोड़े के सभी सामान  
कोने में पड़े थे मौन मिट्टी-से।

X X X

बेबस एक अबला की यहां पर लाज बच जाए  
किसी भी तरह।  
हाय रे दुर्भाग्य!  
आँख सबके भी, मगर पानी नहीं था,  
सब वहाँ निर्लज्ज भिक्षुक थे,  
कोई दानी नहीं था।”<sup>53</sup>

द्रौपदी जीवनभर खुद को असुरक्षित मानती है। असुरक्षा की भावना को वह त्याग नहीं सकती। उसके पुत्रों का भी बचपन में वध किया गया।<sup>54</sup> अर्थात् उसके मन में बदले की आग प्रज्वलित हो जाती है।

इस प्रकार द्रौपदी का समग्र जीवन असुरक्षित होने के कारण वह जीवनभर यातनाओं का भार ढोती है।

#### 6.4.1.1.5 नारी को सम्पत्ति मानने का विरोध :

नारी कोई चीज या सम्पत्ति नहीं है, जिसे बेची या खरीदी जाये, जिसे जिती या हारी जाये, जिसे किसी को थाती के रूप में सोंपी जाये या जुए में दाव पर लगाया जाये। धर्मराज युधिष्ठिर सब

कुछ जुए में हार जाते हैं, तब वे अपनी पत्नी द्रौपदी को भी दाव पर लगा देते हैं। द्रौपदी युधिष्ठिर के इस धिनौने कार्य का तीव्र विरोध करती है। वह मानती है कि पतियों को भी अपने कर्तव्य से च्यूत नहीं होना चाहिए।

“निर्जीव सम्पति जुएँ के दाव की  
पंचायती हो वस्तु दिल बहलाव की।”<sup>55</sup>

यहाँ पर कवि काबराजी की उदारनारी भावना का दर्शन होता है।

#### 6.4.1.1.6 विद्रोहिणी नारी :

द्रौपदी का यह रूप हमारे मन को झकझोर देता है। अपनी विपद्गाथा को गाती हुई वह आचार्य द्रोण के सामने वह जिस प्रकार अनेक सवालों की वर्षा करती है - तब उनके मन का दबा - सा विद्रोह आग की लपटों की तरह भभक उठता है। उनका यह विद्रोहिणी रूप द्रष्टव्य है —

“बोलिए कुछ द्रोण !  
मेरा छीनकर सब कुछ यहाँ क्यों चुप खड़े हो?  
लो समय के द्वार पर  
यह वस्त्र अन्तिम फेंकती हूँ।  
देखिए गुरुवर!  
भीतर और बाहर से यहाँ नंगी खड़ी हूँ  
देखिए मेरी तरफ कुछ देखिए,  
आचार्य, मेरी ओर कुछ तो देखिए।”<sup>56</sup>

इस प्रकार यहाँ उसका विद्रोहिणी रूप झलकता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि द्रौपदी का पुरा जीवन संघर्षों, विपदाओं, विडम्बनाओं, यातनाओं एवं करूणा की व्यथा कथा हैं। वह चाहकर भी अपनी पीड़ा से परे नहीं हो पाती है। द्रौपदी के पात्र द्वारा कवि ने आधुनिक युग की किंकर्तव्य विमूढ़ स्थिति में जी रही आधुनिक रमणियों का पथ प्रशस्त किया है।

#### 6.4.2 गौण नारी पात्र :

##### 6.4.2.1 कृपि :

कृपि गुरुद्रौण की पत्नी एवं कृपाचार्य की बहन है। द्वितीय सर्ग में वह हमारे समक्ष उपस्थित

होती है। 'अस्वत्थामा हतः' वाक्य सुनकर गुरूद्रोण की परिस्थिति बड़ी करुणाजनक हो जाती है। उसके बाद गुरूद्रोण अपनी दुःखभरी जीवनगाथा कृपि को सुनाते हैं। यहाँ उनकी स्थिति बड़ी ही करुण है। वैसे तो उनका पुरा जीवन ही करुणता और दीनता से ग्रस्त है। जिसका परिणाम कृपि को भी आजीवन भुगतना पड़ता है। अब हम यहाँ उसके चरित्र का विश्लेषण करेंगे।

#### 6.4.2.1.1 अभावग्रस्त नारी जीवन :

गुरूद्रोण एक गरीब ब्राह्मण थे। कृपि से उनकी शादी होती है, उससे एक बेटा भी प्राप्त करते हैं, किन्तु परिवार का गुजारा करने में वे बड़े ही असमर्थ हैं। कृपि को उनके गृहस्थ जीवन में अभावों का बीच ही रहना पड़ता है। यहाँ तक कि उसे अपने बेटे के लिए दूध की भी चिंता सताये रहती है। उसके लिए भर पेट दूध भी वह नहीं दे सकती है। वैसे बालहठ बड़ी विचित्र होती है। जब तक अपना इच्छित नहीं मिल जाता, तब तक वह अपनी हठ बनाये रखते हैं। अस्वत्थामा जब बच्चा था, तब वह अपने मित्रों को दूध पीते देखकर दूध की रट लगाकर रोने लगता है। हर हाल में उसे दूध ही चाहिए। इस प्रकार दूध की रट लगानेवाले अस्वत्थामा को देखकर सभी बच्चे उसे निकम्मा एवं दीन कहकर चिढ़ाने लगते हैं। आस-पास के लोग भी उसे तरह-तरह के ताने देते हैं। कृपि का संवाद द्रष्टव्य है —

“सभी बच्चे चिढ़ाते हैं -

अरे, यह द्रोण का बेटा निकम्मा - सा

हमें यों दूध पीते देखकर

भूखी निगाहों से

हंमेशा ताकता है।”<sup>57</sup>

अभावों के बीच जी रही कृपि अपने बेटे को दूध ला देने में भी असमर्थ है। पड़ोस में से माँगकर भी वह नहीं ला सकती है। क्योंकि गुरूद्रोण ने माँगने पर प्रतिबंध लगा दिया है।<sup>58</sup> अस्वत्थामा की दूध की हठ भूलाने के लिए कृपि उसे बगीचे में ले जाकर बगुलों को दिखाती है। किन्तु अस्वत्थामा तो दूध जैसे सफेद बगुलों को देखकर फिर से दूध की याचना करने लगता है। आखिर कृपि बालहठ के सामने हार जाती है और गुस्से में आकर वह उसे पीटने लगती है।

इस प्रकार अभावग्रस्त जीवन जीना कृपि की विवशता है।

#### 6.4.2.1.2 असफल गृहस्थी :

अपने प्यारे बच्चे को वह दूध तक नहीं दे सकती है, तब वह अपनी गृहस्थी एवं पति को

कोसती है। वह गुरूद्रोण के निरर्थक जीवन पर तीखा व्यंग्य करती है और क्रोधावेश से अभिभूत होकर पुत्र अस्वत्थामा को बड़े आक्रोशपूर्ण वचन कहती है।

“दूध पी,  
ले, और पीले दूध,  
तेरे बाप ने गोकुल बसाया है।”<sup>59</sup>

कृपि के ये दर्द एवं आक्रोशपूर्ण वचन गुरूद्रोण को भीतर से झकझोर देते हैं और उसे अपने कर्तव्य का एहसास होता है और कृपि को शांत्वना देते हैं।

#### 6.4.2.1.3 पुत्र वत्सल माँ :

काबराजी ने कृपि के वात्सल्य को कुछ अलग ही प्रकार से प्रकट किया है। वह अपने बेटे को हिलाकर, पुचकार प्रेम प्रकट नहीं कर पाती है, न ही वह चूमकर अपना स्नेह प्रकट करती है। किन्तु उसका पुत्र वत्सल हृदय ही बेटे के प्रति प्रेम को प्रस्तुत करता है। वह जिद्दी बेटे को पिटती जरूर है, किन्तु खुद भी पश्चाताप के आँसू रोती है। कवि कहते हैं —

“हिचकियों में सिसकियों में  
और पश्चाताप के जलते-सुलगते आँसुओं में  
झुलसता ही जा रहा है माँ कृपि का मन।”<sup>60</sup>

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कृपि पुत्रवत्सल माँ है।

#### 6.4.3 अन्य नारी पात्र :

प्रस्तुत प्रबन्ध काव्य में द्रौपदी और कृपि के अलावा दो और नारियाँ हमारे समक्ष आती हैं, जिसका कवि ने उल्लेख मात्र किया है। वह है घृताची और जानपदी। यहाँ हम दोनों का परिचय प्राप्त करेंगे।

##### 6.4.3.1 घृताची :

घृताची गुरूद्रोण की माता है, यह द्वितीय सर्ग में हमारे सामने आती है। घृताची के पात्र द्वारा कवि ने अप्सराओं के उच्छृंखल स्वभाव पर व्यंग्य किया है।

##### 6.4.3.1.1 निर्दयी माता :

घृताची एक निर्दयी माता के रूप में द्रष्टिगत होती है। वैसे इतिहास साक्षी हैं कि अप्सराएँ



संसार का सुख भुगतती है, प्रसव की पीड़ा भी सहती है, किन्तु बच्चे को असहाय-सा छोड़कर चली जाती है। गुरूद्रोण की माता घृताची भी भारद्वाज के प्रणय पाश में तो बँधती है, किन्तु उसे रोता हुआ एक कलश के पास छोड़कर स्वर्ग में चली जाती है। गुरूद्रोण के शब्दों में —

“मुझको जन्म देकर माँ  
कलश के पास में रोता हुआ ही छोड़  
अपने लोक में ऐसी गई,  
फिर लौटकर आई नहीं।”<sup>61</sup>

वैसे बाल शिशु को केवल माँ और माँ के दूध का ही आश्रय चाहिए। किन्तु घृताची के माध्यम से कवि ने आधुनिक माँ के दूध की समस्या का चित्रण किया है। आज पश्चिमी संस्कृति का अंधानुकरण करनेवाली कई कुमारिकाएँ अवैध संबंधों के कारण बच्चे को जन्म तो देती हैं, किन्तु लोकापवाद के कारण उसे छोड़ देती हैं। वह अबोध शिशु के प्रति अपने कर्तव्य को भूल जाती है। वरन् उसके बारे में सोचना भी नहीं चाहती है। उस बच्चे को आजन्म संघर्षों से झुझना पड़ता है। ऐसे बच्चे बड़े होकर गुरूद्रोण की तरह अपने बच्चे के दूध के लिए भी कुछ नहीं कर सकते।

गुरूद्रोण की दुःखभरी जीवनगाथा सुनकर कृपि भी अपनी दुःखद कहानी उसे सुनाती है। कृपि की कहानी भी गुरूद्रोण के जीवन से मिलती-जुलती है। वह भी गौतमपुत्र शरद्वान और अप्सरा जानपदी की बेटी थी। यहाँ हम जानपदी का परिचय भी प्राप्त करेंगे।

#### 6.4.3.2 जानपदी :

जानपदी महर्षि शरद्वान की पत्नी थी। वह भी घृताची की तरह एक अप्सरा थी, जो अपना पुत्र कृप और पुत्री कृपि को छोड़कर चली जाती है। फलतः दोनों बच्चों को जीवनभर संघर्षों से झुझना पड़ता है और अपमान सहन करना पड़ता है। अपनी माता जानपदी के इस निर्दयी व्यवहार को अपने पति के सामने वह व्यक्त करती है। कृपि अपनी बदहाली को व्यक्त करते हुए कहती है —

“जूठन पर पलनेवाले हम,  
अहसानों के फटे वस्त्र से आधा तन  
ढकनेवाले हम,

दोनों भाई-बहन वस्तुतः कृपा-कृपी थे ।  
 कई कृपाओं के बदले में  
 साँसो का संसार हमें मिल पाया स्वामी!  
 शैशव में ऋषियों के द्वारे हम दोनों ने  
 कितने ही कडवे फल खाए  
 उपहासों के, तानों और उपालंभों के,  
 निश्वासों के ।”<sup>62</sup>

इस प्रकार जानपदी एवं घृताची के द्वारा कवि ने निःसहाय बच्चे के बारे में सोचने को बाध्य कर दिया है । ऐसी संतानों को काफी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है । दुःखद बात तो यह है कि कृपि का ब्याह भी अंत में गुरुद्रोण के साथ होता है, जो जीवन का गुजारा करने में भी अक्षम है । जिसे थोड़े से दूध के लिए भी तरसना पड़ता है । आज कई ऐसे निःसहाय बच्चे मिलते हैं, जिसे माता-पिता के अवांछनिय संबंधों के कारण जीना भी मुश्किल हो जाता है । घृताची और जानपदी जैसे पात्रों के द्वारा कवि ने हमें त्यक्त बच्चों के बारे में सोचने के लिए बाध्य कर दिया है ।

## 6.5 उत्तर महाभारत :

प्रस्तुत महाकाव्य महाभारत की पौराणिक कथा पर आधारित है । कवि ने महाभारत की उत्तरकथा यानि कि महाभारत के सत्रहवें और अठारहवें पर्व को काव्य का प्रतिपाद्य बनाया है । पाँचों पाण्डवों एवं द्रौपदी के स्वर्गारोहण की कथा से प्रबन्ध की शुरूआत होती है । समग्र कथा को कवि ने सात सर्गों में विभाजित किया है ।

कुरुक्षेत्र के महायुद्ध के बाद धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाइयों के सहयोग से धर्मराज्य की स्थापना करते हैं, किन्तु शेष पीड़ित प्रजा के करुण चित्कार एवं हाहाकार से उसका मन पश्चाताप की अग्नि में जल रहा है । कृष्ण के गोलोकधाम जाने के बाद उसे अपना जीवन व्यर्थ लगने लगता है । इसीलिए हस्तिनापुर का राज्य परीक्षित को एवं इन्द्रप्रस्थ का राज्य कृष्ण के पुत्र वज्र को सौंपकर, युयुत्सु को उसकी देखभाल की जिम्मेवारी सौंपकर वे द्रौपदी एवं अपने भाइयों समेत हिमालय पर गलने के लिए जाते हैं । साथ में एक नवजागरण का प्रतीक श्वान भी है ।

महाप्रस्थान के छः प्राणियों का कवि ने मनोवैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण किया है । कवि ने पाँचों पाण्डवों को मनुष्य की पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा द्रौपदी को मन का प्रतीक माना

है। ये छः प्राणियों के द्वारा कवि ने मानव मन के छः विकारों - काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर के शमन की कथा कही है। हिम शिखर पर द्रौपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन और भीम क्रमशः गीरते जाते हैं। भीम युधिष्ठिर से उसके गीरने का कारण पुछता है और युधिष्ठिर उन प्रश्नों के उत्तर देते हुए सुरधाम तक पहुँच जाते हैं।

समग्र प्रबन्ध की पात्र सृष्टि के अंतर्गत युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, द्रुपद, कौरवों, कृष्ण, शकुनि, द्रौपदी, कुंती, माद्री, सत्यभामा आदि हैं। किन्तु हम यहाँ केवल नारीपात्रों का ही विश्लेषण करेंगे। द्रौपदी काव्य की नायिका है और अन्य पात्र गौण पात्रों के रूप में कथा में सहायक बनते हैं।

### 6.5.1 मुख्य नारी पात्र :

#### 6.5.1.1 द्रौपदी :

महाभारत के नारीपात्रों में द्रौपदी का चरित्र सर्वाधिक आकर्षक तथा प्रभावकारी है। 'उत्तर महाभारत' की वह नायिका है, जो अथ से इति तक काव्यग्रंथ पर छापी हुई है। उनके चरित्र की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं।

##### 6.5.1.1.1 सौंदर्य की प्रतिमा :

द्रौपदी का सौन्दर्य अनुपम है। उसके सौंदर्य और तेज की विश्व में कहीं समता न थी। स्वयं कवि ने ही उसे रूप-सौंदर्य की मूर्ति कहा है -

“कन्यका यह, द्रुपद पुत्री द्रौपदी यह  
विश्व के ओजस, भरे सौंदर्य की  
प्रतिमूर्ति है  
कृष्णा कहो,  
या याज्ञसेनी  
ये सभी उपनाम होंगे।”<sup>63</sup>

अर्थात् द्रौपदी ओजसमयी सौंदर्यवाली युवती है। अपनी इसी सुन्दरता के बल पर ही वह पाँचों पतियों को अपने वश में किये हुए थी। उसने बचपन भले ही न भोगा हो, किन्तु अपने यौवन को वह बड़ी निकटता से पहचानती है। कवि ने द्रौपदी के यौवन की सुन्दरता का खुलकर वर्णन किया है।

“पिंडलियाँ है पुष्ट, जंघाएँ सघन है,  
 स्तम्भ कदली के स्वयं में ज्यों मगन है ।  
 बिम्ब क्वारें दो नितम्बों ने जुगाड़े,  
 सैनिकों की पीठ पर जैसे नगाड़े ।  
 करधनी से ही कमर का बोध होता,  
 उर-उरोजों में बड़े अवरोध होता ।  
 बाहुओं ने पहन ली अँगड़ाइयाँ - सी,  
 साँस में बहनेवाली पुरवाइयाँ - सी ।  
 कंठ मिसरी, अधर मधु का नाम जैसे,  
 नासिका की रेख पूर्ण-विराम जैसे ।  
 कान तक खींची हुई, मुस्कान मानो,  
 श्रवण के फिर से लगा हो बाण मानो ।  
 भाल निर्मल गगन - सा बेंदी उषा - सी,  
 केश की श्यामल पटा दिखती निशा - सी ।”<sup>64</sup>

इस प्रकार त्रिभुवन सुन्दरी द्रौपदी का रूप सौन्दर्य इतना मनमोहक हैं कि उनके स्वयंवर में आये हुए सभी दर्शक बड़ी बेकली और उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे कि यह परम सुन्दरी किसके गले में जयमाल डालेगी? यह सौन्दर्यवान सुन्दरी को देखकर ही शायद जयद्रथ और कीचक जैसे दुष्टों की काम-वासना भड़क उठी होगी ।

#### 6.5.1.1.2 तेजस्विनी और शक्ति स्वरूपा :

काबराजी ने द्रौपदी को तेजस्विनी और ओजस्विनी नारी के रूप में चित्रित किया है । उसकी तेजस्विता की जितनी प्रशंसा करे, उतनी कम है । कवि ने उसे तेज का पूंज कहा है । काबराजी ने कीचक के मुख से उसकी तेजस्विता की तारीफ करायी है । देखिए -

“सैरन्ध्री तुम !  
 यक्ष, देव, गंधर्व, नाग, किन्नर विद्याधर-  
 इनमें किसकी कन्या हो तुम?  
 चन्द्रदेव की प्रिया रोहिणी हो तुम?  
 अथवा

अलम्बुशा, उर्वशी, मेनका जैसी कोई दिव्य अप्सरा?  
 तुम इन्द्राणी  
 या फिर देवी सावित्री हो?  
 मंत्रपूत स्वाहा हो या तुम गायत्री हो?  
 तुम्हें निरखकर  
 नर तो क्या  
 नारी को मोहित होते देखा।”<sup>65</sup>

भारतीय संस्कृति में नारी को शक्ति का स्वरूप माना गया है। वह अपने एक इशारे मात्र से सृष्टिमें परिवर्तन ला सकती है। मैथिलीशरण गुप्त के मतानुसार स्वर्ग और नरक नारी के उर के भीतर ही होते हैं। नारीमन के ज्ञाता डॉ. किशोर काबरा ने भी नारी की शक्ति को पहचाना है। वे कहते हैं —

“स्त्री गहनतम कष्ट की अन्तिम घड़ी में  
 विपद के उस पार जाती है,  
 घीनौने पुरुष से  
 वह लाज अपनी खुद बचाती है।

द्रौपदी में भी इतना तेज और सामर्थ्य विद्यमान है। इसीकारण वह दुष्टों से अपने को बचा पाती है।

### 6.5.1.1.3 वीरधर्मा क्षत्राणी :

वीरता एवं द्रढ़ता क्षत्राणियों की विशेषता होती है। द्रौपदी भी वीर क्षत्राणी है। वह विपत्तियों से विमुख होकर हारजानेवाली नारी नहीं है, बल्कि एक विरांगना की तरह डटकर मुकाबला करनेवाली क्षत्राणी है। वन्य जीवन की कठिनाइयों को वह इसी बूतों पर सह सकती है। कवि ने उसकी वीरता का वर्णन इन दो पंक्तियों में दे दिया है। देखिए —

“धर्माधृत पौरुष है तुझ में  
 क्षत्राणी की गरिमा सारी।”<sup>66</sup>

कवि का कहना है कि द्रौपदी ने वन्य जीवन में जितने कष्ट सहे हैं, यदि कोई और नारी उसकी जगह पर होती तो मिट्टी के मटके की भाँति कभी की फूट जाती। अतः कहा जा सकता है कि द्रौपदी

एक वीर क्षत्राणी है ।

#### 6.5.1.1.4 कृष्ण भक्त :

कृष्णा कृष्ण के साथ अत्यन्त निकटतम संबंधो से जुड़ी हुई है । वह उसकी बहन भी है, सखी भी है और अनन्य भक्त भी । वह कृष्ण के साथ खुलकर अपने मन की मुसिबतों को प्रकट कर सकती थी । वह सत्यभामा से कहती है —

“पाँच पतियों से नहीं जो कह सकी मैं,  
कृष्ण से मैंने कहा है ।”<sup>67</sup>

वह कहती है कि कृष्ण और कृष्णा का संबंध दुन्यवी संबंधो से उपर अनन्य और अगोचर है, जो आकाश से भी ऊँचा और पाताल से भी गहरा है । उन्हीं के शब्दों में —

“अगम आकाश से ऊँचा,  
गहन पाताल से गहरा,  
अनोखा दिव्य वह सम्बन्ध  
गोचर भी,  
अकथ भी,  
अकथ्यमय भी ।”<sup>68</sup>

द्रौपदी कृष्ण की अनन्य भक्त है । जब-जब वह मुश्किलों में फँसी है, संकटों से सटी है, तब-तब उसे कृष्ण ने ही सहायता की है । कौरवों की सभा में जब ऋतुमती कृष्णा निर्वस्त्र की गई थी, कौरवों की क्रूरता की कीचड़ में फँसी थी, तब कृष्ण ही उसे सहायता करते हैं । वे ही खुद द्रौपदी के प्रेम की रक्षा करने के लिए अर्जुन के सारथी बनकर आ जाते हैं ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि द्रौपदी सही अर्थों में कृष्ण की अनन्य भक्त थी । कृष्ण के साथ उनके संबंध सारे स्वार्थों से उम्र, नातों-रीश्तों से परे, पवित्र एवं दिव्य था ।

#### 6.5.1.1.5 संघर्षमय जीवन :

द्रौपदी का सारा जीवन दुर्भाग्य की यात्रा रहा । वह आजन्म अपने-आप से जूझती रही है । उसके जीवन की विकट विडम्बना है कि वह शैशव एवं बचपन को नहीं भोग पायी और केवल नियति के उद्देश्य को पूरा करती रही ।<sup>69</sup> इस बात का उसे जीवनभर अफसोस रहता है ।

“गर्भ में मैं रह न पाई,  
जन्म मेरा हो न पाया  
भोग मैं पाई नहीं शैशव  
नहीं बचपन  
भोगती हूँ जन्म से  
केवल शयानापन।”<sup>70</sup>

जीवन में वर की पसंदगी से ही जीवनपथ की दिशा द्रष्टिगत हो जाती है। द्रौपदी का दुर्भाग्य है कि वह चाहकर भी अपने मन का वर नहीं चुन सकी। अपने स्वयंवर में आये हुए कर्ण के सौन्दर्य की अनुपम आभा से वह आकृष्ट हो गई थी। उसके मन में कर्ण के प्रति प्रेम भी पैदा हुआ था जिसे कवि ने व्यक्त किया है —

“आह कितना चपल तेजस्वी युवक है कर्ण!  
कितना धीर, कितना वीर!  
कितना आत्म विश्वासी युवक है कर्ण!

X    X    X

बड़ा भोला-बड़ा मोहक,  
प्रभामय दिव्य, दानी, साहसी है कर्ण।  
सब कुछ मैं विसर्जित कर सकूँगी  
घर मिले मुझको भले ही पर्ण-सा,  
किन्तु वर मिल जाए मुझको कर्ण - सा।”<sup>71</sup>

कृष्णा की कमनशीबी है कि कर्ण के प्रति सहज आकर्षण होने के बावजूद भी उसे वर के रूप में अर्जुन को चुनना पड़ता है। द्रौपदी के रूप में कवि ने एक विवश, पीड़ित तथा असहाय नारी की अन्तर्व्यथा को उजागर किया है। उसका जीवन द्वन्द्वों एवं संघर्षों की करूण कहानी है। कवि ने उसके संघर्षों के जीवन संग्राम को इन पंक्तियों में उभारा है —

“अरे द्रौपदी! तेरा जीवन  
द्वन्द्वों की है एक कहानी।  
थोड़ा दूध, पसीना ज्यादा,  
गहरा सागर, छिछला पानी

अरे द्रौपदी!  
 तेरे बिम्ब सभी लड़ते बाहर परिजन से,  
 भीतर प्रतिबिम्बों से तू लड़ती रहती है।  
 जितने कमल बिछाती है शय्या के ऊपर,  
 उतनी झड़बेरी मन में गड़ती रहती है।  
 जितनी ढालें बढ़ती है जीवन तरुवर की,  
 उतने छाले जड़ में भी पड़ते रहते हैं।  
 सबकुछ खोकर सबकुछ पाया,  
 सुख की केवल मिली न छाया।”<sup>72</sup>

इस प्रकार द्रौपदी का समग्र जीवन संघर्षों का महासागर है। उसके चरित्र के माध्यम से कवि ने नारी जीवन की करूणा की सूक्ष्म रेखाएँ उभारी है।

#### 6.5.1.1.6 आदर्श गृहिणी एवं पति परायणा :

‘उत्तर महाभारत’में काबराजी ने पाण्डव पत्नी द्रौपदी को आदर्श सेवा परायण गृहिणी तथा कर्तव्यदक्ष पतिपरायणा नारी के रूप में चित्रित किया है। द्रौपदी अपने गृहस्थ जीवन में गृहिणी के सब मूल्यों और मर्यादाओं एवं कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक निर्वाह करती है। वह आदर्श नारी के उत्तरदायित्व से भली-भाँति सुपरिचित है। परिवार छोटा हो या बड़ा गृहिणी के सफल संचालन पर ही परिवार का आधार होता है। द्रौपदी के माध्यम से कवि ने गृहस्थ जीवन की श्रेष्ठता का अंकन किया है। वह कहती है —

“मुझे तो अपनी ही गृहस्थी चाहिए  
 हाँ एक छोटी सी  
 सहज-सी, शांत सी अपनी गृहस्थी।”<sup>73</sup>

अच्छी गृहस्थी सफल जीवन की निशानी है। वर्तमान आपा-धापी के युग में विभक्त परिवार की वामा अपने परिवार के दो या तीन प्राणियों की गृहस्थी बड़ी मुश्किल से सँभाल पाती है। झंझटों के आते ही उसकी गृहस्थी की नाव कहीं बवंडरों में फँस जाती है या डूब जाती है। जिसके पास गृहस्थी की गुरुचाबी होती है, उसके परिवार की नौका पार हो जाती है। द्रौपदी और सत्यभामा वार्तालाप प्रसंग में वह अपने सुखमय दाम्पत्य जीवन की गुरुचाबी का रहस्य बताती है। जो उसने



अपनी सास से पाई है। वह चाबी यह है —

“भिन्न स्थिति में,  
व्यक्ति में  
स्थल में  
हंमेशा दूध-पानी की तरफ घुलकर  
समय के साथ बहना।  
ग्रंथ में इसको नहीं मैंने पढ़ा है  
और गुरु ने भी नहीं मुझको सिखाया।  
सास की चट्साल से इसको लिया है,  
समय के गुरु ने मुझे यह सब पढ़ाया।”<sup>74</sup>

द्रौपदी विभिन्न परिस्थितियों एवं विभिन्न व्यक्ति में वास्तव में दूध और पानी की तरह रही है। उसे सही अर्थ में अर्जुन की पत्नी बनना था किन्तु परिवार में कलह न हो इसीलिए परिस्थितियों से समझौता करके पाँच पतियों से झुड़े रहकर अनुकूलन बनाये रखती है।

सत्यभामा द्रौपदी की गृहस्थी से बड़ी मोहित थी। वह कहती है कि द्रौपदी तुम्हें पाँच पतियों से कितना संतोष है। मानो तीनों लोकों का समूचा कोष ही मिल गया हो। यहाँ निर्जन वन में रहते हुए भी पाण्डवों को तुम्हारा कितना ध्यान रहता है। तुम भीतर भी और बाहर भी आनंदित हो। एक मैं हूँ कि अपने एक पति को वश में नहीं कर पाई हूँ। तुम किस प्रकार पाँच पतियों को वश में रखती हो? क्या तुम्हारे पास ऐसा कोई मंत्र है? कोई ऐसा तंत्र है? या व्रत, जप, तप कौन-सी जड़ी बूटी से तुम उन्हें वश में करती हो यह भेद बताओ। तब कृष्णा अपनी सफल गृहस्थी का मंत्र बताती है —

“एक पति हो  
पाँच पति हो,  
लाख पति हो,  
क्या प्रयोजन?  
सफल पत्नी के लिए  
इस जगत में बस  
मंत्र दो हैं -  
सन्तुलन और समायोजन।”<sup>75</sup>

सन्तुलन की स्थिति को वह यों समझाती है —

“सन्तुलन -  
किस समय  
किस - किसके लिए  
किस जगह  
क्या-क्या उचित हैं -  
इस बोध का अन्तर्जगत में बने रहना ।”<sup>76</sup>

समायोजन को वह इस प्रकार समझाती है —

“समायोजन  
भिन्न स्थिति में,  
व्यक्ति में,  
स्थल में  
हंमेशा दूध-पानी की तरह धुलकर  
समय के साथ बहना ।”<sup>77</sup>

द्रौपदी ने गृहिणी धर्म को भली-भाँति निभाया है किन्तु वह अपनी मनोव्यथा से मुक्त नहीं हो पायी है। वह सत्यभामा से कहती है कि - भले ही तु पाँच पतियों से जुड़ी हुई इस द्रौपदी को आदर्श पत्नी मानती हो किन्तु मैं जानती हूँ कि मैं समाज की आदर्श नहीं बन पाऊँगी। हमारे समाज की यह व्यवस्था नहीं है कि इस प्रकार कोई नारी पाँच पतियों से जुड़ जाए। यह तो हमारी विवशता है। कोई भी व्यक्ति या विश्व इसे आदर्श स्थिति नहीं मानेगा। कवि के शब्दों में —

“यह व्यवस्था तो नहीं है,  
यह विवशता है हमारी।  
पाँच पतियों को नहीं  
स्वीकारती कोई व्यवस्था।  
यह नहीं आदर्श स्थिति है,  
फिर भले वह  
व्यक्ति हो या विश्व हो ।”<sup>78</sup>

द्रौपदी को इस बात का हंमेशा अफसोस रहा है कि मैं सदा समय के साथ बही हूँ। हर हाल में पतियों के साथ रही हूँ फिर भी मैं अनुकरण के योग्य पत्नी एवं पूज्य माता नहीं बन पाई। एक जनकपुत्री जानकी पति के साथ रहकर भी और उससे अलग होकर भी जगत जननी कहलायी। किन्तु मैं जान की बाजी लगाकर भी आदर्श नारी नहीं बन पायी। वह अपनी इस पीड़ा को सत्यभामा के समक्ष प्रकट करती है —

“मेरा नाम लेकर  
अब नहीं पूजा करेगी नारियाँ,  
या व्रत नहीं मेरा रखेगी क्वारियाँ।  
या सींचने को अब न जाएगी कहीं कोई  
अरे, इस द्रौपदी के नाम  
पीपल और तुलसी क्यारियाँ।”<sup>79</sup>

महाभारत की द्रौपदी की तरह ‘उत्तर महाभारत’ की द्रौपदी भी पतिपरायणा नारी है। हाँलाकि वह पाँच पतियों से जुड़ी हुई है, बल्कि वह हंमेशा पाँचों की इच्छा के अधिन रही है। एक आदर्श पत्नी के बंधन से बँधकर रही है। पाँच धर्मों में वह विभाजित हुई है। पाँचों पतियों में समभाव रहे, परिवार में कोई कलेश पैदा न हो, इसी हेतु एक व्यवस्था बनाई गई है। पाँच पतियों में उसका विभाजन कुछ इस प्रकार हुआ था।

“पाँच भाई के लिए  
तिथियाँ विभाजित,  
दिन विभाजित,  
नरवत-ग्रह-पल-छिन विभाजित।”<sup>80</sup>

एक पति परायणा नारी होने के नाते द्रौपदी ने अपने को इस व्यवस्था के अनुकूल बना लिया, यही उनके पत्नी धर्म का परिचायक है। वैसे नारी के प्रमुख पाँच रूप होते हैं - माँ, बहन, सम्पति, स्वामिनी और पत्नी। ये सभी रूप द्रौपदी में विद्यमान हैं। इन्हीं रूपों से द्रौपदी अपने पाँचों पतियों के साथ विभिन्न संबंधों से जुड़ी हुई है। उसने अपने पाँचों पतियों के प्रति पातिव्रत धर्म का निर्वाह किया है। पाँचों पतियों के संबंध को वह इस प्रकार बताती है —

“माँ रही सहदेव की मैं,  
नकुल की प्रिय बहन,  
सम्पति युधिष्ठिर की ।  
भीम की मैं स्वामिनी थी,  
पत्नी मात्र अर्जुन की रही मैं ।”<sup>81</sup>

द्रौपदी अपने कक्ष में पाँचों पतियों के साथ अलग-अलग रूप में द्रष्टिगत होती है । जब धर्मराज युधिष्ठिर उनके कक्ष में होते हैं, तब केवल सम्पति मात्र का भाव उसके हृदय में होता है । युधिष्ठिर धर्मचर्चा, शास्त्र-चिन्तन, नीति एवं कार्य कारण की गहन दार्शनिक गुत्थियों का निवारण ही करते रहते हैं । द्रौपदी का प्रणय निवेदन भी उसे भक्ति लगता है । द्रौपदी का शृंगार उसे तारिकाओं का गगन शृंगार लगता है । चाहे भले ही नीति-रीति की बातों में वे जीत जाते हो, किन्तु प्रीति-रति में वे परास्त हो जाते थे । वह कभी युधिष्ठिर की अर्धांगिनी-सा भाव मन में नहीं ला पाई थी । उसके मन में यही टीस बनी रहती है कि मैं युधिष्ठिर के लिए केवल सम्पत्ति मात्र हूँ । जिसे वह खुद भी जान नहीं पाती है । द्रौपदी के शब्दों में —

“प्रणय के उत्ताप में यदि  
मैं विकल कुछ कह रही हूँ ।  
वे समझते - भक्ति में  
उन्मत्त होकर बह रही हूँ ।  
मैं कभी दीपक छिपाए  
रात में अभिसार करती ।  
वे समझते - तारिकाएँ  
गगन का शृंगार करती ।  
द्यूत उनका प्रिय विषय है,  
तैरकर उस पार जाते ।  
रीति में वे जीत जाते,  
किन्तु रति में हार जाते ।  
मैं कभी अर्धांगिनी - सा  
भाव मन में ला न पाई ।

मात्र मैं सम्पति हूँ -

यह तीस मन से जान न पाई।”<sup>82</sup>

जिनके वक्ष में द्रौपदी गृहस्वामिनी है ऐसा भाव छिपा हुआ है, ऐसे भीम जब उसके कमरे में होते हैं, तब वे व्यायामशाला, पाकशाला और विश्रामशाला तीनों स्थान पर त्रिलोकीनाथ की तरह साथ रहते हैं। वे सदा हाथ जोड़े हुए एक सेवक की भाँति उसके सामने पेश आते थे। कहने को तो वे भी द्रौपदी के पति ही थे, किन्तु वे उनके रक्षक मात्र ही बनकर रह जाते हैं। द्रौपदी के शब्दों में —

“देव कोई हाथ बाँधे

एक सेवक - सा खड़ा था।

किन्तु पति के स्थान पर थे

भीम रक्षक मात्र मेरे।

अनछुए ही रह गए सब

हाथ मधु के पात्र मेरे।”<sup>83</sup>

कामदेव की भाँति सौन्दर्य से मण्डित मूर्ति समान नकुल जब उसके कक्ष में होते हैं, तब पूरे कक्ष में देवर-भाभी का - सा वातावरण छा जाता था। द्रौपदी नकुल के साथ अपना संबंध इस प्रकार बताती है —

“नकुल पति के स्थान पर

मुझको लगे हरदम सखी - से।

एक कच्ची धूप में

हँसते हए सूरजमुखी से।

वासना के स्थान पर थी

एक निर्मल निर्वसनता।

लुब्ध प्रेमी की सहजता

प्रखर निश्छल निर्व्यसनता।

दग्ध व्रण पर सौम्य शीतल

और सुरभित बकुल जैसे।

एक नटखट निष्कपट

चंचल युवक थे नकुल जैसे ।”<sup>84</sup>

द्रौपदी को महान विदुषी समझनेवाले नकुल जब उसके कक्ष में होते हैं, तब वे गहन ज्ञानी, चिन्तक, साधक एवं कालद्रष्टा की भाँति मौन-मुक से रहते हैं। मानो कोई झंझावात में फँसे हुए हो। वे प्रतिदिन नियति की गति को देखा करते थे। कभी वे ग्रह-नक्षत्र, छिन-पल गिनते रहते हैं, तो कभी गत-आगत को वे समय की सुझियों से मानो सी रहे हो ऐसा प्रतीत होता था। द्रौपदी बताती हैं —

“एक झंझावात को  
सहदेव हरपल जी रहे हैं।  
प्रेम के क्षण प्रेम के -  
परिणाम की पदचाप सुनते।  
झाँककर मुझ में न जाने -  
क्या स्वयं चुपचाप गुनते।  
दीखता है आज ही सब  
कल जिसे हम भोगते हैं।  
क्या विवशता है कि जिससे  
वे नहीं कुछ टोकते हैं।”<sup>85</sup>

एक पतिपरायणा नारी होते हुए भी द्रौपदी इन चारों से कभी पति का - सा प्रेम नहीं पा सकी। केवल अर्जुन को ही वह अपना भरतार बना पाई है। जब उसके प्राण प्यारे पार्थ उसके कक्ष में होते हैं, बत पुरे कक्ष में मादकता छा जाती है। अपना तन-मन सब कुछ वह उस पर न्यौच्छावर कर देती है। अर्जुन का साथ पाकर उसके हृदय की धड़कने संपूर्ण समर्पण के लिए उत्सुक होने लगती हैं। अर्जुन के साथ की अपनी अनुभूतियों का वर्णन करती हुई वह कहती हैं —

“आह, अर्जुन के निकट मैं  
छलकती गागर बनी थी।  
और गागर से उबरकर  
तृप्ति का सागर बनी थी।  
उस समय मैं भूल जाती  
चार पति है और मेरे

मात्र अर्जुन ही जगत में  
एक है चितचोर मेरे ।”<sup>86</sup>

द्रौपदी चाहती है कि वह अर्जुन के हृदय के एक कोने में स्थापित मूर्ति की तरह प्रतिष्ठित रहे किन्तु अर्जुन हमेशा उससे दूर ही रहे या रखे गये। वह उसे पूरी तरह समर्पित हो ही नहीं सकी और एक पत्नी की यह पीड़ा उसके मन में जीवन पर्यन्त बनी रहती है - देखिए —

“चाहती थी - वे रहे  
छिपकर हमेशा आवरण में।  
किन्तु उनका मन बसा था  
विश्व के वातावरण में।  
स्वर्ग से पाताल तक बस  
गूँजता था एक ही स्वर -  
‘इस समय तो वीर अर्जुन  
धनुर्धारी एक ही नर ।’ ”<sup>87</sup>

जिसे सही अर्थ में पति के रूप में स्वीकार किया है, वह अर्जुन द्रौपदी के समक्ष अभिव्यक्त नहीं हो पाता था। द्रौपदी चाहती है कि उसके प्राण प्रिय पार्थ हरदम उसके पास रहे किन्तु वे हमेशा प्रवासी की तर दूर ही रहे। पति के वियोग में एक पत्नी की व्यथा द्रष्टव्य है —

“भोग में लगता नहीं था मन,  
हमेशा बैठकर करती प्रतीक्षा  
बाट पर।  
कब लगेगी डामगाती नाव  
अवघट घाट पर?”<sup>88</sup>

अर्थात् जब-जब अर्जुन द्रौपदी से दूर रहे हैं, द्रौपदी हमेशा उन्हीं के खयालों में खोयी रही है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि द्रौपदी एक पतिपरायणा नारी है। जो हर हाल में, प्रति पल पतियों के आधीन बनकर रही है। उसने अपना पत्नी धर्म भली-भाँति निभाया है किन्तु उसकी नियती यही है कि पतियों ने उसके नारी हृदय को नहीं देखा।

### 6.5.1.1.7 सन्धि की प्रबल विरोधी :

द्रौपदी के मतानुसार सन्धि कायरता का दूसरा नाम है। कौरव सभा के समक्ष संधि का प्रस्ताव लेकर जा रहे कृष्ण को रोकते हुए वह कहती है कि - 'संधि का प्रस्ताव लेकर जाना कायरता का कार्य है। संधि के बजाय अब तो युद्ध ही अनिवार्य है। और तुम क्यों युद्ध की दावाग्नि को संधि से बुझाना चाहते हो? माधव के सामने वह कौरवों के क्रूर आचरण का कच्चा चिट्ठा खोल देती है। उसे उस कौरव सभा की याद दिलाती है, जिसमें बुजुर्ग समझे जानेवाले दंभी एवं अभिमानियों के बीच उसे नंगी कर दी गई थी और वे सब चुप थे। साथ ही साथ वह संधि का पूर्व परिणाम भी कृष्ण को दिखाती हुई कहती है —

“संधि का परिणाम  
आएगा नहीं कुछ  
युद्ध के अतिरिक्त  
भुखे कौरवों को  
और भाएगा नहीं कुछ।”<sup>89</sup>

द्रौपदी कौरव सभा के बीच हुई अपनी दुर्दशा का चित्रण भी करती है। वह कृष्ण से कहती है —

“मगर ये बाल बिखरे देख लो मोहन!  
जिन्हें दुःशासनों ने चीथ डाला,  
चार चीथड़े देख लो मोहन !  
अकेली स्त्री सभा के बीच,  
सबसे माँगती थी भीख,  
रोती थी, कलपती थी,  
बड़े आँसू  
गरम निश्वास में डूबी  
बिलखती थी  
किसीने दी दया की भीख उस दिन?  
सुनी थी क्या किसीने चीख उस दिन?”<sup>90</sup>



इस प्रकार द्रौपदी संधि के खिलाफ थी। अंत में जाने से पूर्व वह कृष्ण को युद्ध की अनिवार्यता भी समझा देती है और अपने सौगन्ध देकर कहती है कि यदि सन्धि से युद्ध रूक जाए तो रोक लेना किन्तु अगर वे नहीं माने तो युद्ध की ललकार करके ही आना। उसीके शब्दों में देखिए —

“संधि करने जा रहे हो,  
मैं न रोऊँगी!  
मगर देती तुम्हें सौगन्ध  
मेरे खुले बालों की!  
रूके यदि युद्ध इससे  
तो इसे स्वीकार कर लेना।  
अगर दे नोक सूई की  
उन्हें तैयार कर लेना,  
नहीं माने अगर वे,  
युद्ध की ललकार कर देना।”<sup>91</sup>

#### 6.5.1.1.8 पुत्र वत्सल माँ :

भारतीय संस्कृति में माँ का स्थान देवताओं से भी ऊँचा बताया गया है। ‘जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरियसी’ कहा जाता है। प्रत्येक औरत को अपने बच्चों के प्रति असिम वात्सल्य होता है। द्रौपदी भी पुत्र वत्सल माँ है। द्रौपदी के द्वारा काबराजी भारतीय नारी का पुत्र प्रेम और माँ की त्याग भावना का चित्रण करने में सफल हुए हैं। देखिए —

“मेरी गोद में से  
छीनता है कौन  
मेरा लाड़ला अभिमन्यु?  
मेरे पुत्र पाँचों ! ओ घटोत्कक्ष !!  
स्नेह के आधार,  
तुम सब हो कहाँ पर?  
माँ तुम्हारी राह ताकती है यहाँ पर।”<sup>92</sup>

अपने बच्चों को खो देने के बाद उनकी स्मृतियों में भी चिंतित रहना उनके असीम वात्सल्य का परिचायक है। अपने लाड़ले बच्चों की हत्या करनेवाले अश्वत्थ की वह बड़े ही कटु शब्दों में आलोचना करती है —

“तुम तो भूत-प्रेतों से  
पिशाचों से  
कई छा बढ़ गए आगे।  
अभागे,  
भ्रूण-हत्या ही बचा था कर्म तेरा?  
घोलकर सब पी गया है धर्म तेरा!  
हो रही इच्छा कि तेरा रक्त पी लूँ।  
भेड़ियों को माँस तेरा काटकर दे दूँ।”<sup>93</sup>

इतना ही नहीं उत्तरा के गर्भ में पल रहे अर्जुन के अंश को जब अश्वत्थ ब्रह्मास्त्र से मिटाने जाता है तब वह अपने पतियों को ललकारकर चुनौती भी देती है —

“वीर अर्जुन !  
भीम प्यारे !  
सुन रहे हो तुम,  
यहाँ क्या कह रहे हैं लोग सारे?  
दौड़कर अश्वत्थ को  
तुम बाँध देना  
बाँधकर लाए नहीं तो  
आज ही तुम द्रौपदी को काँध देना।  
भ्रूण हत्यारे नराधम को  
अगर तुम ले न आए,  
मैं नहीं पल भर जिऊँगी,  
मैं यही पर विष पिऊँगी।”<sup>94</sup>

इस प्रकार द्रौपदी पुत्र-वत्सल माँ है।

### 6.5.1.1.9 कर्तव्यबोध का अनुभव करानेवाली :

जब पुरुष जीवन संग्राम में विपत्तियों से जुझते हुए थक जाता है, हार जाता है या अपने कर्तव्यों से विमुख होने लगता है, तब नारी उसे प्रेरणा एवं बल प्रदान करती है। आदर्श गृहिणी एवं वीर क्षत्राणी होने के साथ-साथ कर्तव्यशीलता द्रौपदी के चरित्र की अन्य विशेषता है। कुरुक्षेत्र के महासमर के बाद युधिष्ठिर बड़े व्यथित से थे, तब द्रौपदी ने उसे ढाढ़स बँधायी थी। वह युधिष्ठिर को अपने कर्तव्य का एहसास दिलाते हुए कहती है —

“अपने मन की दुर्बलता को त्यागो राजन !

कर्मक्षेत्र में

कुरुक्षेत्र की तरह रहो स्थिर

जीवन से मत भागो राजन ।”<sup>95</sup>

इस प्रकार डॉ. किशोर काबरा ने द्रौपदी के परम्परागत अलौकिक चरित्र को सर्वथा नवीन तथा मौलिक आधार प्रदान कर उसे गौरवान्वित किया है। साथ ही साथ स्त्री सहज मनोभावो को भी चित्रित किया है। ‘जो द्रौपदी काम की उर्ध्वचेतना के कारण पूरे महाभारत को सँभाले हुए हैं, वहीं द्रौपदी काम की प्रच्छन्न निम्नगामी वासना के कारण हिमशिखर पर गिर पड़ती है और पूरा महाभारत बिखरने लगता है।’<sup>96</sup> ‘यह अकेले पार्थ को ही चाहती थी; शेष चारों को महज निबाहती थी’ इस कलंकित वाक्य के द्वारा द्रौपदी के मन की दुर्बलता का भी चित्रण कर दिया है।

### 6.5.2 गौण नारी पात्र :

#### 6.5.2.1 सत्यभामा :

सत्यभामा कृष्ण की आठ पटरानियों में से एक है, जो इस काव्यग्रंथ में गौण नारी पात्र के रूपमें द्वितीय सर्ग में हमारे समक्ष आती है। काव्य नायिका द्रौपदी जब द्वैतवन में पाण्डवों के साथ रहती है, तब कृष्ण पाण्डवों से मिलने वहाँ आते हैं और सत्यभामा भी उनके साथ है। कृष्ण की पटरानी होने के नाते वह रत्नआभूषणों से सज्ज है। वह द्रौपदी को कृष्ण से कुछ माँगने की बात करती है। कवि लिखते हैं —

“रत्न मुक्ता और मणियों से जड़े आभूषणों में

बह रही है सत्यभामा,

लक्षणा और व्यंजना में

द्रौपदी से कह रही है सत्यभामा —  
तीन मुट्ठी तन्दुलों में  
पा गया सब कुछ सुदामा ।”<sup>97</sup>

सत्यभामा द्रौपदी के साथ गृहस्थी संबंधी बातें करती है। वह यह देखकर आश्चर्य प्रकट करती हैं कि द्रौपदी को पाँच पतियों से कितना सन्तोष मिल रहा है। उसके मतानुसार द्रौपदी को मानो तीनों लोकों का पूरा कोष मिल गया हो। एक नारी सहज उत्सुकता को प्रकट करते हुए सत्यभामा द्रौपदी से मन की बात बताते हुए कहती हैं कि - तुम पाँच पतियों के बीच भी कितनी स्वस्थ, सुन्दर और उल्लसित दिखाई देती हो। एक मैं हूँ जो अपने एक पति को भी वश में नहीं कर पाई हूँ। वह कहती है -

“एक पति अब तक नहीं वश में हुआ है।  
आठ हम पटरानियाँ है,  
फिर हजारों रानियाँ है,  
किन्तु  
नटखट नंद के ये पूत  
आँचल से नहीं बँधते।  
न अब तक  
वासना ने ही कभी इनको छुआ है।  
किस अनोखे पुरुष - सा इनका हिया है,  
जो नहीं वश में हुआ है।”<sup>98</sup>

वह द्रौपदी से पाँचों पतियों को वश में रखने का रहस्य भी पाने की कोशीश करती है। वह द्रौपदी से पुछती है —

“बहन बोलो !  
किस अनोखे सूत्र से ये  
पाँच पति वश में हुए है?  
बहन बोलो !  
कौन-सा है मंत्र,  
जिससे बाँध रखती हो सभी को?

कौन-सा है तंत्र,  
जिससे साँध रखती हो सभी को?  
कौन-सा व्रत, कौन-सा जप, कौन-सा तप?  
कौन-सी है जड़ी - बूटी?  
किस तरह वश में हुए हैं पाँच पति?  
कुछ भेद खोलो;  
बहन बोलो ।”<sup>99</sup>

इस प्रकार सत्यभामा अच्छी गृहस्थी एवं पति को वश में करने का रहस्य द्रौपदी से पूछती है और द्रौपदी भी - ‘एक नारी की व्यथा नारी ही समझ सकती है’ - यह मानकर पाँच पतियों के बीच का अपना अनुकूलन उसे बता देती है। और इस प्रकार सत्यभामा द्रौपदी से अच्छी गृहस्थी की कुंजी पा लेती है।

### 6.5.2.2 उत्तरा :

‘उत्तर महाभारत’ में पाँचवे सर्ग में ‘उत्तरा’ हमारे समक्ष उपस्थित होती है। नदीघोष पर्वत के शिखर से लड़खड़ाता हुआ अर्जुन जब हिमशिला पर गिरता है, तब अर्जुन अतीत की ओर झाँककर गहरे चिन्तन में डूब जाता है। वह परिक्षित के बेटे जनमेजय को याद करता है, जो अपनी दादीमाँ उत्तरा से एक कहानी सुनने की हठ कर रहा है और बाल हठ की पूर्ति हेतु उत्तरा उसे एक कहानी सुनाती है। अर्जुन सोचता है —

“अरे, यह तो किशोर जनमेजय है  
जो आज उत्तरा दादीमाँ से  
एक कहानी सुनने की हठ किये हुए है ।”<sup>100</sup>

उत्तरा कहानी के माध्यम से कौरवों और पाण्डवों के जीवन का पुरा इतिहास बता देती है। कवि ने पंचमसर्ग की कथा उत्तरा के माध्यम से कुछ नये अंदाज से हमारे समक्ष रखी है। जनमेजय रट लगाता रहता है —

“नींद नहीं आती दादी माँ !  
एक कहानी हाँ, दादी माँ !  
एक कहानी हाँ, दादी माँ !”<sup>101</sup>

और उत्तरा भी यों कहती हुई कहानी सुनाती जाती है —

“सुन जनमेजय, एक कहानी,  
बड़ी पुरानी एक कहानी ।”<sup>102</sup>

बीच-बीच में जनमेजय पुछता रहता है —

“फिर आगे क्या हुआ सुनाओ,  
दादी माँ मत बात बनाओ ।”<sup>103</sup>

और दादीमाँ उत्तरा भी यों कहती हुई कथा के प्रवाह को आगे बढ़ाती जाती है ।

“जनमेजय, ले कथा सुनाऊँ,  
नहीं किसी की व्यथा सुनाऊँ ।”<sup>104</sup>

कहानी के कथा सूत्रों को सँजोते-सँजोते उत्तरा जनमेजय के समक्ष कौरवों और पाण्डवों का बचपन, गुरूद्रोण के आश्रम की शिक्षा के विभिन्न प्रसंग, अर्जुन की धनुर्विद्या, कौरवों और पाण्डवों की परीक्षा, पाण्डवों द्वारा द्रुपद को बाँधकर लाने की घटना, एकलव्य की गुरूदक्षिणा, द्रौपदी स्वयंवर का प्रसंग एवं भरी सभा में हुआ द्रौपदी का अपमान, लाक्षागृह एवं वनवासकाल की सभी घटनाएँ क्रमशः वह बताती जाती है ।

हिमशिला पर पड़े हुए अर्जुन अतीत के चलचित्रों को देखता जाता है । जनमेजय के बाद अर्जुन उत्तरा के पात्र को अपने स्मृतिपटल पर अंकित करता है । कवि ने अर्जुन के माध्यम से उत्तरा के जीवन चरित्र को प्रकाशित किया है । अर्जुन हिमशिला पर गीरा हुआ ही सोचता है —

“कौन?  
उत्तरा तुम?  
पैरों में घुँघरू कब तक  
साथ तुम्हारा देंगे बेटी !  
अब तुम ही आधार बनोगी  
कुरूवंशज की  
तुमसे ही इतिहास सहारा लेंगे बेटी ।  
तुम ही एक कड़ी हो,  
जिसमें

हम सब व्यथा बुनेंगे बेटी !  
 मेरे पौत्र-प्रपौत्र तुम्हीं से  
 मेरी कथा सुनेंगे बेटी !  
 ओ विराट की कन्या,  
 तुम कितनी महान हो ।”<sup>105</sup>

अर्जुन अपने जीवन की ओर सिंहावलोकन करते हुए उत्तरा से मन ही मन बातें करता हुआ विभिन्न प्रसंगों को उकेरता है। वह स्मृति के उन पन्नों को उलटता है, जब वनवास के तेरहवें साल में अज्ञातवास में अर्जुन वृहन्नला बनकर विराट के घर उत्तरा को नृत्य सिखाता है। वह कहता है —

“सबने चाहे यहाँ नपुंसक वृहन्नला कहकर  
 अपमान किया है बेटी !  
 लेकिन तुने गुरु कहकर  
 मेरा सम्मान किया है बेटी !”<sup>106</sup>

अर्जुन उत्तरा के समक्ष अपना सारा भेद खोलकर बताता है। वह कहता है —

“कल विराट को पता चलेगा —  
 मैं अर्जुन हूँ,  
 नाच उठेंगे वे भी  
 मुझ पर न्यौच्छावर कर देंगे सब कुछ।  
 और कदाचित्  
 बेटी  
 तेरा ब्याह रचाना मुझसे चाहें  
 लेकिन मेरा प्रण सुन ले तू।  
 चाहे बदले सूर्य-चन्द्रमा अपनी राहें,  
 मैं तुझको बेटी मानूँगा।  
 जब तक है मेरे प्राणों में प्राण बालिके !  
 अर्जुन, तुझको वधू नहीं  
 हाँ, पूत्रवधू का देगा उत्तम स्थान बालिके।  
 मेरा पुत्र अभिमन्यु

तुम्हारे सपनों का रखवाला होगा ।  
 तुम दोनों का पुत्र  
 हमारी आँखों का उजियाला होगा ।  
 और बाद में उसका बेटा  
 दादी माँ कह तुझे बुलाए ।  
 तू दादी माँ बनकर उसको  
 हम लोगों की कथा सुनाए ।”<sup>107</sup>

इस प्रकार अर्जुन के पूर्व कथनानुसार बाद में उत्तरा अपने पौत्र को कौरवों-पाण्डवों की कथा कहती है । गौण नारी पात्र होते हुए भी उत्तरा का पात्र अपने आप में एक विशेष महत्व रखता है । इस पात्र के माध्यम से कथा का प्रवाह अवरुद्ध एवं सुचारु रूप से प्रवाहित होता है ।

### 6.5.3 अन्य नारी पात्र :

#### 6.5.3.1 कुन्ती :

‘उत्तर महाभारत’में कुन्ती के पात्र का कहीं-कहीं नामोल्लेख मिलता है । उसके चरित्र को अग्रता नहीं दी गई । इस काव्यग्रंथ में प्रथम, पंचम, षष्ठ और सप्तम सर्ग में उसका नामोल्लेख मिलता है ।

काव्यग्रंथ के प्रथम सर्ग में कुरुक्षेत्र की विभीषिका को देखते हुए अपने स्वजनों की मौत का दुःख प्रकट करते हुए पाण्डवों की व्यथा प्रकट करते हुए कुन्ती का उल्लेख किया गया है । पाण्डव कर्ण की मौत पर दुःख प्रकट करते हुए सोचते हैं —

“उस अभागे कर्ण को भी  
 मिल गई दो-चार बूँदें अश्रु की इस पार,  
 कुन्ती के अजाने पुत्र का भी हो गया उद्धार ।  
 जीवनभर उपेक्षा का पिया था क्षार जिसने ।”<sup>108</sup>

पंचम सर्ग में जब अर्जुन हिमशिला पर गिरता है और अतीत की स्मृतियों में खो जाता है, तब वह कर्ण के साथ अपनी माँ कुन्ती को भी याद करता है । उसे बड़ा दुःख है कि कर्ण भी कुन्ती का ही बेटा होते हुए भी वह कभी उसके साथ बंधुता न निभा सका वरन् उसे अपना शत्रु ही समझता रहा । वह कहता है —



“अरे दानी और त्यागी कर्ण,  
मैं तुझको हमेंशा शत्रु ही कहता रहा !  
छिनवा दिए तेरे कवच-कुण्डल  
उपेक्षित बन्धु,  
कुन्ती के बहाने ले लिए सारे वचन तुझसे ।”<sup>109</sup>

कुन्ती को भीम बहुत प्यारा है। महाप्रस्थान के समय भीम जब सोमेश्वर शिखर पर गिरता है, तब कवि ने एकबार फिर से कुन्ती को याद किया है।

“पवन का उच्छ्वास प्यारा भीम !  
कुन्ती का सबल विश्वास प्यारा भीम !  
गिरकर रह गया है भीम !”<sup>110</sup>

कुन्ती को अपने बेटों पर बड़ा नाज़ है। उनकी हिम्मत और शौर्य से वह प्रसन्न है। बकासुर वध के प्रसंग को याद करते हुए भीम की स्मृतियों के माध्यम से कवि ने कुन्ती के चरित्र को उभारा है। बकासुर वध प्रसंग के बारे में भीम सोचता है कि - मैं किस प्रकार माता कुन्ता एवं चार भाइयों के साथ भील परिवार निद्रित द्वार पर पहुँचा था और विप्र के बदले में बकासुर का भोजन लेकर गया था और तुरंत उसकी कपाल क्रिया कर दी थी।

पाँचों पाण्डव कुन्ती के आदेश को सर आँखों पर रखते थे। भीम का हिडिम्बा के साथ विवाह करने का आदेश कुन्ती ने दिया था। कवि ने लिखा है —

“चकित भाई-माँ, हिडिम्बा स्तब्ध थी,  
भीम का बल देखकर वह मुग्ध थी।  
प्रेम से आदेश कुन्ती ने दिया,  
भीम ने परिणय हिडिम्बा से किया ।”<sup>111</sup>

इतना ही नहीं द्रौपदी का पाँचों पाण्डवों में विभाजन का आदेश भी उन्होंने ही दिया था। अर्जुन जब लक्ष्य बेध करके स्वयंवर से द्रुपद सुता को जीतकर घर लाता है, तब सभी पाण्डव द्रौपदी के साथ दरवाजे पर खड़े रहकर कहते हैं कि माँ, देख आज हम भीख में क्या लाए हैं? तभी बिना देखे ही कुन्ती ने आपस में मिलकर भोगने का आदेश दे दिया। कवि के शब्दों में —

“वीर पार्थ ने

लक्ष्य बेधकर  
 जीत लिया है द्रुपद सुता को ।  
 पाण्डव उसको लेकर आए  
 अपने घर के दरवाजे पर  
 और वही से बोले —  
 “माँ देखो,  
 हम आज भीखमें  
 यह क्या लाए?  
 “पाँचो मिलकर भोगो बेटा,  
 जो भी लाए ।”<sup>112</sup>

कुन्ती ने बिना देखे और बिना विचारे इतनी बड़ी बात कह दी, तब पाण्डवों ने स्पष्टता की कि हम द्रुपद सुता को लाए हैं जिस पर केवल अर्जुन का ही अधिकार है । पुत्रों की बात सुनकर अपने मुँह से निकली वाणी पर कुन्ती पछतावा भी व्यक्त करती है । जैसे —

“अरे वत्स मैं कर बैठी कैसी नादानी?  
 अनजाने में मेरे मुँह से निकली वाणी ।  
 अब क्या होगा? कौन करेगा निर्णय इसका?  
 कृष्णा पर अधिकार रहेगा कितना किसका? ”<sup>113</sup>

अब पछतावे क्या? जब चिड़ियन चुग गई खेत । एकबार छोड़ा गया बाण वापस नहीं लिया जाता, उसी आधार पर कुन्ती ने कह दिया और पाण्डवों ने माता का आदेश सर आँखों पर लगा लिया । बड़े भाइयों से पहले विवाह न करने का तो अर्जुन का बहाना मात्र था । असल में माता का वचन वे मिथ्या नहीं कर सकते थे ।

द्रौपदी के माध्यम से कवि ने कुन्ती के व्यक्तित्व का एक और पक्ष उभारा है । कुन्ती के आदेशानुसार जब पाँच पतियों में द्रौपदी का विभाजन होता है, तब द्रौपदी के चिन्तन से कुन्ती का यह चरित्र प्रकाशित होता है । वह कहती है —

“सास कुन्ती के लिए  
 ऐसा विभाजन सहज ही था ।

वे स्वयं भी तीन देवों से जुड़ी थी ।  
 ससुरजी तो नाम के थे  
 और माद्री को चाहकर दो देवताओं से जुड़ाया था ।  
 पाँच देवों के सपूतों में  
 वही सब खून था  
 जुड़ने-जुड़ाने का ।  
 बड़ा सुविधाजनक  
 यह काम उन सबके लिए था ।”<sup>114</sup>

द्रौपदी के इस कथन से पता चलता है कि उस समय देवताओं और ऋषियों से नियोग द्वारा पुत्र प्राप्ति की जाती थी । कुन्ती और माद्री उनके उदाहरण हैं ।

इस प्रकार प्रस्तुत काव्यग्रंथ में कुन्ती का पात्र गौण होते हुए भी कथा को अग्रसर बनाने में महत्वपूर्ण है ।

### 6.5.3.2 माद्री :

समूचे काव्यग्रंथ में माद्री का नामोल्लेख मात्र कवि ने किया है । प्रस्तुत काव्यग्रंथ में नारी पात्र के रूप में माद्री का कोई विशेष महत्व नहीं है । वह मात्र तृतीय और सप्तम सर्ग में हमारे समक्ष आती है । सहदेव जब एक हिम की घाटी में गिरता है, तब कवि ने माद्री एवं कुन्ती का साथ में उल्लेख किया है । जैसे —

“सहदेव  
 देवों के उभय रस सिद्ध वैद्यों का  
 समन्वित अंश,  
 मुनि के शाप से आविष्ट राजा पाण्डु का,  
 लघु पुत्र  
 माद्री के मरणधर्मी विवश मातृत्व का  
 आधार,  
 कुन्ती के हृदय की स्नेह-सरिता का  
 सलोना हंस ।”<sup>115</sup>

माद्री एवं कुन्ती दोनों ही पाण्डुराजा की पत्नियाँ थीं। अतः कुन्ती की तरह वह भी पाण्डवों की माता थी। सप्तम सर्ग में जब युधिष्ठिर पाँचाली एवं अपने भाइयों को छोड़कर स्वर्ग की ओर उन्मुख होते हैं, तब यक्ष युधिष्ठिर के उत्तरों से सन्तुष्ट होकर वरदान माँगने के लिए कहते हैं। किन्तु उनकी शर्त है कि चारों में से एक ही युधिष्ठिर के साथ जाएगा। यक्ष के बार-बार कहने पर भी युधिष्ठिर ने अपने सगे भाई अर्जुन या भीम को नहीं, बल्कि नकुल को माँगा। युधिष्ठिर के अनुसार कुन्ती का एक बेटा (स्वयं वे) जीवित है, तो माद्री का एक बेटा भी जीवित रहना चाहिए। यही उनका धर्म है। युधिष्ठिर के शब्दों में —

“पत्नियाँ दो थी पिता की  
है नहीं अन्तर तनिक भी द्रष्टि में मेरे  
बराबर है सदा से मात कुन्ती और माद्री।  
एक बेटा अगर जीवित बचा मैं,  
दूसरी का पुत्र भी जीवित बचे।  
यह चाहता मैं।”<sup>116</sup>

इस प्रकार पाण्डवों के लिए माता कुन्ती और माद्री दोनों समान रूप में सम्माननीय हैं।

### 6.5.3.3 कृपि :

प्रस्तुत प्रबंध में कृपि का पात्र द्रौपदी के चिंतन मात्र की उपज है। जब द्रौपदी अपने पुत्रों के हत्यारे अस्वत्थ के बारे में सोचती है, तभी कवि ने द्रौपदी के मातृवत्सल हृदय की महानता प्रकट की है। कृपी की ममता के वास्ते ही वह अस्वत्थ पर कृपा करती है। वह कहती है -

“मैं हूँ माँ !  
सभी बेटे मरे हैं।  
किन्तु माँ अब भी बची है,  
जा, कृपी के वास्ते करती कृपा तुझ पर।”<sup>117</sup>

इस प्रकार नारीपात्र के रूप में इस प्रबंध में कृपि का कोई विशेष अस्तित्व नहीं है।

### 6.5.3.4 उलूपी, चित्रांगदा और सुभद्रा :

उलूपी, चित्रांगदा और सुभद्रा तीनों अर्जुन की पत्नियाँ हैं, जो दूसरे एवं पाँचवे सर्ग में हमारे सामने आती हैं। द्वितीय सर्ग में महाप्रस्थान करते-करते द्रौपदी हिम शिखर पर गिर जाती है, तब वह

सोचती है, कि मैं सही अर्थ में अर्जुन की पत्नी होने के नाते जितना उसके साथ रहना चाहती थी, उतना ही अर्जुन मुझसे दूर रहा है या जिम्मेदारी के नाम पर उसे ज्यादा से ज्यादा घर से दूर ही रखा गया है। मैं उसे पूरी तरह बाँध नहीं पाई हूँ। शायद यही वजह है कि वे जहाँ भी गए, ब्याह करके ही रहे। कवि ने द्रौपदी की उक्त व्यथा को इस प्रकार व्यक्त किया है —

“नाग की कन्या उलूपी से,  
तथा श्री कृष्ण की भगिनी सुभद्रा से  
गए जब द्वारका वे  
और जब  
मणिपुर गए तो  
चित्रवाहन की सुकन्या रूप सी चित्रांगदा से  
ब्याह कर लौटे।”<sup>118</sup>

नारी सहज स्वभाव है कि वह सबकुछ सह सकती है, लेकिन सौत के साथ अपने पति को नहीं देख सकती। कवि ने द्रौपदी के मन की व्यथा को खुलकर प्रकट किया है और साथ ही साथ इन तीनों नारियों को द्रौपदी के चिन्तन के माध्यम से प्रकट किया है। द्रौपदी कहती हैं -

“मैं नहीं जो दे सकी थी,  
वह उलूपी ने दिया था।  
प्रेम रस चित्रांगदा ने  
या सुभद्रा ने पिया था।”<sup>119</sup>

मृत्यु के कुछ क्षण पूर्व स्मृतियाँ साफ हो जाती हैं। पंचम सर्ग में वीर धनुर्धर अर्जुन जब हिम शिखर पर गीरता है, तब वह अतीत की स्मृतियों में खो जाता है। द्रौपदी एवं अपनी ओर तीनों पत्नीयों को वह याद करके कहता है -

“सुनो द्रौपदी,  
घर में जितने आह-कराह किए है तुमने,  
घर से बाहर उतने ब्याह किए है मैंने।  
एक द्रौपदी तुम तो थी ही,  
और दूसरी नागराज की सुता उलूपी।

और तीसरी चित्रभानु की कन्या चित्रांगदा,  
और चौथी माधव की बलदाऊ की बहन सुभद्रा ।”<sup>120</sup>

इस प्रकार ये तीनों नारीयाँ अर्जुन की पत्नी के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होती है ।

### 6.5.3.5 उर्वशी :

‘उर्वशी’ की कथा भी अर्जुन से जुड़ी हुई है, जिसे कवि ने इस प्रबन्ध के पंचम सर्ग में हमारे सामने प्रस्तुत किया है । उर्वशी स्वर्ग की अप्सरा होने के नाते दीपशिखा - सी प्रज्वलित है ।

हिम शिखर पर पड़ा अर्जुन स्मृतियों के माध्यम से उत्तरा से अपने जीवन की विगत घटनाओं को बता रहा है, तभी उर्वशी भी उसके स्मृतिपटल पर अंकित हो जाती है । अर्जुन बताता है कि जब वह कड़ी साधना करके चाक्षुषी विद्या, प्रतिस्मृति विद्या, ब्रह्म शिरा, दिव्यास्त्र एवं अस्त्र-शस्त्र के साथ दिव्य द्रष्टि एवं कई शक्तियों से सम्पन्न बनता है, तभी उर्वशी चित्रसेन से अर्जुन के रूपरंग की बात सुनकर वहाँ आती है और अर्जुन से प्रणय निवेदन करने लगती है, किन्तु अर्जुन उसे अपनी माँ बताकर श्रद्धा से उर्वशी के श्री चरणों में वंदन करता है । काम-वासना से मंडित उर्वशी साँपिन बनकर अर्जुन को ‘नपुंसक’ बनने का शाप दे बैठती है । पूरी घटना कवि के शब्दों में देखिए —

“चित्रसेन से सुनकर मेरे  
रूप-रंग की बात उर्वशी ।  
मुझे डुबोने आ पहुँची थी,  
जैसे हो बरसात उर्वशी ।  
हाव-ताव से नृत्य-गीत से  
करने लगी प्रहार उर्वशी  
मुझे लगा बस, आज बन गई  
मेरा उपसंहार उर्वशी ।  
मैं बोला, ‘तू माँ है मेरी,  
श्रद्धा का संसार उर्वशी ।  
कुरू जननी, तेरे चरणों में  
वंदन सौ-सौ बार उर्वशी ।’  
काम-पीड़िता साँपिन बनकर

करने लगी प्रलाप उर्वशी  
 'अरे नपुंसक बन जा' - मुझको  
 दे बैठी यह शाप उर्वशी ।”<sup>121</sup>

इसके फल स्वरूप अर्जुन को एक साल तक वृहन्नला बनकर रहना पड़ा था । इस प्रकार उर्वशी के माध्यम से कवि ने वही अप्सराओं की कामुक वृत्ति की ओर हमारा ध्यान खिंचा है ।

### 6.5.3.6 हिडिम्बा :

हिडिम्बा भीम की पत्नी है । षष्ठ सर्ग में वन में वह भीम के समक्ष स्वयं अपना परिचय देती है । देखिए —

“मैं हिडिम्बा हूँ, यहीं वन में चली,  
 आपको देखा तो खुद घर से चली ।  
 नियति ने जोड़ी बनाई नाप से,  
 ब्याह करना चाहती हूँ आपसे ।”<sup>122</sup>

जब हिडिम्बा भीम के समक्ष इस प्रकार परिचय के साथ प्ररिणय प्रकट करती है, तभी उसका बड़ा भाई हिडिम्ब गरजते हुए बादल की तरह वहाँ आ पहुँचता है और भीम पर अंधाड बनकर छा जाता है, तब भीम ने उसे उठाकर घड़े की तरह जमीन पर पटक दिया और वह कंकाल बनकर रह गया । इस प्रसंग को कवि आगे बताते हैं —

“चकित भाई-माँ, हिडिम्बा स्तब्ध थी,  
 भीम का बल देखकर वह मुग्ध थी ।  
 प्रेम से आदेश कुन्ती ने दिया,  
 भीम ने परिणय हिडिम्बा से किया ।”<sup>123</sup>

इस प्रकार हिडिम्बा हमारे समक्ष एकबार आती है । किन्तु उसका व्यक्तित्व हमारे मस्तिष्क पर अमिट छाप छोड़ जाता है, पर्वत-सी उसकी काया, रूप, रंग, बल, पराक्रम, दानव और मानव के मिश्रित संस्कार - ये सब सुनकर उसके व्यक्तित्व के बारे में हमारा मन कल्पनाएँ करने लगता है । कवि ने उसका चरित्र कुछ इस प्रकार चित्रित किया है —

“दानव और मानव के  
 मिश्रित संस्कार लिए,

रूप-रंग, बल विक्रम अद्भूत आकार लिए,  
 पर्वत-सी काया में,  
 राक्षस की माया में,  
 परिणय का पुष्प खिला  
 ममता की छाया में” ।<sup>124</sup>

अर्थात् कवि कहते हैं कि भीम और हिडिम्बा के परिणय से घटोत्कट नामक पुत्र प्राप्त होता है जो अपनी माता एवं पिता की तरह महाकाय एवं शौर्यवान था। जो कुरूक्षेत्र के मैदान में भी अपनी वीरता का प्रदर्शन करता है।

## 6.6 उत्तर रामायण :

उत्तर रामायण डॉ. किशोर काबरा का पाँचवा प्रबन्ध काव्य है। प्रस्तुत महाकाव्य की कथा हमारे प्राचीन धार्मिक ग्रन्थ ‘वाल्मीकि रामायण’ से चुनी गई है। जिसमें कवि ने सीता के उदात्त चरित्र को कुन्दन की तरह निखारने का प्रयास किया है। इस प्रबन्ध का प्रणयन ही मानो कवि ने सीता की गरीमा बढ़ाने और उसे सर्वोच्च पद पर बिठाने के लिए ही किया हो ऐसा लगता है। डॉ. किशोर काबरा ने इस महाकाव्य में राम को मर्यादा पुरुषोत्तम एवं सीता को आदर्श नारीत्व से मंडित किया है। कवि ने काव्य नायिका सीता के अचेतन मन में दबी पीड़ा को कथा के सूत्र में बाँधकर चलचित्र की तरह प्रस्तुत किया है।

कथा का प्रारंभ राम के द्वारा किए गये अश्वमेध यज्ञ से होता है। राम के वामांग में सीताजी की स्वर्ण प्रतिमा प्रतिष्ठित की गई है। ठीक उसी समय सीता को अग्नि परीक्षा हेतु महर्षि वाल्मीकि के साथ बुलाया जाता है। साथ में लव और कुश भी हैं। कविवर वाल्मीकि राम से सीता के चरित्र को पवित्र प्रमाणित करते हुए सीता और लवकुश का स्वीकार करने के लिए कहते हैं। तभी राम के मन में अनेक द्वन्द्व उठते हैं। सीता की मनोभूमि पर भी द्वन्द्व का प्रवाह प्रवहमान होता है। जिसे कवि ने महाकाव्य के रूप में बहाया है।

इस महाकाव्य में नारी पात्रों में मुख्य पात्र के रूप में सीता ही विराजित हैं। गौण पात्र के रूप में कैकेयी, मंदोदरी, कौशल्या और सुमित्र तथा अन्य पात्रों के रूप में शूर्पनखा, लंकिनी, त्रिजटा, कुकुआ, सुनयना, शबरी, शान्ता, कैकसी, गौतमी, कल्याणी, धोबीन आदि हैं।



### 6.6.1 मुख्य नारी पात्र :

#### 6.6.1.1 सीता :

सीता 'उत्तर रामायण' महाकाव्य की नायिका है। कथासूत्र के साथ वह अथ से इति तक साथ झुड़ी हुई ही नहीं है, वरन् पूरे कथा प्रवाह को ही अपने साथ बहाती है। आजीवन सीता ने खुब सहा है। उनका जीवन सुख की सरिता नहीं, बल्कि दुःखों का सैलाब ही बन गया है। खुद कवि ने भूमिका में लिखा है - "इस प्रबन्ध काव्य में मैंने निरपराध सीता की पीड़ा को कागज पर बोलने का प्रयास किया है।" - सीता की पीड़ा कवि को अपनी पीड़ा लगी है। जानकी के चरित्र को कवि ने अपनी लेखनी के संस्पर्श से पावन कर दिया है। कवि के अनुसार 'सीता जनक-सूता है, जानकी है, मैथिली है, भूमिजा है, भूमा है। सीता मिट्टी से जन्मी कृषि की अधिष्ठात्री देवी है। वह तन्वंगी, प्रेषित पतिका तथा राम-मानसर में विहार करनेवाली हंसिनी है। जनक की तरह वह देहबोध से रहित है, सुनयना की तरह वह ममत्व से भरी हुई है, धरती की तरह वह अपार धैर्य की स्वामिनी है। वह राम के लिए हृदयेश्वरी है, तो रावण के लिए काल-रात्रि। उसमें आदर्श तथा यथार्थ का अद्भूत समन्वय है।"<sup>125</sup> सीता के चरित्र की पावनता प्रमाणित करने के लिए हमें उसके जीवन को कसोटी के निकष पर कसना पड़ेगा।

#### 6.6.1.1.1 बालिका के रूप में :

सीता की शैशवावस्था, बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था का चित्रण काबराजी ने द्वितीय सर्ग में किया है। इन चित्रणों में सीता के गुणात्मक सौन्दर्य के ही दर्शन होते हैं। कवि ने स्वयं नायिका (सीता) के मुख से ही उनके बालिका स्वरूप का परिचय कराया है। यथा —

“किसी अलहड़-चपल-उन्मुक्त निर्झरणी सरीखी थी नहीं मैं।

हाँ, वयस के उल्लसित सीमान्त पर आ ठिठकी

सजल-सन्तुष्ट, शीतल-शान्त सरिता - सी

स्वयं को देखने में लग गई सूने प्रहर में,

एक मुग्धा - सी लहर

ज्यों हृदय में उठती हुई अपनी लहर को देखती अपनी लहर में।"<sup>126</sup>

कवि ने सीता को सत्यं, शीवं, सुन्दरम् की साकार प्रतिमा के रूप में प्रतिष्ठित किया है। उनका यह अपूर्व सौन्दर्य ही उसे उच्चासन पर विराजमान करता है। कवि के शब्दों में —

“सबल और सविवेक पाँवों की उभय गतियाँ  
 दिशाएँ पार ही जिनसे सभी कृतियाँ सभी श्रुतियाँ ।  
 सुकोमल बाहु दम की तरह परहित की तरह  
 करते निरंतर काम पूरक एक-दूजे के लिए  
 सन्नद्ध आठों याम ।  
 समता की तरह हैं  
 उदर-कटि का सन्तुलित विस्तार जैसे,  
 पृष्ठ पर है सत्य एवं शील का गुरुभार जैसे ।  
 वक्ष के स्वर्णाभ शिखरों के तले  
 दो गर्भगृह में हो गई विधिवत् प्रतिष्ठित - सी  
 क्षमा बाएँ, कृपा दाएँ,  
 जगत को स्नेह, जितना भी लुटा पाएँ, लुटा पाएँ ।  
 विमल जाग्रत सबल मन,  
 धनुष की दो डेरियाँ ताने हुए  
 बैठा हुआ रक्षार्थ  
 उस पर भी, सजग हो बुद्धि -  
 आँखें खोलकर बैठी हुई शिक्षार्थ

X      X      X

कंठ में यम-नियम-संयम की ऋचाएँ  
 और जिह्वा में बसे हैं दान और बलिदान

X      X      X

सहज सन्तोष की छबि आ गई है  
 भौंह पलकों में ।  
 श्रवण और नासिका  
 ज्यों विप्र-गुरु की आस्थाएँ  
 और उनके बीच है विश्वास का विश्राम ।”<sup>127</sup>

अर्थात् बालिका सीता अनिद्य सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमा है। उसमें चंचलता, स्वच्छन्दता और शरारत नहीं है। बल्कि विवेक, सन्तोष, दया, क्षमा, कृपा, समता, सत्य, शील, दान, बलिदान, विश्वास जैसे आदर्श गुण विद्यमान हैं।

### 6.6.1.1.2 मुग्धा नायिका :

सुतनु सीता में मुग्धा नायिका की भाँति सहज सौन्दर्याकर्षण भी द्रष्टिगत होता है। जनक की पुष्प वाटिका में श्रीराम के सौन्दर्य को वह विह्वल द्रष्टि से देखते ही रह जाती है। उनकी मुग्धता का द्रश्य देखिए -

“अरे, वन-वाटिका के बीच पुष्पित कुंज के उस पार ।  
योगी के हृदय की तरह निर्मल-शान्त-स्थिर-अविकार  
उस कासार के तट पर खड़ा वह कौन आभा-पुरुष है?  
क्या शील का सौन्दर्य का और शक्ति का समवाय मर्यादापुरुष है?  
या अचानक  
वाटिका में आ गया निष्काम होकर काम?  
सुरभित पुष्प चुनने के लिए आधा रूका, आधा झुका  
यह कौन जिसने कनखियों की ओट से  
देखा मुझे आकर्ण होकर पूर्ण बनने के लिए ।  
राजा जनक की वाटिका में पुरुष के ही साथ मुझको चुन लिया  
सम्पूर्ण बनने के लिए?।<sup>128</sup>

इस प्रकार सीता में भी नारी सहज मुग्धता देखने को मिलती है।

### 6.6.1.1.3 समर्पित पत्नी :

सीता एक आदर्श पत्नी के रूप में हमारे सामने प्रकट हुई है। अपने पत्नी धर्म को निभाने के लिए वह अनेक तर्क-वितर्क करके भी राम के साथ वन में जाने के लिए तैयार हो जाती है। कवि ने सीता की पतिभक्ति सीता के ही मुख से कहलवाई है। सीता के कथन में उसकी त्याग भावना भरी हुई है। सीता अपने पति के अस्तित्व के लिए अपने सारे सुखों को स्वाहा कर रही हैं।

“मेरे सभी सुख राम के अस्तित्व में स्वाहा

X X X

आज से मेरे सभी सुख स्वाहा भर्ता के सुखों में ।”<sup>129</sup>

यद्यपि यह समय अश्वमेघ यज्ञ का है और सीता के मुख से निकली हुई स्वाहा ध्वनि एक आहुति का संकेत कर रही है। सीता ने राम के अस्तित्व के लिए अपने सारे सुखों को स्वाहा कर दिया था। उसका पातिव्रत्य धर्म पवित्र है। खुद वाल्मीकि जैसे श्रेष्ठ महर्षि भी सामान्य संसारीजनों की तरह सीता के चरित्र को निष्कलंक सिद्ध करने के लिए शपथ लेते हैं। यथा -

“मैं स्वयं वाल्मीकि ऋषि के रूप में  
लेता शपथ हूँ —  
ब्रह्म की मेरी तपस्या व्यर्थ जाए एक क्षण में,  
शून्य भर भी मलिनता हो  
यदि सिया के आचरण में ।”<sup>130</sup>

राम और सीता भारतीय समाज के आदर्श पति-पत्नी के प्रतीक माने जाते हैं। इस महाकाव्य में डॉ. काबराजी ने यह प्रमाणित किया है कि राम और सीता वनवास के कारण ही महान बने हैं। दोनों पति-पत्नी के रूप में एक-दूसरे के पूरक बने हैं। वनमे महर्षि अत्रि एवं माता अनसूया ने यह जीवन-दर्शन सीता को दिया था कि —

“पति के प्रति सम्पूर्ण समर्पण  
पत्नी का संबल है बेटी !  
रंच मात्र क्षति घातक है,  
अबला का मन तो निर्बल बेटी !  
पति पानी जैसा भी हो, उस पर पत्नी की नाव टिकेगी ।  
पति विहिन नारी जन पथ पर दो कौड़ी के भाव बिकेगी ।  
पत्नी का कर्तव्य यही  
पति को महान पथ पर ले जाए ।”<sup>131</sup>

सीता ने अपने कर्तव्य को भलीभाँति निभाया है। वास्तव में स्वर्णमृग की हठ के पिछे सीता की मृग-तृष्णा नहीं थी, किन्तु उसी बहाने वह राक्षसों का विनाश करके राम के पुरुषत्व को प्रकट करने का मौका देना चाहती थी। खरे अर्थ में वह अर्द्धांगिनी का दायित्व निभाना चाहती थी। उसीके शब्दों में —

“राम की अर्द्धांगिनी हूँ मैं  
मुझे दायित्व का निर्वाह करना है यहाँ पर  
प्रेरणा बनकर इसी क्षण !  
थक गए जो चरण पति के  
अवध की स्मृति में अवधि सीमान्त पर,  
उनको बढ़ाकर ही रहूँगी ।

X X X

मैं स्वयं सब कुछ सहूँगी, अश्रु-सागर में बहूँगी  
और दूँगी अग्निपथ की सब परिक्षाएँ सहज ही,  
किन्तु पति को स्वयं के कर्तव्य-पथ की  
गूढ़तम संकेत भाषा तो सुनाकर ही रहूँगी ।  
आज अपने राम को वनवास के चौदह बरस की अवधि में ही  
अवध-चिन्तन से जुड़े सामान्य दशरथ-पुत्र को  
मैं विश्व मानव और पुरुषोत्तम बनाकर ही रहूँगी ।”<sup>132</sup>

सीता ने हमेशा राम का ही स्मरण किया है । लंका में श्रीराम से दूर रहकर भी उसने हमेशा पत्नि धर्म को खण्डित नहीं होने दिया । इसी कारण ही जब सीता राम और लक्ष्मण के साथ अयोध्या लौटती है, तब फिर से वे दोनों अनन्य प्रेम-सूत्र से जुड़ पाये हैं । सीता स्वयं कहती हैं —

“राममें मैं, राम मुझ में,  
एक ऊर्जस्वित सहज चैतन्य  
घरे था हमारे प्रेम को  
जिसमें समर्पण था अगर विह्वल नदी की धार जैसा,  
तो मुखर स्वीकार भी था  
एक सागर के तरंगित ज्वार जैसा ।  
आह, कितना मधुर कितना सरल, कितना दिव्य, कितना सरल  
मेरा और मेरे राम का अद्भूत अलौकिक प्रेम ।”<sup>133</sup>

राम भी सीता से बेहद प्यार करते हैं । जब दूत उसे एकान्त में बात करने के लिए कहता है

और कहता है कि चित्र के नीचे कोई सोया हुआ है। तभी राम कहते हैं कि यह तो थकी हुई जानकी विश्राम कर रही है। और फिर मैं और जानकी कहाँ अलग है? राम के शब्दों में —

“इसके और मेरे तन अलग हैं,  
किन्तु इकलौते हमारे प्राण।  
तन भी है कहाँ पर विलग?  
मैं हूँ इधर यदि अर्द्धांग तो अर्द्धांगिनी है जानकी।  
है एक पत्नी के लिए भी मात्र पति सीमान्त भाई।  
इधर श्रद्धा नाव है  
विश्वास का सागर उधर है।  
बस सुखद दाम्पत्य जीवन का यही वेदान्त भाई।”<sup>134</sup>

डॉ. काबराजी ने राम और सीता को दाम्पत्य जीवन का आदर्श माना है। कवि के मतानुसार पत्नी का एक-दूसरे के प्रति श्रद्धा, विश्वास और प्रेम कायम बना रहना चाहिए। सीता श्रीराम के प्रति इतनी समर्पित हैं कि राम के लिए सीता का त्याग करना विकट समस्या बन जाती है। राम प्रेम और कर्तव्य के द्वन्द्व के बीच फँस जाते हैं। ‘do or not to do’ की स्थिति में राम पड़ जाते हैं। सीता तो आदर्श पतिपरायणा नारी है। वह अपने पति के मन की उलझन को समझ जाती है। रामत्व के पूरे हिमालय का आधार सीता है। राम पर कोई आँच न आए इसीलिए सीता खुद ही अपने पति के सामने दोहद के लिए वन्य परिवेश की इच्छा व्यक्त करके पति के मन की गुत्थियों को सुलझाती है। वह कहती है कि वह प्रकृति का सुखद संसार देखना चाहती है। आम और अनार देखना चाहती है। महकता कचनार देखना चाहती है। धूप-छाँव के साथ चाँदनी के तार देखना चाहती है। सीता के शब्दों में —

“आप दोहद के लिए ही पूछते थे राम !  
मेरी प्रबल इच्छा है  
कि इस साकेत से कुछ दूर हटकर  
और इस दुषित गलित परिवेश से  
भरपूर कटकर चकित हिरनी की तरह  
कुद दिन खुला संसार देखूँ।

X      X      X

आश्रमों में पल्लवित संस्कार को साकार देखूँ,  
सरल आँखों में झलकता स्वयं का आकार देखूँ ।  
वन-गमन को मान लें  
श्री राम दोहद आप मेरा ।”<sup>135</sup>

सीता ने इसीलिए दोहद की इच्छा व्यक्त की ताकि राम पर कोई आँच न आए । शायद काबराजी ने आलोचकों के मुँह बन्द करने के लिए इस प्रकार का रास्ता निकाला है । लखन जब सीता को वन में छोड़ने आते हैं, तब भी वह अपने पति के प्रति प्रेम को प्रकट किये बिना नहीं रहती । वह जन्म-जन्मांतर में राम को ही अपना सर्वस्व मानती हैं । वह लखन को संदेश भेजते हुए कहती है —

“प्यारे लखन,  
कहना राम से -  
अपनी अभागन जानकी को  
आप पत्नी की तरह स्मृति में रखें या भूल जाएँ,  
जानकी तो जन्म-जन्मांतर अवध के राम को ही  
मानती सर्वस्व अपना ।”<sup>136</sup>

राम ने सीता का त्याग किया है । फिर भी उसे तो राम के कल्याण की ही चिंता है । वह चिंतित हैं कि -

“कौन सेवा चाकरी उनकी करेगा?  
दुःख-चिन्ता कौन अब उनकी हरेगा?  
कौन दिन में अब करेगा छाँव उनके?  
कौन रातों में दबाएँ पाँव उनके?

X X X

अश्रु पोंछे कौन मेरे राम के अब?  
कौन सोचे काम आठों याम के अब?  
प्रेरणा उनकी बनेगा कौन बोलो?”<sup>137</sup>

अन्त में वह पति के रूप में राम ही उसे जन्म-जन्मांतर में मिले ऐसी प्रभु के पास प्रार्थना भी

करती है —

“हे विधाता, एक ही है काम मुझको,  
जन्म जन्मांतर मिले श्री राम मुझको ।”<sup>138</sup>

सीता की पति परायणता एवं समर्पित भाव को देखकर स्वयं कवि ने उसके इस गुण की सराहना की है। वे कहते हैं -

“इस सिया ने तो हमेंशा  
राम का अनुगमन करना ही स्वयं की अस्मिता माना,  
भले वह नववधू के वस्त्र में हो,  
वह भले वनवासिनी के वस्त्र में हो,  
वह भले निष्काषिता के रूप में हो।  
वह भले फिर माँ बने  
पलकाश्रु में लव-कुश झुलाती हो।  
भले ही अन्त में भूमा उसे  
अपने निकट दो हाथ फैलाकर बुलाती हो ।”<sup>139</sup>

#### 6.6.1.1.4 ममत्व का औदार्य :

प्रत्येक स्त्री मातृत्व धारण करके पूर्णता प्राप्त करती है। मातृत्व की अनुभूति के क्षण भी कितने मधुर और तरल होते हैं। सीता भी मातृत्व के अमिय रस का पान करके धन्यता का अनुभाव करती है। गर्भ धारण करते ही उसके रोम-रोम में मातृत्व भर जाता है। ममता की मधुर कल्पना से ही वह आनंदित हो जाती है। देखिए —

“अहा मातृत्व की अनुभूति है  
कितनी मधुर, कितनी तरल !  
कितनी कठिन, कितनी सरल।  
कितनी मुखर, कितनी प्रखर।  
कितनी सहज, कितनी विरल ।”<sup>140</sup>

कवि के मतानुसार मातृत्व धारण करना नारी का बहुत बड़ा त्याग है। वे कहते हैं —

“गर्भ का पोषण नहीं सामान्य कोई कार्य,



कितना त्याग !  
 कितनी सजगता !  
 हाँ यम-नियम, विश्राम-श्रम सब सन्तुलित अनिवार्य ।  
 जिस क्षण एक नारी एक शिशु को जन्म देती है,  
 उसी क्षण एक नारी एक माँ को जन्म देती है ।  
 जहाँ वह जन्म देती है, वहाँ वह जन्म लेती है  
 स्वयं मातृत्व के अस्तित्व में ।

डॉ. किशोर काबरा की द्रष्टि में सीता वनवास सीता के लिए वरदान जैसा है । क्योंकि इस वनवास में सीता के मातृत्व को पूर्ण विकास प्राप्त हुआ है । यदि सीता केवल राजरानी ही बनी रही होती, यदि वह आँसुओं के सरोवर में नहीं बही होती तो शायद कवि वाल्मीकि की रामायण संपूर्ण नहीं होती । माँ बनने से पहले वाल्मीकि ने सीता को आश्रम में मातृत्व का प्रशिक्षण भी दिया है -

“तू यह समझ ले मातृत्व के पहले  
 अरे,  
 माँ के हृदय में हर समय  
 सन्तान पालन के लिए  
 ममता यहाँ अनिवार्य, कितनी है ।  
 यही मातृत्व नारी को दिलाता पूर्णता बेटी !  
 समूची विश्व संस्कृति की यही परिपूर्णता बेटी !  
 तपस्या है,  
 नहीं यह एक यांत्रिक मूर्च्छना बेटी !  
 किसी कवि की तरह  
 मातृत्व भी तो सर्जना बेटी !  
 यही वह केन्द्र  
 जिससे वंदनीया बन गई नारी ।  
 पुरुष से भी अधिक  
 अभिनन्दनीया बन गई नारी ।”<sup>141</sup>

सीता भी ममता की मनोहर मूर्ति है । वाल्मीकि आश्रम में वह दो जुड़वाँ पुत्रों को जन्म देती

है। उसका पालन-पोषण करते-करते वह अपने दुःखों को भी भूल गई है। डॉ. काबराजी ने सीता का लव-कुश के प्रति ममत्व का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। वैसे भी संसार में बेटे से बढ़कर माँ के लिए कुछ भी नहीं होता। बेटे की तुलना में वह मुक्ति को भी हेय समझती है। कवि के शब्दों में —

“भीतर से देने की तड़पन  
बाहर से पाने की थिरकन,  
द्वन्द्वतीत समर्पण में बस  
खो जाती है माँ की धड़कन।”<sup>142</sup>

सीता लव और कुश को झुले में झुलाती है और लोरियाँ सुनाती है। इन दोनों शिशुओं पर उमड़े हुए सीता के प्यार को देखकर कवि वाल्मीकि के सुख का भी कोई पार नहीं रहता है। कवि वाल्मीकि को माँ और शिशु का संबंध इतना मृदुतर लगता है कि इसको कलम छुआने में भी डर लगता है।<sup>143</sup>

वाल्मीकि आश्रम में सीता का ममत्व केवल लव-कुश पर ही सीमित नहीं था अपितु पशु-पक्षियों को भी उसके मातृत्व का वरदान प्राप्त था। कवि ने तो उसे ‘समूचे वन की माँ’ कहा है। वन्य संस्कृति के अंश-अंश से उसे ममत्व था। वन के पशु-पक्षी सभी के प्रति उसे अपनत्व था। सीता की ममता का औदार्य द्रष्टव्य है —

कुक्कुट को वही जगाती थी,  
कुक्कुट को वही सुलाती थी,  
शुक - पिक - मयूर को दाना देकर  
अपने पास बुलाती थी

X   X   X

बछड़ों को दूध पिलाने पर  
गायों का दोहन करती थी।

X   X   X

भूखे को दे देती भोजन,  
प्यासे को दे देती पनघट।  
सेवा की स्फूर्ति बनी सीता,

उस आश्रम में रज से गज तक की  
जैसे मूर्ति बनी सीता ।

X      X      X

केवल लव-कुश की नहीं,  
समूचे वन की थी वह माँ जैसे,  
संपूर्ण राष्ट्र की माँ जैसे,

संपूर्ण विश्व की माँ जैसे ।”<sup>144</sup> कवि वाल्मीकि ने तो सीता के मातृत्व की इतनी प्रशंसा की है कि उसने सीता को जगन्नियता जगदीश्वर की भी माँ कहा है । कवि ने उसे ‘मानवता की पुष्करणी’, ‘गरिमा की गागर’, ‘ममता की मानसरोवर’ और ‘समता का सागर’<sup>145</sup> जैसे अलंकारों से अलंकृत किया है । कवि के शब्दों में —

“माँ बनकर नारी कितनी -  
कोमलता - उदारता पा जाती !  
सीता को कोई देखें  
तो यह बात समझ में आ जाती ।”<sup>146</sup>

इस प्रकार सीता का हृदय वात्सल्य का वारि एवं ममतात्व की मधुरता से छलकता है ।

#### 6.6.1.1.5 आतिथ्य सत्कार की भावना :

आँगन में आये हुए अतिथि का स्वागत करना भारतीय संस्कृति की परम्परा रही है । सीता आदर्श भारतीय नारी है । आतिथ्य सत्कार को वह अपना परम धर्म मानती है । साधु के कपटी वेश में आया हुआ रावण जब सीता के आँगन में आकर कहता है - ‘मुझको भिक्षा दे दो मैया’, तब सीता के मन में थोड़ा संदेह होता है, फिर भी भारतीय संस्कृति की रक्षा करने हेतु ही वह उस पाखंडी पण्डित को भिक्षा देने के लिए तैयार होती है । “मैया” कहकर भिक्षा माँगनेवाले रावण से वह कहती है —

“स्वागत है मुनिवर !  
अर्घ्य, पाद्य, आसन, जल, फल  
सब ग्रहण करें,  
फिर आज्ञा दें -

क्या सेवा और करूँ मैं ऋषिवर !

पुत्री जैसी हूँ मैं,

आप पिता के जैसे ।

कहिए, अभ्यागत को तुष्ट करूँ मैं कैसे ?”<sup>147</sup>

### 6.6.1.1.6 त्याग की मूर्ति :

त्याग एवं सहनशीलता भारतीय नारी के सर्वोत्तम गुण माने जाते हैं। ‘उत्तर रामायण’ की सीता भी त्याग का मूर्तिमंत रूप है। सीता ने सदैव सहा ही है। कोमलांगी सीता ने वन के कष्टों को तो खुशी-खुशी स्वीकार किया है, किन्तु उसने आजन्म अपने सुखों का त्याग किया है। वनवास के सहस्रों कष्टों को सहकर वह वापस अयोध्या आती है, उसके बाद भी राम पर लगे हुए आक्षेप के कारण गर्भवती होने के बावजूद भी वह दूसरा वनवास राम से ‘दोहद’ के नाम पर माँगती है। यहाँ उसके त्याग की पराकाष्ठा द्रष्टिगत होती है। वैसे वह चाहती तो इस वनवास का विरोध भी प्रकट कर सकती थी। किन्तु एक आदर्श पत्नी होने के नाते वह राम की विवशता पहचानकर अपने को परिस्थिति के अनुकूल बना लेती है। सीता का त्याग कितना महान है। उनके त्याग के सामने हमारा मस्तक गर्व से झुक जाता है। सीता के हृदय का विचार मंथन द्रष्टव्य है —

“इस वनवास को बलि की तरह स्वीकार करके

आपके ऊपर लगे आक्षेप को, अपवाद को

मैं पोंछ दूँगी राम !

अपनी अश्रु भीगी अस्मिता से ।

आपकी निंदा न हो -

इस द्रष्टि से चुपचाप सब स्वीकार करके

तापसी की तरह रह लूँगी ।”<sup>148</sup>

कवि वाल्मीकि सीता को राम के दरबार में ले आते हैं ताकि उसे और उसके पुत्रों को हक मिले। किन्तु इसके पूर्व ही सीता ने स्वयं की परीक्षा देने हेतु माँ धरित्री को आह्वान किया।

“हे धरित्री माँ, मुझे इस विषम दुःख से त्राण दे दे,

आज जीवन के समापन का विमल वरदान दे दे।

राम के अतिरिक्त यदि मैंने नहीं चाहा किसी को,

तो मुझे अविलम्ब माँ, अपने हृदय में स्थान दे दे ।  
 हे धरित्री माँ, मुझे दो पल स्वयं की छाँव दे दे,  
 मैं तनिक छू लूँ, मुझे माँ आज अपने पाँव दे दे ।  
 देह से मन प्राण से यदि राम को चाहा हमेंशा,  
 तो मुझे अविलम्ब माँ अपने उदर में ठाँव दे दे ।  
 हे धरित्री माँ, मुझे खोए हुए श्रीराम दे दे,  
 राम दे दे, जीभ को यह नाम आठों याम दे दे ।  
 राम मेरे, राम की मैं, राम के ही काम की मैं,  
 तो मुझे अविलम्ब अपनी गोद में विश्राम दे दे ।”<sup>149</sup>

ऐसा लगा जैसे आसमान की छती फट गयी हो । धरती विस्फोट होने के समान टूट गयी । सौर-मंडल हिल गया । ध्वनि - विस्फोट के साथ माँ धरती आँचल पसार खड़ी थी और देखते ही देखते भूमा भूमि में समा गयी । जन समुदाय पर उसका क्या असर हुआ इसका अंकन डॉ. किशोर काबरा ने बड़ा ही हृदयद्रावक किया है ।

#### 6.6.1.1.7 सतीत्व की रक्षा करनेवाली :

भारतीय समाज में आदर्श सतियों में सीता का नामोच्चारण सबसे पहले किया जाता है । क्योंकि सीता आदर्श भारतीय नारी है । उसने लंका में रहकर भी सदैव अपने सतीत्व की रक्षा की हैं । फिर भी उससे अपने सतीत्व का प्रमाण माँगा जाता है । सभा के बीच वह कहती है —

“और मैं अबला भला कैसे करूँ रक्षा स्वयं की?  
 किन्तु लज्जा बच गई  
 फिर भी सिया के यम-नियम की ।  
 और मन वश में रहा,  
 वह आज भी श्री राम का है ।  
 राम का यदि वह नहीं,  
 तो और फिर किस काम का है?

X X X

उस अवधि में हाँ, मुझे -

निर्दय विरह ने खूब मारा ।  
 राम के बस नामने ही  
 उस समय मुझको उबारा ।

X    X    X

राम के अतिरिक्त  
 है यदि प्रिय कोई मेरे हिया को,  
 अग्नि की विकराल लपटें,  
 भस्म कर दें इस सिया को ।”<sup>150</sup>

वह अपने सतीत्व का प्रमाण देते हुए आगे कहती है —

“शुद्ध जिसका चरित है,  
 उसको अनल चंदन बनेगा ।  
 आग में जलकर हमेशा,  
 स्वर्ण तो कुन्दन बनेगा ।”<sup>151</sup>

लंका में भी सीता के सतीत्व के प्रमाण हेतु अग्नि परीक्षा ली गई थी । किन्तु उस वक्त सीता के सतीत्व को देखकर जन-मेदनी भी कह उठती हैं —

“धन्य है सतियाँ हमारी !  
 माँ क्षमाकर दो अभी तक -  
 जो हुई क्षतियाँ हमारी ।  
 तुम विमल गंगा नदी - सी  
 तुम अमल सूरज प्रभा - माँ !  
 धन्य तुम आदर्श नारी,  
 कह रही पूरी सभा माँ ।”<sup>152</sup>

अर्थात् लंका निवासियों ने सीता की अग्नि-परीक्षा लेने के बाद तो पश्चाताप प्रकट किया, किन्तु एक बार अग्नि-परीक्षा हो जाने के बाद भी अयोध्यावासी सीता के सतीत्व का प्रमाण माँगते हैं । इस काव्यग्रंथ के प्रारंभ में ही कवि वाल्मीकि सीता के सतीत्व का प्रमाण दे देते हैं । वे समग्र जन समुदाय के बीच में राम से कहते हैं -

“एक ही अच्छी हुई है बात इस पूरी कथा में,  
 एक मुट्ठी हर्षभी है एक झोली भर व्यथा में ।  
 मैं स्वयं वाल्मीकि दसवां पुत्र हूँ मैं वरूण का  
 मैं सत्य कहता हूँ —  
 जहाँ पर राम के ‘पति’ और ‘राजा’ की पराजय है,  
 वहीं इस जानकी के ‘सतीत्व’ की ‘मातृत्व’ की जय है ।”<sup>153</sup>

खुद राम ने सीता के अकलंक - निर्मल - स्वच्छ होने का प्रमाण दिया है । वे वाल्मीकि से कहते हैं -

“जानता हूँ मैं कि  
 कोमल और संवेदित क्षणों में भी  
 सिया उस लंक पति के चरण में  
 तन और मन से एक तृण भर भी  
 समर्पित हो नहीं सकती ।  
 दशानन के अलौकिक रूप-वैभव  
 और भय-आतंक से  
 विचलित प्रभावित हो नहीं सकती ।  
 स्वयं के गहनतम पति-प्रेम को,  
 नारीत्व और सतीत्व को  
 वह खो नहीं सकती ।  
 चरित की भूमि पर दुश्चरित का अंकुर  
 किसी क्षण बो नहीं सकती ।  
 दुराचारी दशानन की  
 सभी चेष्टा-कुचेष्टा चाह के सम्मुख  
 सिया अस्तित्व और सतीत्व की रक्षा  
 सहज ही कर सकी होगी ।  
 स्वयं के तेज से स्वयमेव रक्षित है सिया,  
 अत एव अकलंक - निर्मल - स्वच्छ है -  
 यह सत्य है ।”<sup>154</sup>

### 6.6.1.1.8 वेदना और पीड़ा की प्रतिमा :

सीता ने सदैव सहा ही है, सदैव त्यागा ही है। बावजूद इसके उसे पीड़ा एवम् यातनाएँ ही जीवन में भुगतने को मिलती है। वेदना और पीड़ा को उसने हँसते-हँसते अपनी झोली में डाल दिया हैं। सहनशीलता उनकी स्वाभाविक विशेषता है। इसी कारण ही भारतीय संस्कृति में आदर्श नारी के रूप में उसका नाम सर्व प्रथम लिया जाता है। सीता के जीवन की व्यथा एवं पीड़ा देखकर वाल्मीकि के दुःखो की भी सीमा नहीं रहती। विशुद्ध एवं पुनित पावन चरित्र होते हुए भी उस पर चारित्रिक कुशंका प्रकट करके आसन्न प्रसवा होते हुए भी घर से निकालकर वन में भेजा जाना कोई कम वेदना नहीं है। सभा के बीच जब श्रीराम ऋषि वाल्मीकि को अर्घ्य देने के लिए आगे बढ़ते हैं, तभी महर्षि वाल्मीकि कुपित होकर पीछे हटकर जो बात कहते हैं, उसमें सीता की पीड़ा, वेदना और व्यथा की ही कथा है। देखिए —

“सब अर्घ्य छोटे पड़ गए श्रीराम  
मेरी जानकी के अर्घ्य के सम्मुख।  
सतत बारह बरस से अर्घ्य देती है मुझे यह,  
एक लांछित अग्नि में जलते - दहकते  
और छलनी की तरह विक्षत, बिसुरते प्राण से निकले  
सिसकते करुण जल से।  
अर्घ्य मेरी जानकी ने जो दिए हैं,  
सात सागर आज छोटे पड़ गए हैं सामने उसके।  
रूदन का व्याकरण इस जानकी ने जो जिया है,  
स्वस्त्ययन के मंत्र खोटे पड़ गए हैं सामने इसके।  
आज कवि की लेखनी स्तुतियाँ नहीं, क्षतियाँ लिखेगी।  
राम का इतिवृत्त वह मसि में भिगोए या निचोए,  
जानकी का सत्य आँसू से मेरी अखियाँ लिखेगी।”<sup>155</sup>

सीता सदा राम की सेविका बनकर रही फिर भी अवध ने उसे अपमान ही दिया है। सदा ही ‘राम’ - ‘राम’ जपती रही है, फिर भी सदा उसकी आँखों से आँसू की धार बहती रही है। सभी उपेक्षाएँ एवं अपमान को वह हँसकर पी गई है। वन में रहकर भी उसने पतिव्रत धर्म का पालन किया



है। वनवास को भी रनिवास कहकर जी रही है। व्यथा इतनी है फिर भी धैर्य से सहने की अलौकिक शक्ति है उनके पास। इसीलिए ही कवि को कहना पड़ा —

“यह स्वयं है अचल निष्ठा, यह स्वयं है स्नेह सरिता।  
 इस सिया में ही मिली वाल्मीकि को करुणार्द्र कविता।  
 जानकी जीवन्त पीड़ा, जानकी दुःख की सघनता।  
 जानकी निर्मल सरलता,  
 जानकी निश्छल सुजनता।”<sup>156</sup>

सीता के शील की शुद्धता सिद्ध करने हेतु कवि वाल्मीकि शपथ लेते हैं। वे सभी दिशाओं के दिग्पाल, देव, यक्ष, किन्नर, भूत, पिशाच, बटुक, पण्डित, पुरोहित, गुरुजन और गिरिजन, रघुवंश की वधुएँ, साकेत के नागरिक एवं सब वनस्पति और खग, मृग, कोट, जलचर और पाषाण सभी को पुकारकर कहते हैं —

“मैं स्वयं वाल्मीकि ऋषि के रूप में  
 लेता शपथ हूँ -  
 ब्रह्म की मेरी तपस्या व्यर्थ जाए एक क्षण में,  
 शून्यभर भी मलिनता हो  
 यदि सिया के आचरण में  
 मैं स्वयं वाल्मीकि  
 कवि के रूप में लेता शपथ हूँ -  
 काव्य पर अपकीर्ति का दिक्काल टूटे बन हिमाचल  
 शब्द भर भी हो कलंकित  
 यदि सिया का शुद्ध आँचल।  
 मैं स्वयं वाल्मीकि जन के रूप में लेता शपथ हूँ —  
 झुलस जाए श्वास के सब चैत, फागुन और सावन,  
 बूँद भर भी हो प्रदुषित यदि सिया के अश्रु पावन!”<sup>157</sup>

वाल्मीकि सभा में राजा राम से कहते हैं कि - आप में शील, सौंदर्य या शक्ति का अभाव नहीं है, किन्तु आपके आदर्श के अतिरेक के कारण ही मेरी जानकी को वन में जाने के लिए विवश होना

पड़ा है। आपके सिर पर चढ़े पागल दुराग्रह को अनुग्रह की तरह सिर चढ़ाने के लिए, रघुकुल के चन्द्र की यश चन्द्रिका को बढ़ाने के लिए जानकी ने अपनी झोली व्यथा से भर दी। पर वाल्मीकि को जानकी के त्याग पर भी गर्व है। वे श्रीराम से कहते हैं कि - अच्छा हुआ जानकी साकेत में न रही। यदि वह यहाँ रहती तो केवल स्वर्ण की प्रतिमा बनकर ही रह जाती। इस बाप को पाकर सीता खरे अर्थों में नारी बन सकी है। वाल्मीकि के शब्दों में —

“अगर इस जानकी को, मिल नहीं पाता दुःखद वनवास,  
तो नारीत्व के मातृत्व के इतिहास से  
इसको सदा के वास्ते मिलता सुखद वनवास।  
केवल राजरानी ही रही होती अगर सीता,  
न आँसू के सरोवर में बही होती अगर सीता,  
अधूरी रह गई होती अरे, वाल्मीकि रामायण,  
इसी साकेत में बंदी रही होती अगर सीता।”<sup>158</sup>

डॉ. काबराजी ने वाल्मीकि के मुख से सीता की व्यथा-कथा बताई हैं। कवि वाल्मीकि साकेत वासियों की ठीढ़ता पर प्रहार करते हुए कहते हैं -

“राम से भी अधिक इस साकेत की कुंठित प्रजाने दुःख दिया मेरी सिया को।”<sup>159</sup>

कवि वाल्मीकि कहते हैं कि साकेतवासियों से तो लाखगुना अच्छे हैं लंकावासी, जिसकी आँखों में सिया के जाते ही आँसुओं की बाढ़ आई थी। कवि के शब्दों में —

“धन्य है लंका निवासी !  
फिर भले ही हो विलासी।  
आँसूओं की बाढ़ आई,  
जब सिया को दी बिदाई।  
जानकी को विदा देते ही  
वहाँ छाई उदासी।  
धन्य है लंका निवासी  
ठीढ़ है साकेतवासी !!  
आ गई सीता यहाँ लंका विजय के बाद,

तो क्यों आ गई - यह पूछते हैं ।  
 क्या दशानन को वहाँ यह भा गई ?  
 यह पूछते हैं ।  
 राम ने त्यागा सिया को तो सभी चुप हो गए फिर ।  
 एक ही कपड़ा हजारों बार धोबी धो गए फिर ।  
 धन्य है स्वातंत्र्य वाणी का यहाँ पर ।  
 कठिन जीना सरल प्राणी का यहाँ पर ।  
 धन्य रे साकेत, तेरी धन्य माया ।  
 एक भी जन मुँह नहीं फिर खोल पाया ।  
 था नहीं कोई, हृदय की बात कहता राम से जो ।  
 औपचारिक ही मगर दो बात कहता राम से जो ।  
 राम से कहता —  
 परीक्षा हो गई अब !  
 इस अवध की बहुत शिक्षा हो गई अब !  
 जाइए, और जानकी को लाइए अब !  
 नहीं लाए तो हमें मत पाइए अब !  
 हम जिऐंगे जानकी के साथ वन में,  
 हम मरेंगे जानकी के साथ वन में ।”

X X X

राम अपने महल में रोते रहें है,  
 जानकी मेरे यहाँ रोती रही है,  
 आह, लव-कुश दो अनार्यों से पले है,  
 यह अयोध्या तानकर सोती रही है ।”<sup>160</sup>

अतः हम कह सकते हैं कि सीता वह सहिष्णु नारी है, जो शिव की भाँति हर दुःख का गरल ही उसके हिस्से में आया है ।

समग्रतया कहा जा सकता है कि ‘उत्तर रामायण’ महाकाव्य की नायिका सीता आदर्श भारतीय नारी है । सुख के किरणों की रौशनी उसे बहुत कम मिली है, किन्तु दुःखों के अँधकार ने

उसे बार-बार घेरा है। फिर भी अदम्य साहस एवं धैर्य की प्रतिमा बनकर सभी के अनुकरण के योग्य बन पाई है।

## 6.6.2 गौण नारी पात्र :

### 6.6.2.1 सुनयना :

सुनयना राजा जनक की पत्नी एवं सीता की ममतामयी माँ है। जो इस प्रबन्धकाव्य के द्वितीय सर्ग में हमारे समक्ष प्रस्तुत होती है। उनके चरित्र की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं।

#### 6.6.2.1.1 श्रम के प्रति श्रद्धा :

भारत कृषि प्रधान देश है। अतः श्रम के प्रति श्रद्धा भारतीय संस्कृति की प्रधान विशेषता है। सुनयना भी भारतीय नारी है। राजरानी होते हुए भी राजा जनक के साथ कृषि यज्ञ में सामिल होती है। जैसे साधारण कृषक के पिछे कृषक की नार खेतों में काम करती है, उसी भाँति वह भी राजा जनक के साथ श्रम यज्ञ करती है। कवि के शब्दों में —

“जनक के कृषि यज्ञ का अन्तिम चरण है,  
उर्वरा धरती विमल पर्यावरण है।

X X X

यज्ञशाला छोड़ राजा जनक आए,

हल चलाने खेत पर बन कृषक आए।

सुनयना भी साथ में तैयार ऐसे

कृषक के पीछे कृषक की नार जैसे।”<sup>161</sup>

#### 6.6.2.1.2 मातृत्व की प्यास :

सुनयना के दिल में मातृत्व की प्यास देखने को मिलती है। वह सोचती है कि भूमि सभी को मुक्त हाथों से देती है, तो मैं रिक्त हाथों नहीं रहूँगी। उसके हृदय में सन्तान सुख का स्वप्न पलता था। उसके उर की अदम्य आकांक्षा है कि चाहे महल छीनकर उसे कुटिया ही भले दे, किन्तु उसे एक सन्तान दे दे। स्त्री के लिए सन्तान प्राप्ति स्वर्ग-सा सुख कहलाता है और सुनयना को सन्तान के रूप में बेटे की चाह नहीं है। वह तो बेटों को बेटे से भी ज्यादा महत्व देती है। उसे एक ऐसी बेटों का चाह है, जो लाख बेटों से भी बड़ी हो। विधि ने उसकी प्रार्थना सुन भी ली। कुन्दन की कली-

सी सीता को पाकर उसके आनन्द की कोई सीमा न रही। वह भूमिजा को जनकपुर ले जाकर माँ के रूप में सभी कर्तव्यों को निभाती है।

### 6.6.2.2 मंदोदरी :

मंदोदरी भी प्रस्तुत काव्य के द्वितीय सर्ग में हमारे समक्ष प्रकट होती है। मंदोदरी के पात्र द्वारा डॉ. काबराजी ने कथा में नाविन्य प्रकट किया है। कवि ने मंदोदरी को सीता की माँ बताया है। मंदोदरी के मुख से कवि ने सीता के जन्म की अजीब कथा कही है। उसके कथनानुसार वह सीता की एक ऐसी अभागन माँ है, जिसने उसे गर्भ में तो पाला, किन्तु जन्म देते ही उसका त्याग करने के लिए विवश होना पड़ा। वह अपने पति के निरंकुश पापाचार से पोषित कुशासन को शांत नहीं कर पाती थी और न ही उसके अहम् को नष्ट कर सकती थी। उसके जीवन की विषम कहानी उसीके शब्दों में सुनिए -

“मैं हताशा से धिरी थी और  
 फिर संयोग ऐसा आ गया था -  
 साधना से पूत ऋषियों ने  
 दिया था दण्ड दण्डक काननों से  
 द्रव्य मिलता भी कहाँ उन आश्रमों में  
 रक्त ही बस, मिल सका रिक्ताश्रमों में।  
 कुंभ में भरकर वही सब तो मुझे पति ने दिया था।  
 “विष भयानक है।”  
 मुझे संकेत भी उनने किया था।  
 मैं स्वयं को नष्ट करने के लिए  
 उस द्रव्य को ही विष समझकर पी गई थी  
 इस अटल विश्वास को लेकर  
 कि इससे आज मेरे कष्ट का तारण हुआ है,  
 किन्तु वह तो सत्य था, जीवन्त था  
 जो गर्भ में जाकर सिया के जन्म का कारण हुआ है।<sup>162</sup>

कवि ने इस प्रकार के जन्म की एक नयी कथा रखकर कथा के प्रवाह को एक दूसरी ही ओर

मोड़ा है। कुंभ का द्रव्य पीकर मंदोदरी जीवन से मुक्ति चाहती थी किन्तु उसके जीवन की उलझन और बढ़ जाती है। कुंभ के द्रव्य से सिया के गर्भ का अवतरण होने से लोकापवाद एवं रावण से अपनी सुरक्षा के लिए वह चिंतित हो जाती है। और इसी कारण जन्म के तुरंत बाद सिया का त्याग करती है। वह अपने को सिया की माँ बतलाती है, किन्तु खरे अर्थ में वह उसकी अधिकारिणी नहीं है। इतना ही नहीं जब उसे पता चलता है कि यह, पुत्री दशानन (उसके पति) के पतन के मूल में होगी, तब मंदोदरी सिया को शाप देती है।

“यदि यह सिया लंकेश के अवशान का कारण बनेगी

शाप है मंदोदरी का -

स्वर्ण की लंका सिया के चरितगत

अवसाद का, अपमान का कारण बनेगी।”<sup>163</sup>

वह अपने को सिया की माँ तो बतलाती है, किन्तु माँ भूमि के कथनानुसार उसमें माता का एक भी गुण नहीं है। माँ भूमि तो मंदोदरी का ऐसा आचरण देखकर उसे पातकी, घातकी, नागिन जैसे संबोधन से पुकारती है और कहती है कि तुने माँ के कर्तव्य का निर्वाह नहीं किया है, किन्तु मैं कसौटी के समय अपनी बेटी को हृदय में विश्राम दूँगी।

मंदोदरी माँ के रूप में भले ही सफल न हो पाई हो किन्तु वह एक आदर्श पत्नी है। भूमि का शाप उसे अच्छी तरह से याद है। समय - समय पर वह अपने पति को मृत्युबोध का एहसास दिलाती रहती है।

“शूर्पनखा का बदला सीता-हरण नहीं है मेरे स्वामी !

जहाँ सिया का चरण, आपका वहीं मरण है मेरे स्वामी।

सीता तो कन्या है, उसको नहीं बनाकर मौत बुलाओ।

मेरी ही छाती पर कोई और नहीं अब सौत बुलाओ।”<sup>164</sup>

### 6.6.2.3 कुकुआ :

कुकुआ राजा दशरथ की प्रिय रानी कैकेयी की बेटी है। इस काव्यग्रंथ के तृतीय सर्ग में वह हमारे समक्ष प्रस्तुत होती है। अक्सर देखा गया है कि स्त्रियों का जितना पुरुषों ने नहीं बिगाड़ा है, उतना स्त्रीयों ने बिगाड़ा है। ‘स्त्री स्त्री की दुश्मन है’ इस बात का प्रमाण है कुकुआ। कैकेयी ने तो राम को चौदह साल वनवास दिया था और बाद में पश्चाताप की अग्नि में जलकर पावन बन गई थी

किन्तु कुकुआ तो राम और सीता के समग्र सुखों को नष्ट करने की ठान लेती है। जब राम अपने महल में चित्र विथिका के भित्तिचित्र देखते-देखते सिया की खोज में वन-वन भटकते हुए अपना चित्र देखते हैं तब उस चित्र पर पड़े हुए एक अँगूठे के रेखाचित्र पर उनकी द्रष्टि पड़ती है। वे सोचते हैं कि यह तो दशानन के अँगूठे का चित्र है। यहाँ भित्ति चित्र पर यह किसने बनाया होगा? तभी ननद होते हुए भी कुकुआ सीता के निष्कलंक चरित्र को कलंकित करने हेतु राम से कहती है —

“हमारी ज्येष्ठ भाभी ने यहाँ अद्भूत कला पाई।  
छुआ लंकेश को चाहे न बाएँ हाथ से भैया !  
बनाया चित्र तो निःशंक दाएँ हाथ से भैया !  
अरे, यह चित्र रावण का अँगूठा चित्र है भैया !  
अँगूठा ही बना है, पर अनूठा चित्र है भैया !  
रही रनिवास में लंकेश के सीता कई दिन तक,  
बताओ, किस तरह यह चित्र झूठा चित्र है भैया !”<sup>165</sup>

सीता के चरित्र के बारे में ऐसा अनर्गल कहकर वह राम के मन में विष घोलने का प्रयत्न करती है। वह अपनी माँ पर लगे कलंक का बदला लेना चाहती है। वह कहती है - माँ भले ही बदल गई हो, भले ही भरत चौदह साल साधु की तरह रहे हों, किन्तु मैं चुप रहनेवाली नहीं हूँ। उन्हीं के शब्दों में —

“सबने कलंकित कर दिया माँ को,  
किया दूभर यहाँ जिना सभीने।  
ठीक है, माँ न दिलाया था तुम्हें वनवास,  
केवल पुत्र के सुख हेतु।  
राघव ! मैं तुम्हारे सब सुखों को  
दूसरा वनवास दिलाकर रहूँगी।”<sup>166</sup>

कुकुआ में प्रबलतम ईर्ष्या का भाव देखने को मिलता है। यहाँ तक कि वे मंथरा की, मंदोदरी की और शूर्पनखा की बेटियों के साथ मिलकर राम और सीता का दाम्पत्य जीवन नष्ट करना चाहती है। वह राम से स्पष्ट शब्दों में कहती है कि अपमानित और उपेक्षित चार माँओं की बेटियाँ हम सब मिलकर प्रतिशोध लेंगे। उन्हीं के शब्दों में —

“सब विरोधी हो गए है नष्ट चाहे  
 शत्रु चाहे हो गए रण में पराजित  
 सबल चारों बेटियाँ आज तक बची है ।  
 राम पूरे सत्य को हम नष्ट कर देंगी,  
 तुम्हारे विहँसते दाम्पत्य को निकृष्ट कर देंगी ।  
 अरे, जिसके गुणों का गान करते तुम नहीं थकते,  
 सुनो, उस जानकी के नाम को हम भ्रष्ट कर देंगी ।”<sup>167</sup>

इस प्रकार कुकुआ के चरित्र में हमें ईर्ष्या एवं द्वेष की तीव्रतम भावना देखने को मिलती है ।

### 6.6.3 अन्य नारी पात्र :

#### 6.6.3.1 शूर्पनखा :

शूर्पनखा ऋषि पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा एवं दैत्य सुमाली की पुत्री कैकसी की बेटी है । इस काव्य ग्रंथ के तृतीय अंक में वह हमारे समक्ष उपस्थित होती है । राम, लक्ष्मण एवं सीता पंचवटी में पर्णकुट्टि बनाकर रह रहे हैं, वहाँ प्राकृतिक सौंदर्य के बीच कृत्रिम सुंदरता का मुखौटा पहनकर वह उपस्थित होती है । वैसे नारी सुंदरता का प्रतीक है, किन्तु यह कृत्रिमता में पलनेवाली, मुक्त यौन सम्बन्धों की संस्कृति में पलनेवाली स्वच्छन्द नारी है । निर्लज्जता एवं बेहयाई उसकी स्वाभाविक विशेषता है ।

पहले तो वह पंचवटी में आकर राम के समक्ष अपने रूप का डेरा डालकर उससे प्रणय निवेदन करती है, किन्तु एक पत्नीव्रत धारी राम ने अपने भाई लक्ष्मण की ओर इंगित करके उसकी मायाझाल से मुक्ति पा ली । शूर्पनखा तुरंत लक्ष्मण के पास जाकर प्रणय की भीख माँगने लगती है । लक्ष्मण पर भी उसके रूप का कोई जादू न चला, बल्कि उसकी नाक कट गई । लक्ष्मण ने उसके नकाब को हटाकर अपमानित करके उसके आडम्बर की पोल खोल दी ।

कहा जाता है कि पुरुष अपने पौरुष का अपमान भूल जाता है, किन्तु नारी अपनी रूप का अपमान सात जन्म तक नहीं भूल पाती है । शूर्पनखा भी अपने रूप का इस तरह अपमान सह न सकी । बदला लेने के लिए वह खर-दूषण को भेजती है । लगता है कवि ने शूर्पनखा के पात्र के द्वारा यही बतलाया हो कि शूर्पनखा जैसी स्वेच्छाचारी औरतों के कारण ही परिवार एवं समाज में लड़ाई-झगड़े और युद्ध तक की भी नौबत आती है । मानों शूर्पनखा के द्वारा कवि ने आधुनिक नारी की



स्वेच्छाचारी मनोवृत्ति का खुला चित्रण किया हो। कवि के शब्दों में —

“जो प्रतिक्षण पति बदले, उसके नाक कहाँ हो, कान कहाँ हो?  
 स्त्री की नाक शील है, उसके कान काम की मर्यादाएँ,  
 इनके बिना सभी प्रमदाएँ केवल नर की है मादाएँ।  
 नाक-कान के बीच समूचे जीवन की है द्रष्टि हमारी  
 कान-नाक के रन्ध्रे जुड़े हैं भीतर-भीतर शब्द-गंध से,  
 ये फिर सीधे मिले हुए हैं ऊपर जाकर ब्रह्म रन्ध्र से।  
 स्त्री का प्रणय-निवेदन-अस्वीकार  
 नाक कटना ही तो है।  
 स्त्री के धृणित कुरेदन का दुत्कार  
 कान कटना ही तो है।  
 मात्र रूप पर वही टिकी,  
 जिसमें कुछ दुर्लभ तत्व नहीं है।  
 बिना रूप के उस नारी का  
 फिर कोई अस्तित्व नहीं है।”<sup>168</sup>

अर्थात् कवि ने हमें समझाया है कि नारी का अलग-अलग पुरुषों के सामने प्रणय की याचना करते हुए भटकने में एवं अपमानित होने में उनका कोई अस्तित्व नहीं रहता। नारी का मूल्य उसके गुण एवं गरिमा से बनता है।

### 6.6.3.2 त्रिजटा :

त्रिजटा रक्ष जाति की, किन्तु सीधी, सरल एवं भोली सेविका है। अपार वात्सल्य एवं निर्मल स्नेह से वह अशोक वाटिका में सीता को सँभालती है। सीता को त्रिजटा से माता-सा ममत्व एवं सखी-सा स्नेह मिलता है। लंका से जुड़ी हुई प्रत्येक गतिविधियों का सरल, संक्षिप्त, सांकेतिक व सहज विवरण वह सीता को बता देती थी। इस प्रकार रक्षिकाओं के बीच भी सीता रक्षित थी। सीता को वह अपनी बेटी ही मानती थी। एक माँ जिस प्रकार अपनी बेटी को ससुराल भेजती है, उसी प्रकार, त्रिजटा भी रावण वध के बाद सीता को वनपुष्पों, पल्लव, रूप, रंग, स्पर्श-गंध से अपने हाथों से शृंगार करके बिदा करती है।

### 6.6.3.3 गौतमी :

गौतमी महर्षि वाल्मीकि की पत्नी है, जो आश्रम में सीता को मातृतुल्य वात्सल्य प्रदान करती है। सीता को पाकर वह धन्यता का अनुभव करती है। इतना ही नहीं वह उत्साह के अतिरेक में आकर उछलने और नाचने लगती है। उसे लगता है कि सीता के आश्रम में आने से तपोवन का भाग्य बदल जाएगा और कवि वाल्मीकि की रूकी हुई कविता की धारा नूतन छंद से प्रवहमान हो जायेगी। उन्हीं के शब्दों में उनका हर्षोल्लास द्रष्टव्य है —

“आज का दिन इस तपोवन के लिए  
सौभाग्य का दिन है महामुनि।  
हाँ महाकवि,  
आपकी कविता कहीं पर हो गई थी बंद जैसे,  
आज घर पर आ गया है एक नूतन छंद जैसे।”<sup>169</sup>

जिस तरह ससुराल से मायके आयी हुई बेटी को देखकर माँ का हर्षातिरेक बढ़ जाता है, उसी तरह सीता को पाकर गौतमी की खुशी की कोई सीमा नहीं रही। आश्रम में आसन्न प्रसवा सीता की सभी प्रकार की देखभाल वह करती है।

### 6.6.3.4 अनसूया :

अनसूया महान विदुषी एवं महर्षि अत्रि की पत्नी थी। जो इस काव्यग्रंथ के द्वितीय सर्ग में हमारे सामने आती है। राम, लक्ष्मण और सीता वन में निरन्तर आगे ही आगे बढ़ते जाते हैं। वन्य मार्ग में महर्षि अत्रि एवं अनसूया का आश्रम देख, ये तीनों उनसे मिलने का सौभाग्य पाते हैं।

अनसूया का नाम भारतीय विदुषीओं में बड़े गर्व एवं आदर से लिया जाता है। ज्ञान की पिपासा लेकर आये हुए तीनों पथिकों को अनसूया जीवन-दर्शन का दान देती है। जीवन को सफलता के उच्चतम शिखर तक पहुँचाने के लिए पति एवं पत्नी के बीच समायोजन होना बहुत आवश्यक है। जीवनरथ को पूर्णता तक ले जाने के लिए पति एवं पत्नि अपने-अपने कर्तव्यों को सही तरह से समझेंगे तो जीवन गंगाजल की तरह पवित्र हो जायेगा। कवि ने अनसूया के मुख से यही उपदेश सिखाया है। उन्हीं के शब्दों में —

“पति के प्रति सम्पूर्ण समर्पण  
पत्नी का संबल है बेटी !

रंच मात्र क्षति घातक है,  
अबला का मन तो निर्बल बेटी !

X      X      X

पत्नी का कर्तव्य यही -  
पति को महान पथ पर ले जाए ।  
पति का भी कर्तव्य -  
पूर्णता तक उसको रथ पर ले जाए ।  
वैवाहिक जीवन समझौते और समायोजन का फल है ।  
जिसने इसको समझ लिया है,  
उसका जीवन गंगाजल है ।”<sup>170</sup>

सचमूच ही अनसूया का जीवन-दर्शन आधुनिक गृहस्थों के लिए भी सफल जीवन की कुंजी समान है ।

### 6.6.3.5 उर्मिला :

उर्मिला लक्ष्मण की पत्नी और सीता की देवरानी एवं छोटी बहन है । उसके तप एवं त्याग की जितनी प्रशंसा करे, उतनी कम है । रामकथा की सफलता का पूरा यश इसीके हिस्से में जाता है । सीता तो पातिव्रत्य धर्म का निर्वाह करने हेतु राम के साथ वन में जाती है, किन्तु उर्मिला को तो यह मौका ही नहीं मिलता है । उसके तप और त्याग की कितनी बड़ी कसौटी होती है । नववधू के रूप में आते ही पूरे चौदह वर्ष तक पति का वियोग वह कैसे सह सकी होगी? यदि वह भी अवध में न रहकर सीता की तरह पति के साथ जाने की हठ करती तो राम और सीता महान नहीं होते । राम और सीता से भी धन्य लक्ष्मण और उर्मिला है । जिसने चौदह वर्षों तक मौन रहकर तन-मन की आहुतियाँ देकर पुरजन, परिजनों की सेवाएँ की है । सीता के मुख से कवि ने इन दोनों चरित्रों की महानता के गुणगान कराये हैं ।

“छोड़ सभी सुख-सुविधाएँ,  
सारे विलास सब हास और परिहास ।  
मौन होठों के दो-दो कोष्ठ में  
निर्विघ्न चार आँखों की चौकीदारी में

निर्बाध साँस लेता था

जैसे चौदह वर्ष का पुरा ही रघुवंशी इतिहास।”<sup>171</sup>

अर्थात् वन में लक्ष्मण राम-सीता को सँभालते थे और अवध में उर्मिला जन-परिजनों की देखभाल करती थी। सभी प्रकार की सुख-सुविधाएँ, सारे भोग विलास, हास-परिहास सब कुछ छोड़कर ये निष्काम कर्म करते रहे। चौदह साल में योगियों की तरह समाधि अवस्था में ही इनका मिलन हो पाया है।

इस प्रकार उर्मिला का तप एवं त्याग अनुपम है। प्रेम एवं कर्तव्य के द्वन्द्व के बीच कर्तव्य की प्रधानता उसके चरित्र को महानता प्रदान करता है। उर्मिला के चरित्र के इन्हीं आदर्श गुणों के कारण ही कविवर मैथिलीशरण गुप्त जैसे सशक्त कवि ने अपनी लेखनी के संस्पर्श से उसे काव्य जगत में उच्चासन पर आरूढ़ किया होगा !

#### 6.6.3.6 शबरी :

शबरी राम की अनन्य भक्त थी। वह पंपा सर के तट पर बैठकर प्रतिदिन राम के आने की राह देखती थी और उसके लिए सुस्वाद मीठे बेर लाकर रखती थी। उसकी अनुपम भक्ति के कारण उसके उर की अदम्य आकांक्षा पूरी होती है। राम उसके मीठे मधुरे बेर खाने जाते हैं और उसे नवधा भक्ति की भेंट भी दे आते हैं।

#### 6.6.3.7 शान्ता :

शान्ता ऋषिवर ऋष्य श्रृंग की पत्नी एवं सीता की ननद थी। वह इस काव्यग्रंथ के तृतीय सर्ग में हमारे समक्ष उपस्थित होती है। यहाँ उसका नामोल्लेख मात्र किया गया है। उनके आश्रम में बारह वर्षों तक चले ऐसे यज्ञ-सत्र का आयोजन किया जाता है, जिसमें निमंत्रित तो सब थे, किन्तु केवल कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी ये तीनों माताएँ ही वहाँ उपस्थित हो सकी थी। काव्य के कथा-प्रवाह को आगे बढ़ाने के अलावा इस चरित्र का कोई विशेष महत्व नहीं है।

#### 6.6.3.8 कैकसी :

कैकसी के चरित्र का भी कथा में कोई विशेष महत्व नहीं है। केवल नामोल्लेख मात्र किया गया है कि कैकसी दैत्य सुमाली की पुत्री है, जो दैत्य कूल की है, किन्तु ऋषि पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा ने उसे पत्नी के रूप में सम्मान दिया। शूर्पनखा इसी दो मिश्रित संस्कृति की मिश्रित प्रकृतिवाली संतान है।

इस प्रकार कैकसी के पात्र का केवल नामोल्लेख ही द्रष्टिगत होता है।

### 6.6.3.9 कल्याणी :

इस काव्यग्रंथ में कल्याणी के पात्र का भी कवि ने नामोल्लेख मित्र किया है। महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में वह सिया की प्रसूति का काम करती है।

### 6.6.3.10 कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी :

ये तीनों अवध के राजा दशरथ की पत्नियाँ हैं। जिसमें कौशल्या राम की माता है, सुमित्रा लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न की माता है और कैकेयी जो दशरथ की तीनों रानियों में सबसे प्रिय हैं - भरत की माता है। रानी कैकेयी अंधे पुत्र मोह के कारण अपने पुत्र भरत को राज्य और कौशल्यानंदन राम को चौदह वर्षों का वनवास दिलाती है। जिसके फलस्वरूप राजा दशरथ की पुत्र वियोग में मृत्यु होती है। चूँकि यद्यपि बाद में वह पश्चाताप की गंगा में नाहकर पावन भी हो जाती है।

ये तीनों पात्र सीता के स्मृति मंथन के पात्र हैं। चित्रकूट में भरत के साथ कौशल्या, सुमित्रा एवं कैकेयी भी आते हैं, जिनके श्वेत वस्त्रों से राम, सीता एवं लक्ष्मण को दशरथ के निधन का संकेत मिल जाता है। सीता का स्मृति चित्र देखिए —

“था छिन्न हृदय, था खिन्न वदन,  
तीनों सासे थी श्वेत वस्त्र में  
कंकण जिनके टूट गए  
सिंदूर हुआ था अस्त।”<sup>172</sup>

तीनों सासों सीता से बहुत प्यार करती हैं। सीता जब गर्भवती होती है, तब तीनों सासों उसकी बड़ी देखभाल करती हैं। तीनों की सेवा-सुश्रुषा द्रष्टव्य है —

“पहला मास लगा सीता को, कौशल्या हरषाती,  
कंगन हार, करधनी, बेसर हाथों से पहनाती।  
थोड़े जामुन, थोड़ी अमिया देती कर मनुहार

X    X    X

लगा दूसरा मास कैकेयी लाई हीरे-मोती,  
पछ्तावे के धागे में वह आई स्नेह पिरोती।

अलस भरे दिन उलटी जैसे सिर पर हुए सवार,

X X X

लगा तीसरा मास, सुमित्रा लाई पान-सुपारी,

मखमली गादी, मसरू तकिया, शीतल जल की झारी ।

दुल्हन से अब कहो कि ज्यादा नहीं उठाए भार ।”<sup>173</sup>

इस प्रकार तीनों सासों सिया को खुश रखने के प्रयत्न करती है । जब तीनों सासों अपनी ननद शान्ता के आश्रम में महायज्ञ के समय उपस्थित होती है, तो वहाँ भी उसे अन्तःसत्वा सीता की चिन्ता ही लगी रहती है । अतः ये तीनों वहाँ से सीता की अच्छी तरह से देखभाल करने के लिए संदेश भिजवाती है —

“दोहद की सीमा पर खड़ी हुई है सीता,

राम कभी मत रखना उसके मनको रीता ।

मुक्ता-कण पल रहे सिया की गर्भ-सीप में

ज्योति-पुंज जल रहे सिया के स्वर्ण-दीप में ।

इच्छाओं पर ध्यान बराबर धरते रहना,

मेह-नेह की पूर्ति बराबर करते रहना ।

सुख-सुविधाओं का संशोधन करना प्रतिदिन,

मनरंजन के नव आयोजन करना निशिदिन ।”<sup>174</sup>

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कौशल्या, सुमित्रा एवं कैकेयी को सीता के प्रति गहरी अनुरक्ति है ।

### 6.6.3.11 मंथरा :

रामकथा में मंथरा का पात्र बड़ा ही चर्चित पात्र है । वह रानी कैकेयी की प्रिय दासी है । अपनी स्वामिनी के प्रति ज्यादा आशक्ति होने के कारण वह कैकेयी को राजा दशरथ के पास तुरंत वरदान माँगने के लिए उकसाती है । उसने कैकेयी के ऐसे कान भरे हैं कि वह राम को चौदह साल का वनवास और भरत को राज्य मिले ऐसा वरदान दशरथ के पास माँग लेती है । वचन को प्राण से भी अधिक प्यारा माननेवाले दशरथ को वह वरदान देना पड़ता है और पुत्र वियोग में प्राण त्यागना पड़ता है । इस प्रकार अनिष्ट घटना की योजना बतानेवाली मंथरा को कवि ने भी विपथगामी कहा है ।

जिसके कारण उसे ताड़ना एवं अपमान सहना पड़ता है। कवि तुलसीदास ने भी कदाचित् ऐसी नारी को ही 'ताड़न के अधिकारी' बताया है। यद्यपि वह भी कैकेयी की तरह पछतावा प्रकट करके सुपथगा-सी बन गई थी।

### 6.6.3.12 मांडवी और श्रुतकीर्ति :

ये दोनों सीता की प्यारी, दुलारी बहनें एवं देवरानियाँ हैं। मांडवी भरत की पत्नी एवं श्रुतकीर्ति शत्रुहर्ष की पत्नी हैं। ये दोनों स्नेहिल एवं मनस्वी हैं। सीता के पाँव भारी होते ही ये उनकी सेवा में जुट जाती हैं और सीता को खुश रखने के सभी प्रयत्न करती हैं। देखिए —

“लगा पाँचवा मास मांडवी बहना करती सेवा,  
दाख-चिरौंजी, काजू-मिश्री देती सुखा-मेवा।  
बातें करती गीत सुनाती रोज नए दो चार,

X    X    X

नौवा मास लगा ज्यों ही श्रुतकीर्ति पास में आकर,  
बोली 'जो भी चीज चाहिए, मैं दे दूँगी लाकर।  
यह है अन्तिम मास बहन, फिर तो है बेड़ा पार।”<sup>175</sup>

इस प्रकार ये दोनों बहनें बहन होने के साथ-साथ देवरानी होने का फर्ज भी बड़े प्यार से निभाती हैं।

### 6.6.3.13 धोबीन :

धोबीन अर्थात् अवध के धोबी रजक की पत्नी। जिसके नाम का उल्लेख कवि ने नहीं किया है, फिर भी उसके चरित्र का उल्लेख करना हमारे लिए आवश्यक है। यह उस रजक की पत्नी है, जिसने कुशंका की एक ही चिनगारी से सीता के सुखमय संसार को छिन्न-भिन्न कर दिया। रजक अपनी पत्नी को इसीलिए घर से निकाल देता है कि वह सरयू नदी पर कपड़े धोने गई थी, किन्तु देर हो जाने से वह घर न पहुँच पाई और विवश होकर कोई परिचित के घर रुक गई। दूसरे दिन जब वह अपने घर जाती है तो रजक उसका अस्वीकार करता है। धोबीन ने अपने को पवित्र साबित करने के लिए पति से कितनी ही बिनती की, राम की दुहाई दी, नरक की, स्वर्ग की, अपवर्ग की, पुण्य की, पाप की दुहाई दी, किन्तु वह उस से मस न हुआ और उसे धक्का देकर निकाल दिया और राम का नाम न लेने के लिए कहता है। तभी धोबीन श्रीराम के पुनित चरित्र को प्रकट करती हुई पति से

कहती हैं —

“मैं क्यों न लूँ श्रीराम का शुभ नाम?

राजा राम का प्रिय नाम?

अंधे, कौन है श्रीराम?

उनके जानता हे काम?

कितने है बड़े सब काम,

फिर भी पूर्णतः निष्काम ।

पापी !

एक है श्रीराम जिसने सह लिया वनवास

आँखें बन्द कर चुपचाप,

लेकिन की नहीं शंका जरा भी भरत पर,

माँ कैकेयी पर, मंथरा पर इस विषय में ।

रह गई दशानन के यहाँ कितने दिनों तक,

किन्तु राजा राम ने शंका नहीं की ।

आह, प्राणों से अधिक प्रिय जानकी पर !

वध किया दशग्रीव का,

फिर खूब आदर से लिवा लाए स्वयं के साथ

सीता को बिना शंका किए ।

एक तू है, कर रहा जो शील पर मेरे कुशंका?”<sup>176</sup>

अर्थात् धोबीन अपने शील की शुद्धता साबित करने के लिए राम का उदाहरण देती है कि दशानन के यहाँ सीता कितने ही दिनों तक रही, किन्तु राम ने उसके चरित्र पर शंका नहीं की अपितु बड़े आदर से उसे अपने साथ लाये । और तू है कि केवल एक रात विवशता से मुझे परिचित के यहाँ रुकना पड़ा तो मेरे चरित्र पर कुशंका कर रहा है? वह कहती है कि मैं वहाँ भी राम के ही राज्य में बड़े विश्वास से रही हूँ । जानकी की तरह रावण के रनिवास में तो जाकर नहीं रही हूँ? किन्तु धोबी धोबीन की एक भी बात नहीं सुनता है । आखिर मैल ही तो देखना था उसे । वह पत्नी की एक भी बात नहीं सुनता है और उसे अपमानित करके घर से निकाल देता है ।

धोबीन रूदन करती हुई, अवध के राजप्रासाद के पास जाती है । न्याय देने के लिए जब राम



उसे बुलाते हैं, तब वह अपनी सारी दुःखद कहानी राम से बता देती है। वह कहती हैं —

“प्रभो, इस राज्य में निर्दोष निर्धन एक अबला की  
खुले आकाश के नीचे व्यवस्था लहु लुहाई है।  
प्रभो मैं एक धोबीन हूँ!  
मगर अब तक नहीं धो पा रही हूँ वे कलंकित शब्द,  
जो मेरी चदरिया पर लगे हैं।”<sup>177</sup>

राम रजक के वहम को संतोष न मिल जाए, तब तक धोबिन को निर्भयता से अतिथिगृह में रहने की व्यवस्था करते हैं।

इस प्रकार धोबीन के जीवन की दुःखद घटना ‘उत्तर रामायण’ की कथा की सांकेतिक घटना है, जिसके कारण सीता को भी दुसरा वनवास मिलता है। धोबीन उसकी निमित्त बनती है।

## 6.7 उत्तर भागवत :

‘उत्तर भागवत’ श्रीमद् भागवत महापुराण की कथा पर आधारित महाकाव्य है। जिसमें कवि ने ‘परमात्मा कृष्ण’ को ‘पुरुषोत्तम कृष्ण’ बनाकर अपनी लेखनी पर आरूढ़ किया है। प्रस्तुत महाकाव्य की कथा उपसंहार से प्रारंभ होकर पूर्वाभिमुख की ओर पूर्वदीप्ति शैली से प्रवाहित होती है। प्रभासक्षेत्र से शुरू हुई कथा पूरे जीवन की परिक्रमा करके पुनः प्रभास क्षेत्र में समाप्त होती है। पूरी कथा कृष्ण की मनः स्थिति की उपज है। महानायक कृष्ण सरस्वती नदी के तट पर स्थित अस्वत्थ वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ अवस्था में बैठे हुए हैं। उनके पदतल में व्याघ्र का विषबाण लगने से रक्त की बूँदे टपक रही है। व्याघ्र वह बूँदे पोंछता जाता है। कृष्ण को अपने अतीत की प्रमुख एवं महत्वपूर्ण घटनाएँ स्मृतिपटल पर अंकित हो जाती हैं। कवि ने नौ स्थानों और नौ अवस्थाओं से जुड़ी कथा को नौ स्कन्धों में ‘उत्तर भागवत’ में आबद्ध किया है।

राधा इस महाकाव्य की नायिका है। जिसके बिना कृष्ण की कल्पना ही दुर्लभ है। समग्र प्रबन्ध में पुरुषपात्र के अंतर्गत कृष्ण के अतिरिक्त नन्दबाबा, वसुदेव, अक्रूर, बलराम, उद्धव, सांदिपनी, भीष्म, सुदामा, दुर्योधन, अर्जुन, दुर्वासा, विदुर नारद आदि मानवीय एवं दारूक, वृणावर्त, वत्सासुर, बकासुर, अघासुर, शंखासुर, बभ्रुवाहन, जयद्रथ, शिशुपाल, शाल्व, भौमासुर आदि दानवी पात्र हैं। किन्तु हम यहाँ केवल नारीपात्रों का ही विश्लेषण करेंगे।

नारी पात्रों के अंतर्गत राधा, यशोदा, देवकी, द्रौपदी, रुक्मिणी, विदुरानी, कुब्जा, पूतना, गांधारी, कुन्ती, राहिणी, उत्तरा, कृष्ण की पटरानियाँ, गोपियाँ आदि हैं। जिन्हें हम मुख्य नारीपात्र, गौण नारीपात्र एवं अन्य नारीपात्र के रूप में विभाजित कर उनके चरित्र का विश्लेषण करेंगे।

### 6.7.1 मुख्य नारी पात्र :

#### 6.7.1.1 राधा :

राधा 'उत्तर भागवत' की नायिका है। जिसके बिना कवि 'उत्तर भागवत' की कल्पना भी अधूरी समझते हैं। राधा और कृष्ण दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। वास्तव में एक के बिना दूसरे की कल्पना दुर्लभ ही है। "राधा कृष्ण की जीवन शक्ति है और कृष्ण राधा के जीवनाधार। वहाँ दैहिक आकर्षण नहीं है, न ही स्वकीया या परकीया का द्वन्द्व। वहाँ तो काया और छाया जैसा अद्वैत है - अर्धनारीश्वर जैसा। कृष्ण वृंदावन छोड़कर मथुरा चले गए और फिर लौटे नहीं, पर राधा बरसाने में ही रही। कृष्ण के मार्ग का अवरोध कभी नहीं बनी, उलटे स्वयं उलटकर धारा बन गई और तक्रधारा से लेकर रक्तधारा तक कृष्ण के साथ रही।"<sup>178</sup> कृष्ण के साथ न रहकर भी वह सदा-सर्वदा कृष्ण की स्मृतियों में धारा बनकर बही है। उसके चरित्र को हम विस्तृत रूप से चित्रित करेंगे।

#### 6.7.1.1.1 भोली-भाली बालिका :

प्रस्तुत महाकाव्य के तृतीय स्कन्ध में मोर-काक संवाद में राधिका के बचपन का शब्द चित्र हमारे समक्ष द्रष्टिगत होता है। काक से गोकुल की मीठी-मधुरी प्यारी-सी श्याम-सलौने कृष्ण के माधुर्य की बातें सुनकर मोर भी काक से बरसाने की बातें बताने को तत्पर हो जाता है। मोर काक से अपनी भोली-भाली राधिका का जो परिचय कराता है, उसका चित्रण मयूर के ही शब्दों में द्रष्टव्य है —

“बरसाने में एक बहन राधा मेरी,  
भोली-भाली ज्यों रत्नों की हो ढेरी।  
नन्हीं-मुन्नी है सोने की गुड़िया-सी  
मेरी बहना है औषध की पुड़िया-सी।  
उसे देखकर तीन ताप मिट जाते हैं,  
जन्म-जन्म के पाप-शाप कट जाते हैं।”<sup>179</sup>

अर्थात् वृषभानुजा बहुत ही भोली-भाली है। वह कान्ह की हमजोली-सी लगती है। मोर

प्रतिदिन बालिका राधा के आँगन में जाकर नाच दिखाकर उसका मन बहलाता है। राधा भी उसे मुट्ठी भर-भरकर दाना देती है।

इस प्रकार राधा भोली-भाली प्यारी-सी गुड़िया-सी बालिका है।

### 6.7.1.1.2 किशोरी रूप में राधा :

राधा का किशोरी रूप भी बड़ा मन-मोहक है। उसमें किशोरी सहज जिज्ञासा, प्रेम, हास्य, लाज, लावण्य आदि गुण भरे हुए हैं। राधा का प्रथम परिचय जब कृष्ण से हुआ, तब कृष्ण एक सुकुमार ऐसी किशोरी को देखते ही रह जाते हैं। उसका किशोरी रूप कवि के शब्दों में —

“कृष्ण ने देखा, तरू के पास-  
किशोरी एक खड़ी सानन्द ;  
नयन में जिज्ञासा का भाव,  
हृदय में स्पन्दन, पद में छन्द ।  
पलक में अपलक प्रेम प्रवाह  
और ओठों पर खिलता हास्य ;  
वदन पर लाज युक्त लावण्य,  
देह के अणु-अणु में है लास्य ।”<sup>180</sup>

राधा कृष्ण का प्रथम मिलन बड़ा ही मनोहर है। किशोरी राधा को देखकर, उसे मिलने कृष्ण निःशंक, तीन डग आगे बढ़ते हैं। किशोरी राधा भी बिना हिचक, बिना संकोच तीन डग आगे बढ़ती है। काक-मयूर कथा के संदर्भ में राधा कृष्ण के प्रथम मिलन के संवाद में दोनों की किशोरावस्था की साहजिकता दर्शनीय है —

“सहज कान्ह ने पूछा प्रश्न -  
शब्द में माखन-मिसरी धोल -  
‘गुंथी चूड़ामणि वेणी बीच,  
मिली यह तुम्हें कहाँ अनमोल ।’  
मचलकर बोली बाला कान्त,  
आरती बीच बजा ज्यों शंख -  
‘बताओ, तुम्हें कहाँ से मिला

रत्न से जड़ा मोर का पंख ?  
 'गिराया किसी मोर ने इसे  
 हमारे छत-छाजन के बीच ।'  
 'गिराया किसी काक ने इसे  
 हमारे घर-आँगन के बीच ।'  
 'दिया मैयाने कौए भैया को  
 चूड़ामणि वाला हार ।'  
 'मोर भैया को मेरी मैया से भी  
 मिला पंख उपहार ।'  
 'तुम्हारी भेंट मुकुट के बीच  
 रहेगी सदा हमारे पास ।'  
 तुम्हारी भेंट करेगी वेणी में ही  
 गुंथकर सदा निवास ।'<sup>181</sup>

राधा और कृष्ण के उपर्युक्त संवाद में उनकी किशोरावस्था सहज जिजिविषा, वाक्छटा, विनोदप्रियता एवं तत्परता देखने को मिलती है।

### 6.7.1.1.3 कृष्ण की जीवन शक्ति :

राधा कृष्ण की जीवन शक्ति है और कृष्ण राधा के जीवन के आधार है। दोनों का अन्योन्याश्रित संबंध है। कृष्ण जब बाँसुरी को ओठों पर लगाते हैं, और जब 'राधे-राधे' का स्वर बाँसुरी से निकलता है, तब पूरे उपवन में - मधुबन में 'राधे-राधे' का स्वर गुँज उठता है। राधा की शक्ति का महात्म्य देखिए —

“कान्ह के होठों से ज्यों ही लगी बाँसुरी,  
 'राधे-राधे-राधे' करके जगी बाँसुरी ।  
 पूरा उपवन 'राधे-राधे', 'राधे-राधे'  
 पूरा मधुबन 'राधे-राधे', 'राधे-राधे'  
 कृष्ण तत्त्व धुल गया राधिका की धारा में,  
 राधा भी छिप गई कन्हैया की कारा में ।  
 नहीं बचा यमुना तट और न कुंजगली थी,

केवल नन्दलला थे औ' वृषभानुलली थी,  
जगत कृष्ण पर लगता आधारित हो - ऐसे,  
और कृष्ण राधा पर आधारित हो जैसे ।  
राधा धारा बनकर सारे प्रश्न बहाती,  
और प्रश्न के बाद धार में कृष्ण बहाती ।  
राधा नाम नहीं है, राधा परम सूक्ति है ।  
यही शक्ति है, यही भक्ति है, यही मुक्ति है ।  
यही ब्रह्म - सम्बन्ध सूत्र है, मूल सेतु है,  
कृष्ण कर्म है और राधिका मूल हेतु है ।"<sup>182</sup>

#### 6.7.1.1.4 कृष्ण के प्रति प्रेम समर्पण :

##### 6.7.1.1.4.1 निष्काम प्रेम योगिनी :

राधा और कृष्ण का प्रेम निष्काम है । उन दोनों के प्रेम में कहीं दैहिक आकर्षण या भोग-विलास नहीं है । यहाँ राधा का संपूर्ण रूप से प्रेम समर्पण द्रष्टिगत होता है ।

यमुना के किनारे महारास में राधा और सभी गोपियाँ तन-मन की सुधि खोकर रास में मग्न हो जाते हैं । मानो जैसे कान्ह सभी के अंतरंग बनके खेल रहे हो । इतनी तन्मयता से सभी खेल रही हैं, मानो एक-एक गोपी के साथ एक-एक कान्ह हो । सबके अंग-अंग थिरक रहे हैं । मानो सारी सृष्टि महारास के सहारे घूम रही हो । ऐसे में बीच रास कान्ह चुपके से सबकी आँखें बचाकर रास से हट जाते हैं । राधा भी सब कुछ समझकर कान्ह के साथ ब्रज की कुंजगली में चल पड़ती है । गोपियाँ तो रास में घनश्याम को न देखकर धबड़ा जाती हैं । वे सब ब्रज की गली-गली, फूल-फूल, पात-पात, कली-कली में घनश्याम को ढूँढने लगती हैं । गोपियों का भी कृष्ण पर इतना प्यार है कि वे सब कृष्ण का ही सान्निध्य चाहती हैं । सभी गोपियाँ राधा के साथ छिपे बैठे कृष्ण से प्रेम पूर्ण फरियाद करती हैं कि 'हम सबसे क्या राधा ही प्यारी है तुमको? कि तुम रास अधूरा छोड़कर यहाँ छिपे बैठे हो?'<sup>183</sup> तभी कृष्ण ने महारास के मध्य ही गोपियों को राधिका के निष्काम प्रेम व समर्पित भाव को समझाया । कवि के शब्दों में —

“कान्हा हँसकर बोले, 'तुममें व्यक्ति शेष है,  
कर्म शेष है, भाव शेष है, अभिव्यक्ति शेष है ।

किन्तु राधिका का तो सबकुछ हुआ समर्पित,  
 मात्र यहाँ पर प्रेम लक्षणा भक्ति शेष है ।  
 पाना है तो खोने का अभ्यास बचाएँ ।  
 श्वास पचाएँ, फिर थोड़ा विश्वास पचाए ।  
 नहीं कचाई लेश, सचाई शेष रही, तो -  
 आओ, फिर से यमुना तट पर रास रचाएँ ।”<sup>184</sup>

इस प्रकार यहाँ राधा की प्रेमलक्षणा भक्ति ही द्रष्टिगत होती है ।

#### 6.7.1.1.4.2 निश्छल प्रेम की जलधारा :

राधा और कृष्ण का प्रेम विशुद्ध एवं निश्छल है । कृष्ण की बंसी पर सदा राधा के नाम के स्वर बजते हैं और उन स्वरों में राधा और कृष्ण एक बन जाते हैं, जैसे धारा में तत्त्व । राधा भी कृष्ण के प्रेम की कारा में बँध जाती है । कृष्ण आठों याम राधिका के नाम का स्मरण किया करता है और राधिका भी कृष्ण की आराधिका बन जाती है । इस प्रकार दोनों का प्रेम शुद्ध एवं निश्छल है । कवि के शब्दों में —

“कृष्ण लेते नाम आठों याम, वह  
 बस राधिका है ।  
 कृष्ण में करती सदा विश्राम वह बस, राधिका है ।  
 कृष्ण जिसकी कर रहे आराधना,  
 वह राधिका है ।  
 कृष्ण की करती निरन्तर साधना, वह राधिका है ।  
 जा बसे है कृष्ण जिसके प्राण में,  
 वह राधिका है ।  
 कृष्ण के रहती सदा जो ध्यान में, वह राधिका है ।  
 और  
 बाँसूरी से झरता है - ‘राधे-राधे’, ‘राधे-राधे’,  
 मधुबन का कण-कण करता है — ‘राधे-राधे’, ‘राधे-राधे’ ।”<sup>185</sup>

इस प्रकार कृष्ण राधा के प्रेम में इतने पगला जाते हैं कि चिन्तन के क्षणों में भी राधिका की

स्मृति में डूबकर स्वयं को भूलकर बड़े ऊँचे स्वरमें - ‘राधे-राधे’, ‘राधे-राधे’ पुकारने लगते हैं।

अतः कहा जा सकता है कि कृष्ण और राधा दोनों को परस्पर अनन्य और अद्वितीय प्रेम है, किन्तु फिर भी कहीं भोग विलास या काम-वासना का नामो निशान नहीं है। राधा का प्रेम तो पुनित, पावन, निर्मल एवं निश्छल है। वह संपूर्णतः कृष्ण पर समर्पित है।

### 6.7.1.1.5 राधा का भविष्य दर्शन :

मथुरा में आयोजित धनुष यज्ञ के लिए अक्रूरजी कृष्ण को लेने आते हैं। सुनकर गोपियाँ एवं समग्र ब्रजवासी रोने-बिलखने लगते हैं। नन्दबाबा और यशोदा की पीड़ा का भी कोई पार नहीं है। कृष्ण जब मथुरागमन करते हैं, तब राधिका जानती थी कि अबके बाद कृष्ण से अपना मिलन फिर कभी नहीं हो पायेगा। अतः कान्हा को रोककर अपने लिए सन्देशा पुछ लेती है।

“नन्दगाँव को तो तुमने उपदेशा माधव।

मेरे लिए बचा कोई सन्देशा माधव?<sup>186</sup>

अतः कृष्ण राधा को अपने शेष आधे जीवन में स्थान देने के साथ-साथ मानव सेवा एवं करुणा का सन्देश देते हैं। जाते वक्त राधा से लेन-देन की बातें करते हैं, तब राधा कृष्ण से जो बात कहती हैं, उसमें उसका भविष्य दर्शन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। कवि के शब्दों में —

“राधा ने कान्हा के हाथों रख दी वंशी,

लगा अंश से आज मिल गया उसका अंशी।

बोली, ‘प्राणों की वंशी चुप होने को हो,

जीवन में अधियारा जब धुप होने को हो ;

इस वंशी को ओठों पर रख लेना कान्हा।

उस स्वर को ही तुम मेरा सन्देशा समझो,

मैं वंशी में बसी हुई हूँ - ऐसा समझो’।”<sup>187</sup>

अर्थात् राधा जानती थी कि अब कृष्ण फिर कभी वृंदावन आनेवाले नहीं है, अतः वंशी में बसकर वह कृष्ण का चिर सान्निध्य प्राप्त कर लेती है।

### 6.7.1.1.6 कृष्ण के पथ की बाधिका नहीं :

राधा को कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम है। उसका पूरा जीवन ही कृष्णमय बन गया है। फिर भी

मथुरा जाते कृष्ण को वह नहीं रोकती है। ना ही आधुनिका की तरह आँसू बहाकर उसे कर्तव्यपथ से चलित करने का प्रयास करती है; बल्कि वह तो कृष्ण से सन्देश माँगती है। वह कृष्ण के पथ की बाधिका नहीं, बल्कि प्रेम की अमिय जलधारा बनी है। कवि ने उद्धव के माध्यम से इस बात को रखा है। देखिए —

“अब मुझको आदेश मिले तो मथुरा जाऊँ!  
 उस नटखट को जाकर अपनी दशा बताऊँ !  
 राधा बाधा नहीं प्रेम की जलधारा है,  
 आज कन्हैया, तू भी राधा से हारा है।”<sup>188</sup>

कुरूक्षेत्र के मैदान में राधा कृष्ण के मिलन प्रसंग में कृष्ण स्वयं से राधा की तात्त्विक तुलना करते हैं, दोनों के चरित्रों की तुलना में कृष्ण के द्वारा कवि ने राधा के चरित्र का यह पक्ष उद्घाटित किया है। कृष्ण कहते हैं -

“राधिके ! तुम साधना से  
 आज अनुराधा बनी हो !  
 मैं भले आधा रहा,  
 पर तुम नहीं बाधा बनी हो !  
 कर्म का अभ्यास मैं,  
 भक्ति की अभ्यस्त हो तुम !  
 मैं अभी हूँ मात्र योगी,  
 पूर्णतः सन्यस्त हो तुम !”<sup>189</sup>

इस प्रकार कहा जा सकता है कि राधिका कृष्ण की आराधिका होकर भी कभी कृष्ण के पथ की बाधिका नहीं बनी है।

#### 6.7.1.1.7 भक्ति की चरमसीमा :

कृष्ण के प्रति राधा की भक्ति असीम है। कृष्ण के द्वारिका चले जाने के बाद राधा अहरह ‘श्याम-श्याम’ के नाम की ही रट लगाती रहती है। उद्धव की ज्ञान की कोरी बातें सुनकर गोपियाँ उद्धव को राधिका के पास ले आती हैं, जहाँ उसकी भक्ति की चरम सीमा परिलक्षित होती है। देखिए —



“चली सब गोपियाँ उन्मत होकर भ्रमर के पीछे,  
 दिखी ज्योतिर्मयी प्रतिमा सिसकती लहर के पीछे ।  
 अरे ! यह कौन, जिसकी पीर यमुना में नहाती है?  
 कन्हाई को लिखे सन्देश पानी में बहाती है ।  
 समूचा कलान्त कदली वन, समूचा भ्रान्त चन्दन वन ।  
 नदी के तीर पर उद्धव चकित सुनते सतत अविराम,  
 षोडश अंग से राधा जपे बस, ‘श्याम’ केवल ‘श्याम’ ।”<sup>190</sup>

राधा का ‘श्याम’ नाम का जाप समग्र सृष्टि में गूँजने लगता है । चारों दिशाओं, तारों, उल्का, बादल-बिजली, चन्दा-सूरज, कलियाँ-गलियाँ सर्वत्र ‘श्याम’ ही ‘श्याम’ है । छिमियों-फलियों, तरूवर-सरवर, गिरिवर, सागर, नभचर, थलचर-जलचर, दर्पण-अर्पण, गायन-नर्तन, तर्पण, नीरज-गोरज, चन्दन-वन्दन, मुक्ति-बन्धन सभी जगह श्याम-ही-श्याम की गूँज छा गयी है । राधा के पूरे शरीर से ‘श्याम-श्याम’ का स्वर निकल रहा है । राधा की कृष्ण भक्ति भक्ति की पराकाष्ठा को भी पार कर जाती है । देखिए —

“गाती कोयल से श्याम-श्याम, बजती पायल से श्याम-श्याम,  
 पीपल से बट से श्याम-श्याम, मुखरित पनघट से श्याम-श्याम ।  
 राधा की कटि से श्याम-श्याम, विधि से धूर्जटि से श्याम-श्याम,  
 जग के कण-कण से निकल रहा ; बस श्याम-श्याम ; बस श्याम-श्याम ।

X    X    X

राधा सोए तो श्याम-श्याम, राधा रोए तो श्याम-श्याम,  
 राधा पाए तो श्याम-श्याम, राधा खोए तो श्याम-श्याम ।  
 राधा नख-शिख से श्याम-श्याम, राधा शिख-नख से श्याम-श्याम,  
 जग के कण-कण से निकल रहा, बस श्याम-श्याम ; बस श्याम-श्याम ।

कवि कहते हैं —

‘हे श्याम-श्याम, हे श्याम-श्याम’ की रटना ऐसी लगी  
 कि पूरी जड़-चेतन, गुण दोषमयी यह सृष्टि  
 नाचने लगी छोड़ सब काम-धाम -  
 बस, ‘श्याम-श्याम’ बस ‘श्याम-श्याम’ ।”<sup>191</sup>

राधा की कृष्ण भक्ति देखकर उद्धव अपना योग-ध्यान एवं ब्रह्मज्ञान भी भूल गए। उनको भी बस 'श्याम-श्याम' बस 'श्याम-श्याम' का ही नाम स्मरण हो गया। उद्धव का सारा ज्ञान-ध्यान राधिका की अखण्ड कीर्तन धारा में बह गया। उसे तन-मन की सुध नहीं रहती है। राधा की परम भक्ति के आगे उद्धव अंत में परास्त होकर राधिका के चरणों में गिरकर, प्रणाम करके क्षमा याचना करने लगते हैं।

कुरूक्षेत्र में जब राधा से कृष्ण का मिलन हुआ, दोनों के बीच जो संवाद हुआ, उसमें राधा की कृष्ण के प्रति प्रेम-भक्ति का जीवन्त चित्र है। कृष्ण से सब ब्रजवासी मिलते हैं, किन्तु राधा एकान्त में गहरी उदासी में डूबकर बैठी है। ऐसे अवसर पर व्यक्ति गौण हो जाता है और भक्ति मुख्य। यहाँ राधिका की कृष्ण भक्ति की चरम सीमा देखने को मिलती है। वह कृष्ण से कहती हैं -

“कृष्ण यदि है नेह सच्चा,  
वहा कहाँ पर बाँधता है?  
नेह तो टूटे हृदय को  
संस्मरण से साँधता है।  
अब तलक मैं जी रही हूँ  
नाम का लेकर सहारा,  
विस्मरण में जा चुका है,  
रूप जो भी था तुम्हारा।  
इस जगत में कृष्ण के अतिरिक्त  
कुछ भी है नहीं अब !  
तुम अलग हो ही कहाँ से,  
रिक्त कुछ भी है नहीं जब  
कृष्ण मेरी चेतना में  
अब नहीं है व्यक्ति जैसा,  
बह रहा वह इन शिराओं में  
पिघलकर भक्ति जैसा।”<sup>192</sup>

इस प्रकार राधा की कृष्ण भक्ति असीम है।

### 6.7.1.1.8 गोपियों की प्यारी :

राधा गोपियों को बहुत प्यारी है। उद्धव जब गोपियों को ज्ञान का उपदेश देने लगते हैं, तब गोपियाँ उन्हें अपनी प्यारी राधा की पीर दिखाने कदलीवन ले जाती है। कान्ह के बिना राधा की जो करुणामय स्थिति है, वह गोपियों से देखी नहीं जाती। वे उद्धव से कहती हैं कि हम तुम्हें उस करुणा नदी की धारा में डूबा देंगे जो हमारी राधिका के अश्रुओं से निकलती है। वे उद्धव को राधा के पास ले जाती हुई कहती हैं -

“तुम्हें उद्धव ! डूबो देंगे अरे, करुणा नदी में हम !  
 ही करुणा, जहाँ से अश्रु की धारा निकलती है,  
 अरे धारा, हमारी राधिका द्वारा निकलती है।  
 नदी की धार से हमने कमलदल को उधर भेजा,  
 नदी के पार से तुमने पढ़ाकर यह भ्रमर भेजा?  
 अरे, इस भ्रमर को अब राधिका के पास ले जाएँ,  
 समर्पण, प्रेमपाती क्या-इसे जाकर दिखा लाएँ !  
 कमल की तैरती पंखुरी नयन के नीर पर होगी,  
 भ्रमर ! तुम ही बताओ, राधिका किस तीर पर होगी?  
 अरे, भोगी भ्रमर को आज हम सब भूल जाएँगी,  
 बड़ा योगी भ्रमर है, आज राधा को दिखाएँगी।  
 लता, पद्मा, सुशीला औ’ विशाखा, भामिनी, ललिता,  
 चलो सब भ्रमर को लेकर, जहाँ पर बह रही सरिता।”<sup>193</sup>

इस प्रकार राधा गोपियों को बहुत ही प्यारी है। कान्हा के वियोग में उसकी आँखों में से अश्रु की धाराएँ बहती है, वह राधा की पीड़ा गोपियाँ सह नहीं सकती है। राधा की पीड़ा उन्हें अपनी पीड़ा लगती है।

समग्र रूप से कहा जाए तो ‘उत्तर भागवत’ की राधिका कृष्ण की अनन्य आराधिका एवं जीवन शक्ति है। वह कृष्ण की परम साधना की साधिका है, उनके पथ की बाधिका नहीं। उसका हृदय कृष्ण भक्ति से भरपूर भरा हुआ है। कृष्ण ही उसके जीवनाधार है।

### 6.7.2 गौण नारी पात्र :

#### 6.7.2.1 यशोदा :

प्रस्तुत काव्य संग्रह के द्वितीय सर्ग में यशोदा का पात्र अनंत वात्सल्य लेकर हमारे समक्ष उपस्थित होता है। वह नन्दराय की पत्नी एवं कृष्ण की माँ है। कृष्ण की जन्मदात्री न होकर भी एक माँ के रूप में उसके हृदय से ममता का निर्झर निरंतर बहता है। कृष्ण के जन्म से उसकी खुशी का ठिकाना नहीं है। गोकुल में कृष्ण जन्मोत्सव बड़ी धाम-धूम से मनाया जाता है। शंख, नगाड़े, ढोल और बाँसूरी बजायी जाती है। सभी गोकुलवासी फूदक-फूदक कर नाचते हुए नंद के आँगन में आनंद प्रकट करते हैं।

#### 6.7.2.1.1 अपार मातृत्व :

यशोदा ममता की मूरत है। कृष्ण के प्रति उसके उर में अनंत वात्सल्य छलकता है। बालकृष्ण को किसी की बुरी नजर न लग जाये इसीलिए वह कृष्ण को किसी के सामने नहीं लाती है। बालकृष्ण का दर्शन करने के लिए भगवान शिव जोगी बनकर आते हैं और यशोदा के पास कृष्ण दर्शन की याचना करते हैं, किन्तु यशोदा के मन में शंका है कि कहीं कंस का कोई दूत वैरागी बनकर तो न आया हो। अतः वह उसे कहती है कि 'तुम अन्न-वस्त्र की भिक्षा लेकर चले जाओ। मेरा लाल नींद में सोया है।' तभी कृष्ण रोने लगते हैं। जोगी के रूप में भगवान शिव बच्चे का मुखड़ा दिखाने की कृपा करने को कहते हैं। यशोदा का मातृवत्सल हृदय शिशु दर्शन की उत्कंठा को रोक न सका।

कृष्ण को पाकर यशोदा कृतकृत्य हो गई है। उसके आनंद की कोई सीमा नहीं है। वह अपना पूरा दिन लल्ला की देखभाल में ही बिताती है। कृष्ण के प्रति उसके दुलार की गतिविधियाँ देखिए —

“मैया ने उबटन कर लाला को नहलाया,  
नए वस्त्र पहनाए, बाल सँवारे, काजल-तिलक लगाया,  
एक डिठौना और चार चुम्बन देकर उसको दुलराया।  
चुटकी दे देकर बहलाया,  
ममता भीगे हाथों से तन को सहलाया,  
आँचल की कर आड़

कंचुकी सरकाकर अपनी छाती का नेह पिलाया,  
 एकालाप किया लल्ला से  
 थपकी देकर उसे सुलाया ।”<sup>194</sup>

माँ की लोरियों में बड़ी ताकत होती है। लोरी के माध्यम से माँ अपनी ममता का मादक स्पर्श देकर बच्चे में वीरता, साहिकता एवं शौर्य आदि गुणों का संचार करती है। इतिहास इस बात का साक्षी है। यशोदा भी अपने बच्चे को लोरी गाकर सुलाती है। देखिए —

“सो जा मेरे लाल सुलावे तेरी मैया !  
 तुझको मीठा दूध पिलावे तेरी मैया !  
 चिड़िया तुझको चीं-चीं सुनाने आई,  
 कोयल कू-कू करके तुझे मनाने आई ।  
 पूँछ उठाकर भाँ-भाँ करती श्यामा गैया,  
 सो जा मेरे लाल, सुलावे तेरी मैया !  
 हाथी-घोड़े, सिंह-बाघ, सुन्दर मृगछौने,  
 रत्नजड़ित लकड़ी-कपड़े के कई खिलौने ।  
 नन्ही गुड़िया नाच रही कर ताता-थैया ।  
 सो जा मेरे लाल सुलावे तेरी मैया !

X X X

सो जा बचुवा, सो जा मेरे राजदुलारे !  
 तुझे बुलाती निंदिया रानी हाथ पसारे ।  
 तेरे लिए दुल्हनिया लाया दाऊ भैया ।

सो जा मेरे लाल, सुलावे तेरी मैया ।”<sup>195</sup>

बालकृष्ण जब सयाने हो जाता है, तब यशोदा से वह अपना नाम पुछने लगता है, तब माँ के मनोवात्सल्य का नमूना देखिए —

“ले बताऊँ नाम तेरे  
 चोर है तू, ठीठ है तू और तू नटखट बहुत है,  
 तू चपल है, तू हठी है और तू मुँहफट बहुत है ।

धूर्त, चंचल और लम्पट, तू निर्लज है, साँवला तू,  
मूर्ख तू, दुष्ट है तू, तू मुखर है, बावला तू।”<sup>196</sup>

कृष्ण को दिए ये नाम तो यशोदा के मुदित मन का दुलार है बस। वास्तव में तो वह कान्ह को अपने कलेजे का टूकड़ा समझती है। चोर, हठी, धूर्त ये सब उपनाम देकर वह कृष्ण की उत्सुकता देखना चाहती है। वह बाद में कृष्ण के नाम इस प्रकार बताती है -

“श्याम है, घनश्याम है तू, कान्ह है मुस्कान है तू !  
तू कन्हैया, तू दुलारा, गोपियों का प्राण है तू।  
पुत्र लल्ला और बेटा, ग्वाल है, गोपाल है तू।  
तू मनोहर, तू मुरारी और मेरा लाल है तू।”<sup>197</sup>

सभी ग्वाल-बाल कृष्ण के श्याम रंग के कारण उसे चिढ़ाने लगते हैं, तब कृष्ण अपनी मैया से अपना परिचय पुछता है और कहता है कि मैया सभी ग्वाल-बाल मुझे चिढ़ाते रहते हैं, कहते हैं तू आधीरात भादौ माह अँधियारे पाख में कारागृह में जन्मा है। यमुना का जल पीने से तू काला हो गया है। अम्मा तू सच बता क्या बाबा ने मुझे मथुरा से मोल लिया है ? तू भी मुझे माखन रोटी नहीं खिलाती कच्चा दूध ही पिलाती है। क्या तू मेरी सच्ची मैया है या फिर केवल आया ? लल्ला की ऐसी बातें सुनकर यशोदा कृष्ण को अपना ही बेटा मानते हुए विश्वास दिलाकर कहती है -

“नहीं किसी से मोल लिया है, नहीं कीसी से पाया,  
मैं हूँ तेरी मैया कान्हा ! तू है मेरा जाया।  
ग्वाल-बाल सब झूठे, उनकी सब बातें है झूठी।  
तू ही रूठा रहता मुझसे, मैं तुझसे कब रूठी ?  
बात-बात पर माँ से लड़ना किसने तुझे सिखाया ?  
नील कमल-सी आभा तन की, झील सरीखा मन है,  
कौन कह रहा तू काला है, तू तो नील गगन है ;  
तू सागर है, जिस पर पड़ती नीलाम्बर की छाया !  
तुझे मोल क्यों लूँगी बेटा ! तू है मेरा अपना,  
लेना ही पड़ जाए तो मैं लूँगी कोई सपना ;  
सपना, जिसमें राजा-मुन्ना दुल्हन ले घर आया।

तू है पूत पराया तो फिर कौन बचा है मेरा ?  
 किससे सीखा करता है तू हरपल मेरा-तेरा ?  
 नहीं समझ में आती बाबा, मुझको तेरी माया !  
 बाहर जाकर चोरी करता, घर का तुझे न भाए  
 माखन रोटी तभी मिलेगी, जब गोदी में आए ;  
 मेरे गले लगेगा तो ही मानूँ पूत सवाया ।”<sup>198</sup>

यहाँ यशोदा का कृष्ण के प्रति गहनतम, अद्वितीय प्रेम द्रष्टिगत होता है। यशोदा जब मथानि फिरती है, तब कृष्ण यशोदा के साथ लुक-छिपकर आँख मिचौनी खेलता है। तभी यशोदा मथना छोड़कर प्रेम से कान्हा को अपनी गोद में खींच लेती है और छाछ पर तिरती हुई लोनी उठाकर लल्ला को खाने के लिए देती है। यहाँ यशोदा का स्नेहातिरेक देखने को मिलता है।

यशोदा अपने बेटे में बचपन से ही जीवन को उन्नत बनानेवाले संस्कारों का सिंचन करती है। जब कृष्ण बड़े होते हैं और दाऊभैया के साथ वन में गोधन चराने जाने के लिए माँ को राजी करते हैं, तब यशोदा का धनीभूत वात्सल्य पिघलकर उमड़ पड़ता है। हर्षातिरेक से उछलकर वह कान्हा को अपने वक्ष से लगा लेती है और कहती है -

‘कितना हुआ सयाना मेरा कुंजबिहारी ?  
 बेटा मेरा बछड़े लेकर कल से ही जाएगा वन में,  
 तेरे बाबा यह सब सुनकर कितने हर्षित होंगे मन में।  
 कान्हा ! तेरी लकुटि-कमरिया अरे, अभी मँगवाऊँ बेटा !”<sup>199</sup>

साथ ही साथ बाँटकर खाने से प्रेम बढ़ता है, यह बात भी वह कृष्ण को बड़े प्यार से समझाती है। सुनहरी सिख देते हुए वह कृष्ण को इसे हमेशा याद रखने की भी सलाह देती है। उन्हींके शब्दों में देखो —

‘एक बात सुन जाना बेटे !  
 नहीं इसे बिसराना बेटे !  
 जो हो अपने पास, उसे तू  
 बाँट-चूँटकर खाना बेटे !  
 पूजा करना कण की, तृण की,

क्षण का साथ निभाना बेटे !

X      X      X

सूरज डूबे पश्चिम में तो

पूरब में आ जाना बेटे !

मिटने का पल आए, तो भी -

मिट्टी मत बिसराना बेटे !

उसकी सेवा करते-करते

मिट्टी में मिल जाना बेटे ।”<sup>200</sup>

वह बड़ी सावधानी से मधुबन जाने की समझ देती है। साथ ही साथ वह दाऊ को भी कान्हा की देखभाल के लिए सूचन करती है। मानो कान्ह कोई दूर परदेश में जाता हो, उसी प्रकार मैया यशोदा उसे लाड-प्यार से, सिख दे-देकर भेजती है। नन्दराय भी माँ बेटे की मुदिता देखकर ही रह जाते हैं।

### 6.7.2.2 देवकी :

प्रस्तुत काव्य ग्रंथ के द्वितीय सर्ग में देवकी का पात्र हमारे समक्ष आता है। वह कंस की बहन है। कंस दुष्ट और दुराचारी था, पर देवकी उसे प्राणों से भी अधिक प्यारी थी। भले ही वह उसकी चचेरी बहन थी, किन्तु वह देवकी से सगी बहन से भी अधिक स्नेह रखता था। कवि ने कंस और देवकी की तुलना करके देवकी के दुर्दम चरित्र को प्रकाशित किया है। कवि के शब्दों में —

“दावानल था कंस, देवकी सुर सरिता थी,

कोलाहल था कंस, देवकी मृदु कविता थी।

कंस हलाहल, किन्तु देवकी सुधा-बिन्दु थी,

कंस ग्रीष्म का ताप, देवकी शरद इन्दु थी।

कंटक वन था कंस, देवकी कुन्द कली थी।

कुन्द कली थी गन्ध और मकरन्द चली थी ।”<sup>201</sup>

### 6.7.2.2.1 देवकी का यौवन :

कवि ने कुन्द कली-सी देवकी के यौवन के रूप-सौंदर्य का भी चित्रण किया है। देवकी चन्द्र के समान तेजस्वी मुखवाली शीलवती युवती थी। यौवन की देहली पर वह पाँव रखती है, तो लगता



है मानो जुही लता आँगन के चौबारे पर आई हो । उसके यौवन सहज रूप-सौन्दर्य को कवि ने इन शब्दों में चित्रित किया है -

“‘चन्द्रमुखी औ’ शीलवती देवकी बाला,  
स्वर्ण रेख पर ज्यों लटकी मोती की माला ।  
धीरे-धीरे यौवन के द्वारे पर आई,  
जुही लता आँगन के चौबारे पर आई ।  
चौबारे पर झूल रही फूलों की डाली,  
गालों को छूती हो ज्यों कानों की बाली ।” 202

जैसे देवकी के प्रति कंस को ज्यादा अनुरक्ति है । अर्थात् देवकी जब वसुदेव के साथ परिणय सूत्र से बँधती हैं, तब स्वयं कंस इस नवयुवक का रथ हाँकता है । कंस का अपनी बहन के प्रति ऐसा स्नेहातिरेक देखकर मथुरा की जनता भी आश्चर्यचकित हो जाती है । लोग यही सोचकर दाँतों तले ऊँगली दबाते थे कि मथुरा का निरंकुश दुष्ट राजकुमार का कठोर हृदय आज माखन सद्रश कोमल कैसे हो गया ? देवकी और वसुदेव कंस के चरणों में झुककर प्रणाम करते हैं, तब हर्ष से पुलकित होकर कंस उसे आठ बेटों की माँ बनने का आशीर्वाद देता है । किन्तु आशीर्वाद देते ही मानो कंस के मन में छिपे हुए अपराध के आकाश पर हृदय की ध्वनि स्वयं के ही कान में आकर कहने लगती है कि - ‘देवकी का आठवाँ बेटा मेरा काल बनेगा ।’ इस अकथ वाक्य से कंस के हृदय में व्याप्त बहन के प्रति का भाई का सारा प्यार मिट जाता है । वह खड़ा निकालकर तत्क्षण देवकी को मारने का प्रयत्न करता है । जब वसुदेव यह विश्वास दिलाते हैं कि मैं देवकी के आठों पुत्र तुम्हें सौंप दूँगा, तब जाकर कंस इन दोनों को छोड़ने को तैयार होता है ।

इस घटना से देवकी के दुःखद जीवन की दासता शुरू होती है । प्रथम तो कंस वसुदेव को अपनी आठवीं संतान उसे सौंप देने का वादा करके देवकी और वसुदेव को छोड़ देता है, किन्तु नारद का गणित गिनकर वह दोनों को निर्दयता से कारा में बँद कर देता है ।

#### 6.7.2.2 दर्द से सभर ममता :

निर्दयी कंस ने देवकी के छः बेटों की हत्या कर डाली । यह देवकी की ममता की कसौटी थी । उसकी ममता में भी दर्द की कराह छिपी हुई थी । विधि का विधान भी कैसा कि जन्म के तुरन्त बाद जब एक माँ शिशु को पुरी तरह अपने आँचल की छाँह में भी नहीं ले पायी है और अपनी

सद्यः जात संतान को बड़े दर्द के साथ कंस के हाथों सोंपना पड़ता है। छः - छः बच्चों को कंस की बलिवेदी पर चढ़ा देख देवकी का हृदय करुण क्रन्दन करने लगता है। जब वह सातवीं बार गर्भवती होती है, तो उसकी आँखों से अहर्निश आँसु की धाराएँ बहती रहती है। उसके मातृत्व की वेदना एवं दर्द उन्हीं के शब्दों में देखिए —

“स्त्री मुझको किस लिए बनाया हाय, विधाता !  
जिन्हें स्वयं का रक्त पिला कर त्राण दे रही,  
हाय, जन्म देते ही उनके प्राण ले रही ।  
जन्म दे रही या कि मृत्यु का शाथ दे रही,  
अपने बेटे दुष्ट कंस के हाथ दे रही ।  
दूध नहीं पी पाया मेरा बेटा कोई,  
और नहीं भीगे आँचल में लेटा कोई ।  
सूख गया है दूध सात तक आते-आते ;  
नहीं बचेगी बूँद आठ तक आते-आते ।  
कंस कहाँ मारेगा मेरे सारे बेटे ?  
हाय, रह गया दूध स्तनों के भीतर-भीतर,  
किसी पूत का नहीं लगा मुख उनके ऊपर ।  
मैं कैसी माँ हूँ जो बेटे जनती जाती,  
बेटे जनकर बिन बेटे की बनती जाती !  
किसी लाल का मुख देखा क्या आँखें भरकर ?  
किसी लाल को प्रेम किया क्या पाँखे भरकर ?  
हाय, सर्पिणी-सी मैं यह क्या करती जाती ?  
दुष्ट कंस के सम्मुख अण्डे धरती जाती ।  
छह बेटे जन दिए फूल-से, झर जाने को,  
अरे, सातवाँ फिर आया है मर जाने को ।”<sup>203</sup>

यहाँ देवकी के हृदय के वात्सल्य के साथ-साथ मातृत्व का दर्द भी द्रष्टिगत होता है। अपने बच्चों को कंस के हाथों सोंपकर देवकी जो करुण क्रन्दन करती है, यह वसुदेव भी देख नहीं पाते हैं। देवकी की ममता का दर्द जानते हुए भी वे कुछ नहीं कर पाते हैं। वे केवल पिंजरे में बद्ध सिंह

की भाँति छटपटाते ही रह जाते हैं।

देवकी के पात्र द्वारा कवि ने नारी मनोविज्ञान समझाया है। एक नारी की व्यथा नारी ही समझ पाती है। निःसंतान रोहिणी की पीड़ा देवकी अच्छी तरह समझती है। इसीलिए ही वह रोहिणी को अपने सातवें गर्भ का दान देती है। प्रसव की पीड़ा को स्त्री बड़ी सहजता से स्वीकार कर लेती है। इस बात को कवि काबराजी ने देवकी के माध्यम से समजाई है। कारावास में किसी को आठवीं संतान के जन्म का पता तक न चले इसीलिए वह प्रसव की पीड़ा को भी एक समाधि की भाँति सहती है। वसुदेव को गोकुल से सुरक्षित लौटते हुए देखकर वह पुलकित हो जाती है। किन्तु उनके टोकरे में कन्या को देखकर देवकी का नारी हृदय दो अलग-अलग संवेदनाओं में डूबता है। देखिए —

“देखकर पति को सुरक्षित, एक पत्नी का हुआ  
आश्वस्त - सा अन्तःकरण,  
पर कुसुम-कोमल एक कन्या को निरखकर पुत्र के बदले  
सुबक कर फट पड़ा उस कोठरी में एक नारी का रूदन।”<sup>204</sup>

क्रूर कंस जब देवकी के आठवें पुत्र को लेने आता है, तब देवकी उसके पास दया की भीख माँगने लगती है। वह कंस से कहती है कि ‘भैया मुझ पर दया करो। इसे मत मारो इसे गौर-से देखो यह कन्या है। सात-सात बेटे मैंने खोए हैं। यह अन्तिम सन्तान ही हमारा आधार है। इसे मत मारो।’ लेकिन कंस उसकी एक नहीं सुनता है। वह तो छीन झपटकर शिशु को ले लेता है। कंस के द्वारा किए जा रहे कन्या वध को देवकी सह नहीं पाती है। वह कहती है —

“दुःखी बहन चरणों में आकर लेटी भैया !  
इसे न मारो यही बचा संसार हमारा ।  
हाय, अवध्या और पराई बेटी भैया !  
यह अन्तिम सन्तान, यही आधार हमारा ।”<sup>205</sup>

इस संसार में सुख-दुःख का घटनाचक्र निरंतर चलता ही रहता है। किसी के जीवन में सुख के बाद दुःख आता है और किसी के संसार की शुरुआत ही दुःखों से होती है। देवकी ने जीवन में कई यातनाएँ सही किन्तु उनका बेटा कृष्ण उसे दुःखों की कारा से मुक्त करता है। कंस का वध करके जब कृष्ण अपनी माता देवकी और पिता वसुदेव को मुक्त कराता है, तब देवकी की छाती गर्व से

फूल जाती है। वह आनन्द से फूली नहीं समाती है। वह अपने बेटे की प्रशंसा करती हुई उसे बधाई देती है। कवि के शब्दों में देखिए —

“माँ बोली, ‘मोहन ! तूने क्या काम किया है !  
 भ्रष्ट तन्त्र को मूल सहित निष्प्राण किया है ।  
 इससे बड़ी प्रतिष्ठा ममता की क्या होगी ?  
 इससे बढ़कर सेवा जनता की क्या होगी ?  
 नहीं धरा तक सीमित तेरा राज्य रहेगा ।  
 अब तक गोकुल-वृंदावन में धेनु चराई,  
 माखन-चीर चुराकर सबकी नींद चुराई ।  
 अब तुमको संस्कारी होकर द्विज बनना है ।  
 सर से ऊपर उठ करके सरसिज बनना है ।”<sup>206</sup>

इस प्रकार समग्र रूप से देखा जाए तो देवकी का जीवन दर्द की दासतान बनकर रह जाता है। अपने जीवन का उत्तमोत्तम काल उसे कारावास में काटना पड़ता है। आठ-आठ संतान जनने के बाद भी उसकी ममता की प्यास अधूरी रह जाती है। वह अपनी संतान को क्षणभर आँचल की छाँह देकर दूध भी नहीं पीला पाई है। यही उसके जीवन की सबसे बड़ी करुणा है। किन्तु कृष्ण जैसा बेटा पाकर वह अपने को कृत-कृत्य भी मानती है।

### 6.7.2.3 द्रौपदी :

डॉ. किशोर काबरा के महाभारत कथा पर आश्रित सभी प्रबंधों में द्रौपदी का चित्रण मिलता है। किन्तु प्रत्येक में उसका अस्तित्व अलग ही है। ‘उत्तर भागवत’ में द्रौपदी षष्ठ स्कन्ध में हमारे समक्ष उपस्थित होती है। उसकी चारित्रिक विशेषताएँ कुछ इस प्रकार हैं।

#### 6.7.2.3.1 सहिष्णुता :

शिशुपाल का वध करते समय कृष्ण की तर्जनी रक्त से रंजित हो जाती है, तब द्रौपदी आषाढी आँधी की भाँति आकर अपने चीर को चीरकर कृष्ण की अँगुली पर बाँधती है। यहाँ हमें उसकी सहिष्णुता का परिचय मिलता है।

#### 6.7.2.3.2 आक्रोश :

पाण्डव जब अपनी दुर्दशा के कारण अपने भाग्य को कोसने लगते हैं, तभी द्रौपदी भी अपने

मन का आक्रोश व्यक्त करती है। अपने जीवन का यों पाँचों में बँटवारा उसके लिए असह्य है। पाण्डवों के समक्ष वह जो आक्रोश व्यक्त करती है, वह उसी के शब्दों में देखिए -

“और

तुम्हारी माँ ने मुझको

भीख समझकर ही स्वीकारा।

पाँच पत्तलों में

चावल की तरह किया मेरा बँटवारा।

X X X

बँटवारा ही नहीं

आपने अरे, दाँव पर मुझे लगाया।

दिया किसी ने उत्तर कोई,

मैंने जो भी प्रश्न उठाया ?

सभा बीच दुःशासन ने

मेरे वस्त्रों को हाथ लगाया,

किन्तु पाँच पतियों के लोहू में

कोई भी ज्वार न आया।”<sup>207</sup>

द्रौपदी को जीवनभर यही अफसोस रहता है कि भरी सभा में दुःशासन जब उसके वस्त्र खिंचता है, तब पाँचों में से कोई उसकी सहायता नहीं कर सके। वह अपने विगत जीवन की झाँकीयों को याद करती हुई अपनी दुर्बलताओं पर भी सिंहावलोकन करती है। स्त्री चाहे तो पृथ्वी को स्वर्ग भी बना सकती है और बने हुए घर को बरबाद भी कर सकती है। एकबार बाण से छुटा हुआ तीर और मुँह से निकला हुआ वाक्य कभी वापस नहीं लाया जा सकता है। द्रौपदी भी अपनी विषयुक्त वाणी से पछता रही है। उसका प्रायश्चित्त देखिए —

“मैं क्या कुछ कम रही,

सुखों में बोती रही सदा ही काँटे,

स्वयं लगाए कई व्रणों पर

गरल भरे शब्दों के छोटें।

अरे, कर्ण को 'सूत पुत्र' कह -  
 विष का बीज उगाया मैंने ।  
 'अंधों के अंधे' कहकर हा,  
 ज्वालामुखी जगाया मैंने ।”<sup>208</sup>

द्रौपदी को अपने इन दुर्वचनों का परिणाम भी देखना पड़ता है । उसे जीवन में कई प्रकार के अपमान सहने पड़ते हैं ।

### 6.7.2.3.3 गृहिणी के रूप में :

द्रौपदी की गृहस्थी बड़ी ही संकट में बितती है । वन-वन की खाक छानते हुए उसे कठियारों की तरह घूमना पड़ता है । अपनी गृहस्थी अच्छी तरह से चले उतनी पर्याप्त सामग्री भी उसके पास नहीं है । जब दुर्वासा मुनि शिष्यों को लेकर आनेवाले थे, तब द्रौपदी उसे खाना खिलाने के लिए बड़ी चिंतित होती है । उसे यही चिंता थी कि वह गृहस्थी धर्म कैसे निभा पायेगी ? वह युधिष्ठिर के सामने अपनी परेशानी प्रकट करती हुई कहती है -

“आज सब झूठ हो गई  
 मेरी गृहिणी की परिभाषा,  
 नदी स्नान कर शिष्यों को ले -  
 आनेवाले हैं दुर्वासा ।  
 उन्हें खिलाऊँगी क्या? बोलो धर्मराज !  
 संकट है भारी ।  
 अब तक लाज लुटी थी मेरी,  
 आई आज धर्म की बारी ।”<sup>209</sup>

इस प्रकार द्रौपदी अपना गृहस्थी धर्म निभाने के लिए चिंतित है, उसी क्षण दुर्वासा की जगह कृष्ण आकर बहन पाँचाली के घर खाना खाने की इच्छा व्यक्त करते हैं । कृष्णा की परेशानी तो और बढ़ जाती है । वह यही सोच सोचकर चिंतित होने लगती है कि मैं किस-किस को खाना खिलाऊँ ? एक अक्षयपात्र भी धोकर रख दिया है । कुटिया में एक कण भी नहीं है । अब कैसे मैं भोजन बनाऊँ ? कृष्णा की यह उलझन कृष्ण समझ जाते हैं । और कृष्ण की कृपा से कृष्णा की लाज बच जाती है । न ही दुर्वासा आते हैं, और न ही खाना बनाने की चिंता ही । अक्षयपात्र के कण

से कृष्ण को तृप्ति मिल जाती है।

समग्र रूप से कहा जा सकता है कि 'उत्तर भागवत' में द्रौपदी का जीवन संघर्ष से भरा है। वह आक्रोश व्यक्त करने के सिवा कुछ नहीं कर पाती है।'

#### 6.7.2.4 रुक्मिणी :

रुक्मिणी राजा भीष्मक की राजकुमारी है, जो स्वयंवर के बाद कृष्ण की पटरानी बनती है। प्रस्तुत काव्य संग्रह के पंचम स्कन्ध में वह हमारे समक्ष प्रस्तुत होती है। उसकी चारित्रिक विशेषताएँ इस प्रकार हैं।

##### 6.7.2.4.1 रूप, शील और गुणवती राजकुमारी :

रुक्मिणी रूप, शील, गुण और प्रतिभायुक्त राजकुमारी है। सुन्दरता में वह अद्वितीय है। उसके गुण और प्रतिभा का कोई जवाब नहीं। इसीलिए ही उसके स्वयंवर में अपने उपयुक्त कोई नहीं मिलेगा, उस बात की उसे चिंता होती है। इसी कारण ही वह अपने उपयुक्त रूप, गुण और प्रतिभासंपन्न गोवर्धनधारी कृष्ण को पति मानकर गुप्तचर के साथ संदेशा भिजवाती है कि वे आकर उसे हरकर ले जाए। कवि ने विप्र के मुख से रुक्मिणी के रूप-सौन्दर्य की प्रशंसा करायी है। देखिए —

“भगवन् ! कुण्डिनपुर के राजा भीष्मक की है राजकुमारी  
नाम रुक्मिणी रूप-शील-गुण प्रतिभयुक्त विदर्भकुमारी।  
नाथ ! स्वयंवर में उसके उपयुक्त न कोई जा पाएगा।”<sup>210</sup>

##### 6.7.2.4.2 चिन्तन चारूता :

रुक्मिणी में चिन्तन चारूता द्रष्टिगत होती है। स्वयंवर से पूर्व वह चिन्तन करती है। वह सोचती है कि उसका भाई रुक्मि बड़ा ही दुर्दान्त, निर्लज्ज एवं दुःखकारी है। उसके संकेत मात्र से शिशुपाल उसके साथ विवाह कर लेगा। वह सोचती है कि शिशुपाल जैसे दानव के साथ ब्याह करने से अपना सारा जीवन ही समाप्त हो जाएगा। उसने कृष्ण को कभी देखा नहीं था, किन्तु उनके बारे में काफी सुना था। उसे लगता है कि वंश, शील, गुण, सुख और वैभव में कृष्ण के तुल्य अन्य कोई नहीं है। अर्थात् वह अपने अंतर्मन से ही गिरिधर को अपना पति मान लेती है। यहाँ उसकी चिन्तन चारूता द्रष्टिगत होती है।

### 6.7.2.4.3 समय सूचकता :

रूक्मिणी की समय सूचकता का कहना ही क्या? अपने स्वयंवर से पूर्व ही कृष्ण को अपना सर्वस्व न्यौच्छावर कर चुकी थी। अतः वह अन्य किसी के साथ ब्याह नहीं करना चाहती है। वह चाहती है कि कृष्ण उसका हरण करके उसे अपनी अर्द्धांगिनी बनाये। इसीलिए वह तुरंत ही सारी योजना बनाकर गुप्तवेश में विप्र को द्वारिका भेज देती है। साथ में वह कृष्ण के नाम एक पत्र भी भेजती है। जिसमें उसकी समय सूचकता का हमें दर्शन होता है। वह संदेश लिखती है कि हे मनमोहन ! मैंने अपने अंतर्मन से आपका वरण किया है। मेरे रोम-रोम में अणु-अणु में बस आप ही विद्यमान है। यदि आप मुझे न मिले तो कुण्डिनपुर में मेरी चिता ही आपको मिलेगी। समय कम है। किन्तु वह पुरी योजना पत्रमें लिख भेजती है कि मैं अपनी सहेलियों के साथ पूजा करने देवालय में जाऊँगी। हे ब्रजनन्दन आप वहीं से मेरा हरण करना। तुरत बुद्धि से, तत्क्षण यह निर्णय लेना ही उसकी समय सूचकता का परिचायक है। देखिए —

“ओ मनमोहन ! मैंने अपने अन्तर्मन से किया वरण है,  
रोम-रोम से, अणु-अणु से बस, होता रहता सदा स्मरण है।  
देवी पूजा के मिस मैं देवालय जाऊँगी ब्रजनन्दन !  
आप वहीं से मेरा हरण करें मनमोहन ! लेकर स्यन्दन ।”<sup>211</sup>

### 6.7.3 अन्य नारी पात्र :

#### 6.7.3.1 विदुरानी :

प्रस्तुत पात्र इस काव्यग्रंथ के षष्ठ स्कन्द में हमारे समक्ष उपस्थित होता है। विदुरानी यानि विदुरजी की पत्नी। वह शबरी की भाँति प्रभु दर्शन से पुलकित होकर अपनी सुधि खो बैठी है। यहाँ हम उसके चरित्र का विश्लेषण करेंगे।

#### 6.7.3.1.1 भक्ति, भावुकता एवं तन्मयता :

विदुरानी में भक्ति, भावुकता एवं तन्मयता का त्रिवेणी संगम देखने को मिलता है। कृष्ण का उनके द्वार पर आना वह अपने जीवन का सबसे बड़ा सौभाग्य समझती है। कृष्ण को अपने घर पाकर वह अनन्त, अथाह और परम आनन्द के उदधि में डूब जाती है। वह प्रभु को देखते ही वह आनन्द के अतिरेक में सुध-बुध खो बैठी है ! आतिथ्य के सारे शिष्टाचार भूलकर वह कृष्ण का हाथ पकड़कर उसे द्वार पर ही बिठा देती है। कृष्णागमन से विदुरानी का आनन्द कवि के शब्दों में



देखिए —

“अरे, मेरे आँगन के भाग्य जगे  
तो आए नन्दकुमार !  
वहीं आड़े-तिरछे कुछ वस्त्र लपेटे  
निकल स्नानगृह से हुलसित बोली विदुरानी-  
‘अहो, द्वारकाधीश ! श्याम सुन्दर !! आए मेरी कुटिया में?  
धन्य हो गई अरे, आज की प्रातः वेला सुखद सुहानी !’  
हर्ष, तुष्टि, रोमांच मिल गए पल में ऐसे,  
मधु, मिसरी औ’ पय धुल जाँ जल में जैसे !  
कान्हा का कर थाम  
बिठाया द्वारे पर ही,  
अर्घ्य-पाद्य रह गए सभी चौबारे पर ही ।”<sup>212</sup>

वह बड़ी भावुक्ता से कृष्ण से कहने लगती है कि ‘बेटे ! तुम पराए नहीं हो । इतनी दूर से आए हो, तो तुम्हें बड़ी भूख लगी होगी । मैं तुम्हें अपने हाथों से कदली फल खिलाऊँगी । तुम केवल अपना मुँह खोलो और कुछ मत बोलो मैं तुम्हें खिलाती हूँ ।’ कृष्ण को खिलाने में वह इतनी तन्मय हो जाती है, कि उसके तन-मन की सुधि खो बैठी है । वह भक्ति में इस तरह अविभक्त हो जाती है कि केले के फलों को छीलकर वह गुदा भूमि पर गिराने लगती है और अपने हाथ से कृष्ण को छिलके खिलाने लगती है । कवि के शब्दों में विदुरानी की भक्ति की पराकाष्ठा का द्रश्य देखिए —

“तन्मय हो गई कुछ इस तरह से  
भक्ति में अविभक्त विदुरानी,  
कि  
तन की और मन की  
सुध विसरती जा रही है ।  
एक मसृण चाँदनी  
मन के सरोवर पर पसरती जा रही है ।  
छील कर कदली फलों को  
भूमि पर गूदा गिराती जा रही है,

और

अपने हाथ से श्री कृष्ण को

छिलके खिलाती जा रही है।”<sup>213</sup>

कृष्ण भी विदुरानी के प्रेम से पुलकित होकर छिलके के स्वाद के गुण गाने लगते हैं। थोड़ी दूर बैठे विदुरजी मुग्ध होकर विस्फारित नयन से यह मधुर लीला का द्रश्य देखते ही रह जाते हैं। पर मुग्धता तूटते ही वे तत्क्षण दौड़कर विदुरानी को सही स्थिति का भान कराते हैं। सुधि आते ही विदुरानी रोते हुए अपना सिर पटकने लगती है। उसे बड़ा दुःख होता है कि उसने मूर्च्छना में प्रभु को केले के बजाय छिलके खिलाए। उसे अफसोस होता है कि वह अपना गृहिणी धर्म नहीं निभा पायी और अपना कर्तव्य भूल गई। उनके हृदय का पश्चाताप देखिए —

“हाय, मैंने मूर्च्छना में

आज यह सब क्या किया है?

एक फूहड़ मूर्खता का अतिथि को परिचय दिया है।

सुघड़ गृहिणी के सहज कर्तव्य का

विस्मरण है यह !

अशुचि, अविचारी, अशोभन, अटपटा आचरण है यह !

हाय, मैंने द्वारका के नाथ को छिलके खिलाए।

जागरण के पहरए किस कक्ष में जाकर सुलाए?”<sup>214</sup>

इस प्रकार विदुरानी की भक्ति इतनी गहरी है कि प्रभु दर्शन के क्षण बुद्धि का विस्मरण हो जाता है और हृदय की तरल भावुकता ही प्रबल बन जाती है। कृष्ण को भी विदुरानी के हृदय की निर्मलता एवं तन्मयता बहुत ही भा जाती है।

### 6.7.3.2 कुब्जा :

कुब्जा का पात्र प्रस्तुत प्रबंध के चतुर्थ स्कन्ध में हमारे समक्ष आता है। वह प्रतिदिन कंस को केसर-चन्दन का लेप लगाती थी। कुबड़े तन के कारण लोग उसे कुब्जा कहते थे। जब वह चलती थी, तब नख से शिख तक उसके शरीर में कंपन होता था। उसका तन तीन स्थान से झुका हुआ था। उसके चरित्र की अन्य विशेषता इस प्रकार है।

#### 6.7.3.2.1 बर्हिकुरूपता और अन्तशुचिता :

कुब्जा भले ही बाहर से कुरूप लगती हो, किन्तु भीतर से वह शुचिता की शिविका लगती

थी। हाथ में कनक कटोरी लिए हुए जा रही कुब्जा को जब कृष्ण ने रोककर केसर-चन्दन माँगते हुए उसे 'सुन्दरी' शब्द से पुकारा तब कुब्जा सोचती है कि मुझ कुरूपा को कौन 'सुन्दरी' कहकर सम्मान दे रहा है। क्या यही कृष्ण है ? उसे मधुसुदन का यह मीठा शब्द मन में भा गया। वह रोमांचित होकर कनक कटोरी में से दो अँगुली से चन्दन की कोर निकालकर अपने कंपित होथों से मनमोहन के ललाट पर लगा देती है। वह छेलछबीले की मनोहर मूर्त देखती ही रह जाती है। अब तक जो कंस को केसर-चन्दन लगाती थी वह उसे व्यर्थ-सा जान पड़ता है। कृष्ण भी कुब्जा की अन्तर्शुचिता देखकर उसकी कायाकल्प कर लेते हैं।

### 6.7.3.3 पूतना :

पूतना इस प्रबन्ध के द्वितीय स्कन्ध में हमारे समक्ष उपस्थित होती है। वह बकासुर की बहन है। दानवी पात्र होते हुए भी कवि ने पूतना के द्वारा मानवी सहज ममता का चित्रण किया है। चाहे कोई भी माता हो, किन्तु बच्चे के प्रति उसमें ममता का होना स्वाभाविक ही है। इस बात को कवि ने पूतना के माध्यम से रखा है। साथ ही साथ कवि ने माँ के दूध का महात्म्य भी प्रतिपादित किया है।

#### 6.7.3.3.1 ममता :

कंस पूतना को बाल कृष्ण को विषपान कराने के लिए भेजता है। किन्तु ममता का अजस्र प्रवाह माता के दिल में निरंतर बहता रहता है। बच्चे को पयपान कराते समय शिशु की निकटता ही बच्चे के प्रति ममता पैदा करती है। माता और पिता में इसी बात का फर्क है कि माता के वक्ष से दूध की अमिय धारा का अजस्र प्रवाह बहता है, जिससे रक्त बनता है। कवि ने यह बात इस प्रकार रखी है।

“माँ का जैसा दूध,  
पिता का भी वैसा क्या रक्त बना है ?  
नहीं रक्त से दूध सम्भवित,  
सदा दूध से रक्त बना है !  
माता तो आखिर माता है,  
भले शंखिनी, भले शाकिनी !  
माता तो आखिर माता है।”<sup>215</sup>

जब वह कृष्ण को पयपान कराने के लिए अपनी गोद में लेती है, तब वह भूल जाती है कि उसे कंस ने यहाँ किस लिए भेजा है ? वह तो अपने पुत्र को दूध पिलाती हो, उसी प्रकार कृष्ण पर अपनी सारी ममता ऊँडेल देती है। कवि कहते हैं —

“आज पूतना के प्राणों में जन्म-जन्म की प्यास जगी है,  
पय के साथ स्वयं तक को दे देने की अभिलाष जगी है।  
भूल गई  
किसलिए कंस ने भेजा उसको  
यहाँ गाँव में !  
शिशु भी जैसे भूल गया सब  
ममता की निर्द्वन्द्व छाँव में।”<sup>216</sup>

विष ये युक्त बाया स्तन छोड़कर अपना निर्विष दायाँ स्तन कोमल कन्हैया के मुख में दे देती है। बाल कृष्ण भी बड़ी तन्मयता से स्नेह की मीठी धारा पीने लगते हैं। पूतना परम आनन्द से शिशु को अपना स्नेह पिलाने लगती है। यहाँ पूतना में छिपी ममता द्रष्टिगत होती है।

### 6.7.3.3.2 पूतना का अन्तर्द्वन्द्व :

मनुष्य कभी-कभी कर्तव्य और प्रेम के द्वन्द्व में ऐसा उलझ जाता है कि उसकी स्थिति to do or not to do सी हो जाती है। पूतना भी ऐसे अन्तर्द्वन्द्व में उलझ जाती है। एक ओर उसके मातृत्व की परीक्षा है, तो दूसरी ओर राजभक्ति। पूतना सोचती है कि मुझे तो दोनों ओर काँटें ही लगने हैं। अब क्या करना उचित है ? थोड़ी देर तक उसके मन में यह द्वन्द्व चलता है किन्तु पूतना शीघ्र ही उस द्वन्द्व से उलझकर बाहर आती है। मातृत्व के सामने राजभक्ति की पराजय होती है।

### 6.7.3.3.3 मुमुक्षा :

भारतीय संस्कृति में जीवन का अन्तिम लक्ष्य है मुमुक्षा। प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में मोक्ष प्राप्ति की महत्वाकांक्षा होती है। पूतना भी इससे परे नहीं है। वह बालकृष्ण को पयपान कराते वक्त वह वर्तमान से हटकर अतीत में चली जाती है। उसन बलि को छला था अतः विषयुक्त स्तन करने का शाप लगा था। खुद प्रभु द्वापर में उसके स्तन का पय पीने के लिए आये थे अतः उसकी सद्गति होनेवाली थी। प्रभु के हाथों आज मुमुक्षा की कामना भी पूरी होनेवाली थी। अतः वह कृष्ण को अपना बेटा मानकर स्तनपान कराने लगती है। विषयुक्त स्तन से बालकृष्ण के स्पर्श मात्र से पूतना

को मोक्ष मिलता है। छल-छद्म से दूध पिलाने के बहाने भी पूतना मोक्ष प्राप्त कर लेती है और एक माता के रूप में सम्मान पा जाती है।

#### 6.7.3.4 रोहिणी :

रोहिणी का पात्र प्रस्तुत काव्य संग्रह के द्वितीय स्कन्ध में हमारे समक्ष उपस्थित होता है। वह देवकी की बहन है देवकी का सातवां भ्रुण कुक्षि सन्धि से आकर्षित कर पुत्र रहित रोहिणी के गर्भ में प्रस्थापित किया गया था। तभी से रोहिणी का भाग्य बदल जाता है। पुत्र के रूप में बलराम को पाकर वह बड़ी धन्यता का अनुभव करती है।

#### 6.7.3.5 रेवती :

रेवती बलराम की पत्नी है, जो इस प्रबन्ध के पंचम स्कन्ध में हमारे समक्ष उपस्थित होती है। वैसे इस पात्र का प्रस्तुत प्रबन्ध में कोई विशेष महत्व नहीं है। एक स्थान पर केवल नामोल्लेख मिलता है। वैसे देवर और भाभी के संबंध बहुत मधुर और प्यारे होते हैं। रेवती कृष्ण की भाभी होने के नाते बड़ी मधुरता से उसके सामने पेश आती है। बलराम जब कृष्ण को शादी करके गृहस्थी बसा लेने की सलाह देते हैं, तभी वह अपने पति बलराम की बात का समर्थन करती हुई देवरजी से विवाह करके अपनी देवरानी लाने के लिए कहती है। उन्हीं के शब्दों में देखें —

“हाँ देवरजी !

अब विलम्ब करने से कोई लाभ नहीं है,

शीघ्र आपका हो विवाह - हम भी चाहेंगी,

पुरी द्वारका के स्वर्णिम इन प्रासादों में

सुन्दर और सुशील देवरानी लाँगी।”<sup>217</sup>

इस प्रकार प्रबन्ध के कथा प्रवाह को आगे बढ़ाने के लिए यह पात्र महत्वपूर्ण माना जायेगा।

#### 6.7.3.6 गुरुमाँ :

गुरु का स्थान जीवन में अमूल्य है। चाहकर भी मनुष्य गुरु के ऋण से कभी मुक्त नहीं हो पाता है। सान्दीपनि कृष्ण के गुरु है। यहाँ उसकी पत्नी का नाम नहीं बताया गया है, किन्तु कृष्ण अपनी गुरुआईन को गुरुमाँ कहकर पुकारते थे। गुरुमाँ के स्नेह और वात्सल्य की छाँह कृष्ण और सुदामा पर निरन्तर रहती है। वे दोनों भी गुरुमाँ की चिन्ता को अपनी ही चिन्ता मानते हैं। बरसात के दिनों में शुष्क समिधाओं के लिए चिंतित गुरुमाँ की चिन्ता ये दोनों तुरन्त ही मिट देते हैं। गुरुमाँ

के प्रेम का निर्झर हमेशा बच्चों पर बहता ही रहता है। समिधाएँ लेने गए कृष्ण और सुदामा को आते देर हो जाती है, तब गुरुमाँ बहुत ही चिंतित हो जाती है। शिक्षा की समाप्ति होने पर कृष्ण जब वापस लौटने की बात करते हैं, तब गुरुमाँ के नयन की सीपियों से टप-टप आँसूओं की बरसात बरसने लगती है। कृष्ण को बिदा करते समय उसे अपने पुत्र पुनर्दत्त की स्मृति हो आती है, जो उसका एक लौता पुत्र था, जिसे सागर की लहर डूबोकर ले गई थी। उसे विश्वास है कि मेरा बेटा मरा नहीं है, अब भी जीवित होगा। वह हर पल अपने बेटे की प्रतीक्षा करती रहती है। उसे यही चिन्ता सताती है कि वह कहाँ होगा ? और उसे कौन लेकर आए ?

गुरुमाँ की चिन्ता एवं पुत्र वियोग को देखकर कृष्ण को अपनी गुरुदक्षिणा चुकाने का मौका मिलता है। वह गुरुमाँ के चरणों की सौगन्ध खाकर कहता है कि मैं और दाऊ भैया मिलकर गुरुदक्षिणा के रूप में पुनर्दत्त भैया की खोज करेंगे। जब तक वह ना मिले उसके पूर्व विराम नहीं करेंगे। कृष्ण को बिदा देते समय गुरुमाँ की सारी ममता आशीष के रूप में उमड़ पड़ती है। उनके हृदय का विह्वल स्नेह कवि के शब्दों में देखिए —

“मैया की मुख-मुद्रा,  
कितने ही भावों को कहती जाती,  
लगा वक्ष से पुत्र,  
अश्रु की धाराओं में बहती जाती -  
बेटा कृष्ण !  
किया जितना उपकार, उसे क्या शब्द कहेंगे ?  
इतिहासों के पृष्ठ युगों तक कहकर भी निःशब्द रहेंगे ।  
इच्छा है तेरे चरणों में रख दें बेटा शीश हमारा,  
सब माँओं का स्नेह मिलेगा, तुझको यह आशीष हमारा ।”<sup>218</sup>

### 6.7.3.7 पटरानियाँ :

‘उत्तर भागवत’ में कवि ने कृष्ण की आठों पटरानियों को भी सांकेतिक रूप में प्रकट किया है। इन पात्रों को प्रकट करने के पिछे कवि का कोई विशेष प्रयोजन नहीं है, किन्तु कृष्ण जीवन के साथ जुड़े हुए अंशों को प्रकट करके कथा प्रवाह को प्रवाहित किया है। आठों पटरानियों में रूक्मिणी-हरण प्रसंग को प्रकट करके रूक्मिणी के चरित्र को प्रधानता दी है। अन्य पटरानियों को कवि ने कृष्ण की स्मृति के माध्यम से यों प्रकट किया है।

“जाम्बवान की गुहावासिनी दुहिता जाम्बवती कान्हा को मिली  
 स्यमन्तक मणि की चोरी के कलंक में ;  
 प्रायश्चित्त-परिणाम रूप में  
 सत्राजित ने सुता सत्यभामा भी ब्याही वासुदेव को ;  
 यमुना तट पर प्राप्त हुई कालियमर्दन को तप में लीन  
 कलित कालिन्दी ;  
 उज्जयिनी के नृपति विन्द की पुत्री परम ललाम मित्रवन्दा ने  
 वरण किया मोहन को  
 सांदीपनि आश्रम के मृदु परिचय की स्मृति में ;  
 कौशल के भूपति की बेटी नाग्नमिती के लिए  
 पूर्ण कौशल से नाथे सात वृषभ द्वारकाधीश ने ;  
 मत्स्यवेध के बाद सहज ही  
 भद्रदेश की राजकुमारी ललित लक्ष्मणा ने  
 स्वीकार किया माधव को ;  
 कैकय राजकुमारी भद्रा नई वधू बनकर आई अपनी इच्छा से  
 कृष्णचन्द्र के कंचनपुर में ।  
 भव्य राज प्रासादों में  
 सम्मान सहित शोभित थीं पटरानियाँ आठ,  
 ज्यों  
 अष्ट प्रकृति करबद्ध खड़ी हों  
 पूर्णपुरुष की सेवा हेतु दिशा-विदिशा में ।”<sup>219</sup>

### 6.7.3.8 कीर्ति :

कीर्ति राधा की माता है । जिसे कवि ने काक-मयूर कथा प्रसंग के संदर्भ में प्रस्तुत काव्य ग्रंथ के तृतीय स्कन्ध में प्रकट किया है । काक-मयूर संवाद द्रष्टव्य है । काक कहता है -

“नन्द महर-वृषभानु, मिली कैसी जोड़ी,  
 विधि ने भी पूरी चर्चा हम पर छोड़ी ।  
 कीर्ति-यशोदा दोनों माँ के क्या कहने ?  
 पास खड़ी हों, दोनों लगे सगी बहनें ।”<sup>220</sup>

### 6.7.3.9 गोपियाँ :

गोपियों के द्वारा कवि ने प्रेम-भक्ति की पराकाष्ठा को प्रकट किया है। प्रस्तुत प्रबन्ध के तृतीय एवं चतुर्थ स्कन्ध में वे हमारे समक्ष प्रस्तुत होती हैं।

गोकुल की गोपियाँ कृष्ण के साथ अंतरंग रूप से जुड़ी हुई हैं। कृष्ण के प्रति गोपियों को अपार प्रेम है। वे हमेशा यही चाहती थीं कि उसे नित्य कृष्ण का सान्निध्य मिले। कृष्ण भी गोपियों को दूध, माखन या छाछ के लिए बहुत सताते थे। कृष्ण के साथ महारास खेलने में गोपियाँ धन्यता का अनुभव करती हैं। यमुना किनारे महारास के समय वे इतनी तन्मय हो जाती हैं कि सभी को अपने साथ कान्हा होने का अनुभव होता है। यहाँ गोपियों की प्रेम-लक्षणा भक्ति द्रष्टिगत होती है। कवि के शब्दों में महारास के समय गोपियों की स्थिति देखिए —

“मनहारी कन्हैया के संग, रास हुआ यमुना किनारे।

साथ बजते हैं झाँझ औ’ मृदंग,

रास हुआ यमुना किनारे।

एक-एक गोपी के साथ एक कान्हा,

एक-सा है रूप और एक-सा है बाना।

एक जैसे हैं सबके अन्तरंग,

रास हुआ यमुना किनारे।

क्षण-क्षण प्रेमाभिव्यक्ति पद-पद पर नर्तन,

पूरा ही ब्रज मण्डल करता संकीर्तन।

दूर छिटक गया वृत्त से अनंग।

रास हुआ यमुना किनारे।

मोहन की मुरली ने बीज मंत्र बोया,

तन-मन ने तत्क्षण ही अपनापन खोया।

सबका थिरक रहा आज अंग-अंग,

रास हुआ यमुना किनारे।

हाथों में जाग रही विद्युत की लहरें,

पैरों में भाग रही थिरकन की नहरें।



जैसे कानन में दौड़ते कुरंग,  
रास हुआ यमुना किनारे ।”<sup>221</sup>

कृष्ण जब गोकुल छोड़कर मथुरा चले जाते हैं, तब गोपियों की आँखों से अश्रु की धाराएँ बहती हैं। अक्रूर जब कृष्ण के दूत बनकर ब्रज आते हैं, तब योगी उद्धव को भी गोपियाँ कृष्ण के प्रेम में डूबी देती हैं। ज्ञान की कोरी बातें करनेवाले उद्धव से गोपियाँ कृष्ण प्रेम का महत्व चंद क्षणों में ही समझा देती हैं। वह कहती है ‘हे उद्धव हम तुम्हें उधो कहें तो बुरा मत मानना। आज तक हमारा सब कुछ सीधा था, किन्तु ऊधो तुमने सब ऊँधा कर दिया। अब तो कृष्ण भी नहीं दिखते हैं, और ब्रह्म भी नहीं। आज तक तुम ब्रह्ममय जीवन दिखाते थे, लेकिन आज हम तुम्हें कृष्णमय वृंदावन दिखायेंगे।’ ऐसा कहती हुई गोपियाँ उद्धव को वृंदावन, यमुना आदि स्थान दिखाकर कृष्ण से जुड़ी हुई स्मृतियों को उकेरती हैं। यहाँ गोपियों का कृष्ण के प्रति अपार प्रेम द्रष्टव्य है। वह उद्धव से कहती हैं —

“ब्रह्म का तुम ज्ञान देते हो !  
अरे, यह ब्रह्म जीवित है हमारे बीच में श्रीकृष्ण बनकर ।  
ज्ञान की छाया तले चाहे अभी तक  
आँख मूँदे, साँस रोके ब्रह्मयोगी ही पले हैं,  
किन्तु उनका क्या करें हम ?  
कृष्ण के सान्निध्य का अनुभव सँजोए हम वियोगी ही भले हैं !  
कृष्ण अब भी गाय दुहता है हमारी,  
कृष्ण अब भी नित्य दधि मथता हमारा,  
छछ भी पीता, मटकियाँ फोड़ता भी है,  
पकड़ने जायँ तो हमको चिढ़ाकर दौड़ता भी है ।  
अरे, वह प्रेम के सब बन्धनों को जोड़ता भी है,  
कभी ऊपर उठाता है, कभी नीचे गिराता है,  
इसी के साथ भव के बन्धनों को तोड़ता भी है ।  
नियति का ज्ञान भी हमको यथासंभव कराता है,  
अरे, जिस ब्रह्म का दर्शन कभी हो मृत्यु के पश्चात् !  
उसका कृष्ण जीते जी हमें अनुभव कराता है ।”<sup>222</sup>

इस प्रकार कृष्ण के प्रति गोपियों को इतना प्रेम है कि उनके विरह में भी वे उसे अपने साथ ही मानती हैं। हर हाल में वे कृष्ण का सान्निध्य एवं प्रेम चाहती हैं। शुष्क ज्ञान का सन्देश देनेवाले भोगी भ्रमर को वे राधिका के पास ले जाती हैं, जिसकी आँखों में से निरंतर धारा बहती रहती है। कृष्ण भी गोपियों की यादें कहीं नहीं भूले हैं। इनकी स्मृति आते ही कृष्ण की आँखें भी गिली हो जाती हैं।

### 6.7.3.10 कुंती :

‘उत्तर भागवत’ में कुंती के पात्र का केवल नामोल्लेख मिलता है, वह पाण्डवों की माता है। उनका इस ग्रंथ में कोई विशेष महत्व नहीं है। प्रस्तुत प्रबन्ध के सप्तम सर्ग में कुरूक्षेत्र के युद्ध की समाप्ति के बाद कुन्ती पाण्डवों को अपने अनुज को जलांजलि देने के लिए कहती हैं। साथ ही साथ वह यह रहस्य भी खोलती है कि कर्ण सूत पुत्र नहीं है। नहीं वह शुद्र है। यह मेरा बेटा है। आज तक उसने अपने उर में यह रहस्य दबाकर रखा था और इसी कारण नारी जाति को यह शाप मिलता है।

“शाप मेरा नारी को आज,  
छिपाया यह रहस्य जिस भाँति,  
छिपा पाएगी कोई बात -  
नहीं कलियुग में नारी जाति।?”<sup>223</sup>

### 6.7.3.11 गांधारी :

गांधारी धृतराष्ट्र की पत्नी एवं कौरवों की माँ है। इनका भी प्रस्तुत प्रबन्ध में कोई विशेष महत्व नहीं है। कवि ने यथा योग्य सुअवसर पर इसका जिक्र किया है। प्रस्तुत प्रबन्ध के सप्तम सर्ग में गांधारी द्वारा कृष्ण को यादवों के विनाश का शाप मिलने का प्रसंग कवि ने बताया है।

### 6.7.3.12 उत्तरा :

उत्तरा के पात्र का भी कवि ने केवल नामोल्लेख ही किया है।

## 6.8 उपसंहार :

इस प्रकार काबराजी के प्रबन्ध काव्यों का परिशीलन करने के बाद हम कह सकते हैं कि उनके काव्यों के नारी पात्र परंपरागत पात्र होते हुए भी नितांत नूतन एवं आधुनिक लगते हैं। ‘परिताप के पाँच क्षण’ की अम्बा के माध्यम से कवि ने नारी के संघर्ष की गाथा को प्रकट करते हुए

नारी के विद्रोहात्मक रूप को प्रकट किया है। नारी फूल-सी कोमल तो है ही लेकीन वक्त आने पर अपना इच्छित प्राप्त करने के लिए वज्र से भी कठोर बन सकती है। अम्बा का विद्रोहात्मक रूप इस बात की प्रतीती कराता है। द्रौपदी का पात्र प्रत्येक काव्य में अपना अलग ही अस्तित्व लेकर अवतरित हुआ है। 'धनुष-भंग' की सीता एवं 'उत्तर रामायण' की सीता भी भिन्न-भिन्न भावों को अभिव्यक्त करती है। 'धनुष-भंग' की सीता जहाँ कृषि संस्कृति की प्रतीक है, वहाँ 'उत्तर रामायण' की सीता को कवि ने भारतीय संस्कृति की आदर्श नारी के रूप में चित्रित किया है। 'उत्तर भागवत' की राधा के माध्यम से कवि ने नारी के प्रेम समर्पण को प्रकट किया है। इस प्रकार समग्रतया हम कह सकते हैं कि काबराजी के प्रबन्ध काव्यों के प्रत्येक नारी पात्र अपना स्वतंत्र अस्तित्व लेकर अवतरित हुए हैं।

## 6.9 संदर्भ - सूची

- 1 'परिताप के पाँच क्षण', ले. डॉ. किशोर काबरा, तीसरा क्षणा, पृष्ठ - 51
- 2 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 57
- 3 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 53
- 4 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 53/54
- 5 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 58
- 6 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 65
- 7 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 66
- 8 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 67
- 9 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 69
- 10 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 61/62
- 11 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 47
- 12 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 70
- 13 वहीं वहीं वहीं, वहीं
- 14 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 70/71
- 15 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 73/74
- 16 समीक्षा : अक्टूबर - दिसम्बर - 2006 मृत्युंजय उपाध्याय का लेख : 'नारी के प्रतिशोध की प्रतीक कथा' - पृष्ठ - 48
- 17 वहीं वहीं चौथा क्षण, पृष्ठ - 80/81
- 18 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 89
- 19 वहीं वहीं प्रथम क्षण पृष्ठ - 22
- 20 वहीं वहीं चौथा क्षण पृष्ठ - 93
- 21 वहीं वहीं वहीं वहीं
- 22 वहीं वहीं दूसरा क्षण, पृष्ठ - 29
- 23 वहीं वहीं वहीं वहीं

24	वहीं	वहीं	वहीं,	पृष्ठ - 30
25	वहीं	वहीं	तीसरा क्षण,	पृष्ठ - 51
26	वहीं	वहीं	वहीं,	पृष्ठ - 64
27	वहीं	वहीं	पाँचवा क्षण,	पृष्ठ - 102/103
28	डॉ. किशोर काबरा - साक्षात्कार से			
29	'धनुष-भंग', ले. डॉ. किशोर काबरा, पहला विस्फोट, पृष्ठ - 1			
30	वहीं	वहीं	वहीं,	पृष्ठ - 2
31	वहीं	वहीं	वहीं,	पृष्ठ - 7
32	वहीं	वहीं	वहीं,	पृष्ठ - 6-7
33	वहीं	वहीं	वहीं,	पृष्ठ - 9/10
34	वहीं	वहीं	पाँचवा विस्फोट,	पृष्ठ - 80
35	वहीं	वहीं	वहीं,	पृष्ठ - 81
36	वहीं	वहीं	पहला विस्फोट,	पृष्ठ - 3/4
37	वहीं	वहीं	वहीं,	पृष्ठ - 2
38	'नरो वा कुंजरो वा', ले. डॉ. किशोर काबरा, चतुर्थ सर्ग, पृष्ठ - 99			
39	'नरो वा कुंजरो वा', ले. डॉ. किशोर काबरा, चतुर्थ सर्ग, पृष्ठ - 100			
40	वहीं	वहीं	वहीं,	पृष्ठ - 101
41	वहीं	वहीं	वहीं,	पृष्ठ - 96
42	वहीं	वहीं	वहीं	वहीं
43	वहीं	वहीं	वहीं,	पृष्ठ - 104
44	वहीं	वहीं	वहीं,	पृष्ठ - 102
45	वहीं	वहीं	वहीं,	पृष्ठ - 97
46	वहीं	वहीं	वहीं,	पृष्ठ - 91
47	वहीं	वहीं	वहीं,	पृष्ठ - 91/92
48	वहीं	वहीं	वहीं,	पृष्ठ - 101
49	वहीं	वहीं	वहीं,	पृष्ठ - 104

- 
- 50 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 96/97
- 51 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 102
- 52 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 98
- 53 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 92
- 54 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 112
- 55 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 91
- 56 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 105/106
- 57 वहीं वहीं द्वितीय सर्ग, पृष्ठ - 30
- 58 “माँगने पर आपका प्रतिबंध है ही,  
फिर पडोसन के यहाँ जाती कहाँ से?”  
वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 31
- 59 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 33
- 60 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 59
- 61 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 39
- 62 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 44
- 63 ‘उत्तर महाभारत’, ले. डॉ. किशोर काबरा, द्वितीय सर्ग, पृष्ठ - 47
- 64 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 50-51
- 65 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 107
- 66 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 118
- 67 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 103
- 68 वहीं वहीं वहीं वहीं
- 69 डॉ. किशोर काबरा-व्यक्ति एवं साहित्य : एक अनुशीलन, ले. डॉ. प्रमोद गुप्त, पृष्ठ - 197
- 70 ‘उत्तर महाभारत’, ले. डॉ. किशोर काबरा, द्वितीय सर्ग, पृष्ठ - 49
- 71 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 54
- 72 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 118
- 73 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 54

74	'उत्तर महाभारत', ले. डॉ. किशोर काबरा, द्वितीय सर्ग, पृष्ठ - 95		
75	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 94
76	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 94/95
77	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 95
78	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 92
79	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 78/79
80	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 62
81	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 67
82	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 71/72
83	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 72/73
84	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 75
85	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 76
86	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 73/74
87	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 74
88	वहीं	वहीं	वहीं वहीं
89	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 112
90	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 112/113
91	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 113
92	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 114
93	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 115
94	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 114/115
95	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 118
96	वहीं	वहीं	भूमिका
97	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 90
98	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 91
99	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 91/92

100	वहीं	वहीं	पंचम सर्ग, पृष्ठ - 170
101	वहीं	वहीं	वहीं वहीं
102	वहीं	वहीं	वहीं वहीं
103	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 176
104	वहीं	वहीं	वहीं वहीं
105	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 186
106	वहीं	वहीं	वहीं वहीं
107	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 187
108	वहीं	वहीं	प्रथम सर्ग, पृष्ठ - 22
109	वहीं	वहीं	पंचम सर्ग, पृष्ठ - 196
110	वहीं	वहीं	षष्ठ सर्ग, पृष्ठ - 203
111	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 213
112	वहीं	वहीं	सप्तम सर्ग, पृष्ठ - 231
113	'उत्तर महाभारत', ले. डॉ. किशोर काबरा, सप्तम सर्ग, पृष्ठ - 231		
114	वहीं	वहीं	द्वितीय सर्ग, पृष्ठ - 64/65
115	वहीं	वहीं	तृतीय सर्ग, पृष्ठ - 125
116	वहीं	वहीं	सप्तम सर्ग, पृष्ठ - 241
117	वहीं	वहीं	द्वितीय सर्ग, पृष्ठ - 115
118	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 69
119	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 74
120	वहीं	वहीं	पंचम सर्ग, पृष्ठ - 184
121	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 189
122	वहीं	वहीं	षष्ठ सर्ग, पृष्ठ - 213
123	वहीं	वहीं	वहीं वहीं
124	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 214
125	'उत्तर रामायण', ले. डॉ. किशोर काबरा, भूमिका		



126	वहीं	वहीं	द्वितीय सर्ग, पृष्ठ - 77
127	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 77/78
128	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 79
129	वहीं	वहीं	प्रथम सर्ग, पृष्ठ - 27 , तृतीय सर्ग, पृष्ठ - 164
130	वहीं	वहीं	प्रथम सर्ग, पृष्ठ - 30/31
131	वहीं	वहीं	द्वितीय सर्ग, पृष्ठ - 89
132	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 97
133	वहीं	वहीं	तृतीय सर्ग, पृष्ठ - 126
134	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 140
135	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 162
136	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 180
137	वहीं	वहीं	वहीं वहीं
138	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 181
139	वहीं	वहीं	द्वितीय सर्ग, पृष्ठ - 82
140	वहीं	वहीं	तृतीय सर्ग, पृष्ठ - 128
141	वहीं	वहीं	चतुर्थ सर्ग, पृष्ठ - 189
142	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 207
143	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 206
144	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 210
145	वहीं	वहीं	वहीं, वहीं
146	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 211
147	वहीं	वहीं	द्वितीय सर्ग, पृष्ठ - 102
148	वहीं	वहीं	तृतीय सर्ग, पृष्ठ - 176
149	वहीं	वहीं	पंचम सर्ग, पृष्ठ - 234
150	वहीं	वहीं	द्वितीय सर्ग, पृष्ठ - 120
151	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 121

152	'उत्तर रामायण', ले. डॉ. किशोर काबरा, द्वितीय सर्ग, पृष्ठ - 121		
153	वहीं	वहीं	प्रथम सर्ग, पृष्ठ - 32
154	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 55/56
155	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 28
156	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 29
157	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 31
158	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 33
159	वहीं	वहीं	वहीं वहीं
160	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 34/35
161	वहीं	वहीं	द्वितीय सर्ग, पृष्ठ - 68
162	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 71
163	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 72
164	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 95
165	वहीं	वहीं	तृतीय सर्ग, पृष्ठ - 148
166	वहीं	वहीं	वहीं वहीं
167	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 160
168	वहीं	वहीं	द्वितीय सर्ग, पृष्ठ - 91/92
169	वहीं	वहीं	चतुर्थ सर्ग, पृष्ठ - 184
170	वहीं	वहीं	द्वितीय सर्ग, पृष्ठ - 89/90
171	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 88
172	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 86/87
173	वहीं	वहीं	तृतीय सर्ग, पृष्ठ - 130
174	वहीं	वहीं	तृतीय सर्ग, पृष्ठ - 132
175	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 130/131
176	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 144/145
177	वहीं	वहीं	वहीं, पृष्ठ - 145

- 178 'उत्तर भागवत' ले. डॉ. किशोर काबरा, भूमिका, पृष्ठ - 13/14
- 179 वहीं वहीं तृतीय स्कन्ध, पृष्ठ - 102
- 180 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 114/115
- 181 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 115
- 182 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 116
- 183 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 137
- 184 वहीं वहीं वहीं वहीं
- 185 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 116
- 186 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 142
- 187 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 143
- 188 वहीं वहीं चतुर्थ स्कन्ध, पृष्ठ - 189
- 189 वहीं वहीं सप्तम स्कन्ध, पृष्ठ - 278
- 190 वहीं वहीं चतुर्थ स्कन्ध, पृष्ठ - 185
- 191 'उत्तर भागवत' ले. डॉ. किशोर काबरा, चतुर्थ सर्ग, पृष्ठ - 187/188
- 192 वहीं वहीं सप्तम सर्ग, पृष्ठ - 277
- 193 वहीं वहीं चतुर्थ स्कन्ध, पृष्ठ - 183/184
- 194 'उत्तर भागवत' ले. डॉ. किशोर काबरा, द्वितीय स्कन्ध, पृष्ठ - 75
- 195 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 76
- 196 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 81
- 197 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 82
- 198 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 88/89
- 199 वहीं वहीं तृतीय स्कन्ध, पृष्ठ - 107
- 200 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 108
- 201 वहीं वहीं द्वितीय स्कन्ध, पृष्ठ - 42
- 202 वहीं वहीं वहीं वहीं
- 203 वहीं वहीं वहीं, पृष्ठ - 47/48

204	वहीं	वहीं	वहीं,	पृष्ठ - 62
205	वहीं	वहीं	वहीं,	पृष्ठ - 63/64
206	वहीं	वहीं	चतुर्थ स्कन्ध,	पृष्ठ - 157
207	वहीं	वहीं	षष्ठ स्कन्ध,	पृष्ठ - 229
208	वहीं	वहीं	वहीं,	पृष्ठ - 230
209	वहीं	वहीं	वहीं,	पृष्ठ - 231
210	वहीं	वहीं	पंचम स्कन्ध,	पृष्ठ - 201
211	वहीं	वहीं	वहीं,	पृष्ठ - 202
212	वहीं	वहीं	षष्ठ सर्ग,	पृष्ठ - 234
213	वहीं	वहीं	वहीं,	पृष्ठ - 235
214	वहीं	वहीं	वहीं,	पृष्ठ - 236
215	वहीं	वहीं	द्वितीय स्कन्ध,	पृष्ठ - 71/72
216	वहीं	वहीं	वहीं,	पृष्ठ - 73
217	वहीं	वहीं	पंचम स्कन्ध,	पृष्ठ - 200
218	वहीं	वहीं	चतुर्थ स्कन्ध,	पृष्ठ - 172
219	वहीं	वहीं	पंचम स्कन्ध,	पृष्ठ - 204/205
220	वहीं	वहीं	तृतीय स्कन्ध,	पृष्ठ - 103
221	वहीं	वहीं	वहीं,	पृष्ठ - 135/136
222	वहीं	वहीं	चतुर्थ स्कन्ध,	पृष्ठ - 182/183
223	वहीं	वहीं	सप्तम सर्ग,	पृष्ठ - 270

## सप्तम अध्याय

नारी पात्रों की समस्याएँ और  
डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध  
काव्यों में समाधान

## सप्तम अध्याय : नारी पात्रों की समस्याएँ और डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्यों में समाधान :

### 7.1 प्रस्तावना

### 7.2 नारी पात्रों की समस्याएँ

#### 7.2.1 पारिवारिक समस्याएँ

#### 7.2.2 प्रेम व यौन संबंधी समस्याएँ

#### 7.2.3 समाज में स्त्री के अस्तित्व की समस्या

#### 7.2.4 पुरुष समाज में अधिकारों की समस्या

#### 7.2.5 नारी अपमान की समस्या

#### 7.2.6 औरत पर अत्याचारों की समस्या

#### 7.2.7 माँ के दूध की समस्या

#### 7.2.8 गृहस्थी की समस्या

#### 7.2.9 स्त्री की उपेक्षा

#### 7.2.10 सतीत्व की रक्षा की समस्या

#### 7.2.11 अपहरण की समस्या

#### 7.2.12 परित्यक्ता नारी की समस्या

### 7.3 समाधान

#### 7.3.1 नारी और शिक्षा

#### 7.3.2 नारी स्वातंत्र्य

#### 7.3.3 नारी और आर्थिक स्वावलंबन

#### 7.3.4 नारी और राजनीति

#### 7.3.5 स्त्री का संयमित जीवन

#### 7.3.6 नारी के प्रति आस्था

#### 7.3.7 नारी सम्मान

### 7.4 उपसंहार

### 7.5 संदर्भ-सूची

## नारी पात्रों की समस्याएँ और डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्यों में समाधान :

### 7.1 प्रस्तावना :

नारी जीवन और उसकी समस्याएँ सदा ही साहित्य की विषय वस्तु के रूप में ग्रहण की गई हैं। हिन्दी काव्य जगत इस बात का साक्षी है। हिन्दी के अधिकांश कवियों ने नारी को केन्द्र में रखकर रचनाएँ की हैं और बदलते परिप्रेक्ष्य में आधुनिक द्रष्टिकोण से नारी को देखने-परखने की कोशिश की है। सन् 1975 में यूनो द्वारा महिला वर्ष घोषित किया गया तब पहली बार विश्व का ध्यान नारियों की समस्याओं की ओर आकृष्ट हुआ। महिला वर्ष मनाया गया। काफी विचार - विमर्श हुआ, चर्चा और व्याख्यानों का आयोजन हुआ, कुछ उपाय भी सुजाये गये। इससे समाज में थोड़ी हलचल मची, थोड़ी जागृति भी आई, किन्तु नारियों की स्थिति ज्यों की त्यों बनी रही। फिर भी सामान्य रूप से बीसवीं शताब्दि नारी जाति के प्रगति का विकासकाल समझा जाता है। आज इक्कीसवीं सदी में नारी स्वातंत्र्य पर अधिक बल दिया जाता है। इक्कीसवीं सदी की नारी ने बड़े - बड़े पद भी प्राप्त कर लिए हैं, किन्तु उनकी समस्याएँ आज भी करीब-करीब ज्यों की त्यों बनी हुई हैं। जैसे-जैसे समाज प्रगति के पथ पर आगे बढ़ता है, वैसे-वैसे स्त्रियों की समस्याएँ कम होने के बजाय बढ़ रही हैं। इन समस्याओं की शुरूआत वैसे तो बहुत पहले हो चुकी थी, लेकिन वे महसूस होने लगी अंग्रेजों के आगमन के बाद। उसका कारण यह था कि अंग्रेजी सभ्यता से भारतीय सभ्यता की तुलना होने लगी और कई प्रश्न समाज सुधारकों के मन में पैदा हुए। इन प्रश्नों की चर्चा कवियों, विचारकों, चिंतकों एवं आलोचकों ने अपने साहित्य में की है। समाज में बदलती परिस्थितियों के साथ-साथ हमारे सामने अनेक ज्वलन्त समस्याएँ उभरकर आईं। बीसवीं शताब्दि के आरंभ की नारी और स्वातन्त्र्योत्तर नारी में महान अंतर दिखाई देता है। इसीलिए अतीतकाल की नारी के जीवन की जो समस्याएँ थी उनसे आज की नारी की समस्याएँ भिन्न हैं। आज वैज्ञानिक युग में मनुष्य जीवन बड़ा कठिन है और वैसे भी नारी जीवन की समस्याओं का स्वरूप भी जटिल है। बीते हुए युग की नारी तथा आज की नारी में जमीन आसमान का अंतर है। आज यांत्रिक प्रगति की दौड़ में व्यक्ति अपनी मर्यादाओं, मूल्यों एवं संस्कारों को तोड़ता जा रहा है। आधुनिक काल में तीव्रगति से होनेवाले सामाजिक परिवर्तनों के फलस्वरूप अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं।

वैसे भी अगर हम समाज और देश का विकास चाहते हैं तो नारी को नजर अंदाज नहीं किया

जा सकता। नारी समाज की सूत्रधार है। अतः उनकी समस्याओं से संवेदनशील कवि कैसे अच्छे रहेंगे? इन जटिल समस्याओं को उभारने में तथा नारी को महत्वपूर्ण स्थान प्रतिपादित करने में हिन्दी कवियों को विशेष योगदान रहा है। युं भी वर्तमान मौजूदा नारी की ऐसी समस्याएँ हैं, जो हर कवियों को नारी जीवन और तत् संबंधी प्रश्नों पर सोचने के लिए विवश कर रही है। अपने काव्यों में 'नारी' को केन्द्रिय भूमिका देकर इस दिशा में वे अपने उत्तर दायित्व का निर्वाह कर रहे हैं।

डॉ. किशोर काबरा वर्तमान युग के प्रतिनिधि साहित्यकार एवं जागरूक कवि हैं। उन्होंने अपने प्रबंध काव्यों में सम-सामयिक महत्वपूर्ण समस्याओं, प्रश्नों आदि का कुशलतापूर्वक चित्रण किया है। इन्होंने नारी और उससे जुड़ी हुई समस्याओं को पौराणिक पात्रों के माध्यम से शब्दबद्ध कर, अपने उत्तरदायित्व का बखूबी निर्वाह किया है। साथ ही साथ मानव मन में विद्यमान विद्रोह, इर्ष्या, वासना, बैर आदि भावों को विभिन्न पात्रों के माध्यम से प्रकट करके उसका परिणाम एवं उसका सम्यक् समाधान भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

## 7.2 नारी पात्रों की समस्याएँ :

डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्यों में विशेष रूप से उभरनेवाली नारी समस्याएँ निम्न हैं —

### 7.2.1 पारिवारिक समस्याएँ :

परिवार समाज की महत्वपूर्ण इकाई है। परिवार के बिना जीवन की कल्पना भयावह है। परिवार हमारे सामाजिक जीवन का आधार स्तम्भ है। परिवार के अभाव में समाज जीवन नष्ट हो जाता है। परिवार में ही मनुष्य का सर्वांगीण विकास होता है। प्रत्येक समाज में चाहे वह आदिम हो या आधुनिक, पूर्व का हो या पश्चिम का, परिवार पाया जाता है। व्यक्ति और समाज - दोनों दृष्टि से परिवार ही मुख्यतः उसका सामाजीकरण करता है, उसे मानव बनाता है और समाज को समर्पित कर देता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक साधारणतः व्यक्ति परिवार का सदस्य बना रहता है। परिवार बच्चे की पहली पाठशाला है। बच्चा स्कूल बाद में जाता है, पहले तो परिवार से ही उसे संस्कारों का पाठ मिलता है। यानि परिवार ही समाज की नींव है और परिवार की आधारशिला है पति-पत्नी। पति-पत्नी के पारस्परिक विश्वास और समझदारी से ही परिवार सुखी रह सकता है। प्रो. यशवंत गोस्वामी ने परिवार को यों परिभाषित किया है - “परिवार एक ऐसा हराभरा और फल-फूलों से महकता हुआ उद्यान है, जिसमें पति रूपी माली पत्नी रूपी क्यारी में प्रेम रूपी खाद डालता है, जिसमें बालक रूपी अंकुर फूटते हैं और उसमें संस्कार रूपी फल आते हैं। माता-पिता प्रेम,



स्नेह, संवेदना रूपी गंगा, जमुना, सरस्वती रूपी पानी का सिंचन कर, उस उद्यान को हराभरा और महकता हुआ बनाते हैं।<sup>1</sup>” परिवार में पति-पत्नी, माता-पिता, पुत्र-पुत्री, भाई-बहन सब एकदूसरे से सम्बन्ध होकर परस्पर सहयोग से काम करते हैं। स्व. हरिवंशराय बच्चन के मतानुसार - “मनुष्य व्यक्ति जीवन की अरक्षा से सामूहिक जीवन की रक्षा की ओर गया और सामूहिक जीवन को व्यवस्थित करने की प्रक्रिया में परिवार की नींव पड़ गयी होगी।<sup>2</sup>”

हमारे देश में प्राचीन काल से ही मनुष्य के परिवार के साथ रहने की परम्परा प्रचलित है। हाँलाकि संयुक्त परिवार की परम्परा आज विघटित हो रही है। पाश्चात्य प्रभाव, औद्योगिकरण, मशीनीकरण, आर्थिक विषमता, व्यस्तता आदि के कारण आज मानवीय सम्बन्ध यांत्रिक - से बन गये हैं। जीवन मूल्यों में तेजी से परिवर्तन दिखाई देता है। विषमताओं और संघर्षों से जूझते मनुष्य के लिए उसका अपना जीवन बोझ बन गया है। खोखले रिश्तों के सम्बन्धों के कारण आज पारिवारिक समस्याएँ बढ़ गई हैं।

संयुक्त परिवार में अधिक सदस्य होने के कारण व्यक्ति अपनी आकांक्षानुसार जीवनयापन नहीं कर पाते। माँ-बाप की आज्ञा शिरोधार्य होती है। चाहे उसके लिए पुत्र को बहुत बड़ी कुर्बानी भी क्यों न देनी पड़े? इसके लिए वह तैयार रहता है। डॉ. किशोर काबरा ने ‘उत्तर महाभारत’ में इस समस्या का चित्रण किया है। द्रौपदी को स्वयंवर में से जीतकर अर्जुन अपने भाइयों सहित घर आता है और अपनी माँ से कहता है — “द्वार खोल माँ, द्वार! देख, हम क्या लाए उपहार?”<sup>3</sup> तभी घर के कामों में उलझी हुई कुन्ती बिना देखे ही कहती हैं —

“पाँचो भाई  
मिलकर भोगो  
बिना किए तकरार।”<sup>4</sup>

माँ कुन्ती के द्वारा कहा हुआ वाक्य मिथ्या न हो, इसी कारण द्रौपदी का बँटवारा पाँचों में हो जाता है। यहाँ द्रौपदी की इच्छा-आकांक्षाओं का कोई मूल्य नहीं है। ऐसे परिवार में संतान अपने माँ-बाप की इच्छाओं एवं आकांक्षाओं का बड़ा सम्मान करते थे। खुद की इच्छाओं को कभी मार भी देनी पड़ती है। अपरमाँ अपनी खुद की संतान के सुखमय जीवन के लिए पति की संतान के सारे सुखों का होम कर देती थी। ‘परिताप के पाँच क्षण’ में माँ मत्स्यगंधा एवं पिता शान्तनु को सुखी करने के लिए भीष्म का पूरा जीवन ही नष्ट हो जाता है। मत्स्यगंधा की खुशी के लिए ही भीष्म

को प्रतिज्ञाओं के दायरे में बँधना पड़ता है। यहाँ अपनी अभिलाषाओं का कोई मूल्य नहीं।

भारतीय समाज आज परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। स्त्रियों की शिक्षा ने उन्हें नये-नये क्षेत्रों में प्रवेश के अवसर प्रदान किए हैं। नारी पहले ही अपेक्षा काफी सुदृढ़ स्थिति में आ गई है, फिर भी परिवार व विवाह आज भी स्त्री की सुरक्षा के लिए आवश्यक है। 'परिताप के पाँच क्षण' में कवि ने प्रस्तुत समस्या को प्रकट किया है। शाल्व जब अम्बा को ठूकरा देता है, तब अम्बा अपने जीवनाधार के लिए विचित्रवीर्य के पास जाती है और कहती है —

“एक नारी हूँ।  
मुझे जीवन बिताने के लिए  
अदने पुरुष का ही सही  
आधार लेकिन चाहिए।”<sup>5</sup>

काबराजी भारतीय संस्कृति के उन्नायक हैं वे भारतीय संस्कृति के उच्चगुणों की रक्षा करना चाहते हैं। लेकिन उसका मतलब यह कतई नहीं है कि स्त्रियाँ बंधन में ही रहे। वे भी नारी स्वातंत्र्य के हिमायती हैं। उनका मानना है कि लड़कियों को घर पसंदगी में स्वतंत्रता देनी चाहिए। उसके विवाह उससे करना चाहिए, जिसे वह चाहती है। एक सुखी गृहिणी ही परिवार को स्वस्थ रख सकती है।

### 7.2.2 प्रेम व यौन संबंधी समस्याएँ :

प्रेम एक ऐसा तत्त्व है, जो दो व्यक्तियों के मन को जोड़ने का सामर्थ्य रखता है। प्रेम मनुष्य मात्र का स्वाभाविक गुण है। इसके बिना जीवन सुना बन जाता है। स्त्री को अपने जीवन में कोई आमोद-प्रमोद के साधन न मिले तो कोई ज्यादा दुःख नहीं, केवल सच्चा प्यार मिल जाय तो वह अपना सारा जीवन उस पर न्यौच्छावर कर देती है। प्रेम के आगे वह भौतिक सुखों को भी तुच्छ मानती है। नारी सुन्दर है, कोमल है, संवेदनशील है। अतः वह प्रेम करने की चीज है। नारी में अपूर्व आकर्षण है। उसके रूप और कोमल स्वभाव पर आकर्षित होकर पुरुष उसे प्यार करता है। बदले में नारी प्रेम का अक्षय भण्डार लुटाती है। पुरुष नारी के प्रेम और साहचर्य का परिणाम है यह सृष्टि। प्रेम प्रेमी और प्रेमिका के बीच भी होता है और पति एवं पत्नी के बीच भी। ज्यादातर प्रबंध काव्यों में पति-पत्नी के पारस्परिक प्रेम का ही चित्रण मिलता है। युगीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में प्रेम विषयक द्रष्टिकोण की मान्यताओं में भी परिवर्तन परिलक्षित होता है।

पत्नी, प्रेमिका, बहन, माता आदि सभी रूपों में नारी प्रेम की देवी रही है। छायावादी युग में प्रेम एक दिव्य, उदात्त और अशरीरी अर्थात् आध्यात्मिकता के भावों को लेकर व्यंजित हुआ है। प्रगतिवादी साहित्य में स्थूल, मांसल, सौन्दर्य और वासनाजनित प्रेम के स्वरूप का चित्रण मिलता है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में नारी चेतना बुद्धिवादी बन गयी है। समसामयिक परिवेश में उच्च शिक्षा के कारण नारी उच्चपदों पर आसिन है। पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव के कारण आज वह क्लबों एवं डान्स पार्टियों में जाने लगी है। अतः आज अतिस्वच्छंदता के कारण प्रेम व यौन संबंधी समस्याएँ बढ़ गई हैं। नई सोच ने नारी-जीवन से जुड़े हर पहलू को प्रभावित किया है, चाहे मामला स्त्री पुरुष समानाधिकार का हो, आर्थिक स्वतंत्रता का हो या फिर यौन व प्रेम सम्बन्धी हो।

आधुनिक परिवेश एवं जीवनमूल्यों के परिवर्तन के कारण आज प्रेम की परिभाषा ही बदल गई है। तेज रफतार से जीनेवाली इस दुनिया में व्यक्ति प्यार की रोमानियत से दूर जा रहा है। 'प्रेम' शब्द के भीतर की करुणा, उसके भीतर समाहित अनुरागमय व बन्धुत्व भाव आज लुप्त हो गया है। क्योंकि आज इसका स्थान सस्ता साहित्य एवं गंदी फिल्मों ने ले लिया है। प्रेम को आज साहजिक प्रक्रिया के रूप में माना जाने लगा है। पश्चिमी प्रभाव एवं फ्रायडीय मनोविज्ञान तथा यौन मनोविज्ञान के आधार पर प्रेम केवल शारीरिक संतुष्टि का साधन मात्र बन गया है। डॉ. वेद प्रकाशजी ने इसका समर्थन करते हुए लिखा है —

“प्रेम का अर्थ अब आत्मिक मिलन या जन्म-जन्मांतर का साथ नहीं है, वह अब दैहिक भोग या क्षणिक आवेश का पर्याय रह गया है।”<sup>6</sup>

अर्थात् आज प्रेम जन्मों का बंधन नहीं, बल्कि आवश्यकतानुसार जोड़ा या तोड़ा जा सकता है। एक के साथ प्यार करके दूसरे और तीसरे के साथ भी यह सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। एक से ज्यादा व्यक्तियों के साथ भी आज प्रेम सम्बन्ध देखने को मिलते हैं। पुरुषों की तरह स्त्री भी अपने प्रेमी बदलती हुई नज़र आती है। यहाँ तक कि स्त्री और पुरुष दोनों एक से ज्यादा व्यक्तियों के साथ शारीरिक संबंध रखने में भी नहीं हिचकिचाते। आज नारी अपनी शारीरिक भूख की तुष्टि करने के हेतु एक, दूसरे, तीसरे या कई व्यक्तियों के पास अपने झुठे प्रेम का प्रदर्शन करती हुई द्रष्टिगत होती है। फलतः आज प्रेम की उच्चता एवं गरीमा नष्ट हो गई है। सामाजिक मूल्यों के परिवर्तन के साथ-साथ सामाजिक संबंधों में भी परिवर्तन हो जाता है। विवाहित पुरुष भी कई स्त्रियों के साथ यौन सम्बन्धों से जुड़ा रहता है। प्रेम व यौन सम्बन्धी स्वतंत्रता एवं स्वच्छंदता के कारण आज अनेक समस्याएँ एवं विकृतियाँ उत्पन्न हुई हैं। यौन सम्बन्ध के साथ जुड़नेवाली सतीत्व या पवित्रता की

भावना नष्ट हो चुकी है।

डॉ. किशोर काबरा जागरूक कवि है। उन्होंने अपने काव्यों में समाज में पल रही इन समस्याओं का विश्लेषण कर, अप्रत्यक्ष किन्तु अति गम्भीर समस्या की ओर पाठकों का ध्यान स्वतः ही आकर्षित किया है। नारी जीवन को उन्नत बनाने के लिए उन्होंने प्रेम का महत्व प्रतिपादित किया है। उन्होंने अपने काव्यों में प्रेम के विविध रूपों का चित्रण किया है। 'परिताप के पाँच क्षण' में उन्होंने अम्बा एवं शाल्व के माध्यम से प्रणय के विभिन्न रूपों को चित्रित किया है।

“प्रणय है श्याम, प्रणय है श्वेत,  
प्रणय है बीज, प्रणय है खेत,  
प्रणय की प्रथम भूमि विश्वास,  
प्रणय का अन्तिम क्षण उद्वैत।”<sup>7</sup>

अम्बा प्रथम मुलाकात में ही शाल्व के प्रेम पाश में बँध जाती है और उसके चले जाने के बाद उसके वियोग में झुरती है, उसका इंतजार भी करती है। किन्तु उसका प्रणय परिणय में नहीं बदल पाया। जब उसे शाल्व नहीं स्वीकारता है तो वह विचित्रवीर्य और भीष्म को क्रमशः उसे स्वीकारने के लिए निवेदन करती है, किन्तु अम्बा अपना इच्छित नहीं पा सकी। प्रणय की त्रिकोणात्मक दुत्कार से वह कहीं की नहीं रहती है। प्रेम में असफल हुई स्त्री आत्महत्या ही अपनी मंजिल मानती थी, लेकिन आज नारी प्रेम विषयक असफलता को नये द्रष्टिकोण से देखती है। अब वह जीवन में प्रेम के आधार पर विवाह करने के लिए सोचने लगी है, क्योंकि बिना प्रेम के सफल से सफल गृहस्थी भी नष्ट हो जाती है। प्रेम ही ऐसा तत्त्व है, जो दो व्यक्तियों के मन को एक सूत्र में बाँधने की क्षमता रखता है। उसीसे व्यक्ति के व्यक्तित्व में बल और पूर्णता आती है और जीवन के विकास के लिए सच्चा आधार मिलता है। आधुनिक नारी जब प्रेम में निष्फल होती है, तब आवश्यकता पड़ने पर अपने प्रेम को नष्ट करनेवाले को भी नष्ट करने के लिए वह तैयार होती है। अम्बा को जब अपना प्यार नहीं मिलता है, तब वह उसके प्यार को छिननेवाले भीष्म का जीवन ही नष्ट कर देती है।

यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि शारीरिक अतृप्ति के कारण व्यक्ति कुंठित - सा हो जाता है और क्रूरतापूर्ण आचरण करने लगता है। वर्तमान समय में नारी अपने स्वतंत्र अस्तित्व को बनाये रखना चाहती है। नौकरी, व्यवसाय आदि के कारण आत्मनिर्भरता बढ़ी है। वैसे-वैसे सुशिक्षित एवं आत्मनिर्भर महिलाओं में अविवाहितों की संख्या लगातार बढ़ रही है। पारिवारिक व अन्य कारणों के अलावा स्वेच्छा से अविवाहित रहने की प्रवृत्ति भी बढ़ी है। परिणामतः यौन समस्या दिन पर दिन

जटिल होती जा रही है।

हमारे कवि वर्तमान में विष की तरह व्याप्त हो रही इन समस्याओं से ज्ञात है। इसीलिए ही उन्होंने प्रेम व यौन सम्बन्धी समस्याओं को भी अपने काव्यों में स्थान दिया है। आज की आधुनिका मुक्त यौन सम्बन्धों में विहार करने लगी है। इतना ही नहीं प्रेम व यौन सम्बन्धों को खुले आम प्रकट करने में उसे लाज नहीं आती, वरन् शारीरिक संतुष्टि के नाम पर पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण करके भारतीय संस्कृति के उत्तमोत्तम तत्त्वों का ह्रास कर रही हैं, तब कवि ने इस समस्या के चित्रण द्वारा भारतीय नारी का पथप्रदर्शन किया है। 'उत्तर रामायण' की शूर्पनखा मुक्त यौन सम्बन्धों की संस्कृति में पलनेवाली स्वच्छंद और विलासी नारी है, जो आधुनिक नारी की नाई कई पुरुषों से प्रेम की भीख माँगती फिरती है। प्रथम वह राम से और फिर लक्ष्मण से प्रणय निवेदन करने लगती है।

इस प्रकार अन्य कवियों के काव्यों में जहाँ स्वच्छन्द भोग-संबंधी विचारों की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है, वहाँ काबराजी के काव्यों में भारतीय संस्कृति के अनुरूप पति-पत्नी के यौन-सम्बन्धों को मान्यता देकर उसी पर अधिक बल दिया है। कवि के मतानुसार नर-नारी का सहज प्रेम प्रकृति का सार तत्त्व है।

### 7.2.3 समाज में स्त्री के अस्तित्व की समस्या :

स्त्री अपनी अस्मिता व अस्तित्व की प्राप्ति के लिए अनेक वर्षों से संघर्ष करती आई है। वर्तमान समय में स्त्री पुरुषों के समान स्वतंत्र है। सामाजिक, शैक्षणिक, वैधानिक, प्रशासनिक, राजनैतिक व आर्थिक क्षेत्रों में नारी की उपलब्धि महान रही है। कई जगह पर वह पुरुषों के बराबर है तो कई क्षेत्रों में उससे आगे। ऐसा कोई क्षेत्र नहीं रहा जहाँ उसका प्रवेश नहीं है। स्त्री ने यह स्थिति बहुत ही संघर्ष से प्राप्त की है। आज की नारी अपना स्वतंत्र अस्तित्व, अपना वजूद तलाशने लगी है। वह महसूस करने लगी है कि उसका अपना कहने को क्या है। वह अपने आप भी उसकी पहचान है कि नहीं ? क्या उसे एक मानवी के रूप में स्वतंत्र सत्ता के रूप में कभी स्वीकार किया जायेगा कि नहीं ? क्या उसके अस्तित्व और व्यक्तित्व के सूत्र अब भी पिता, पति और पुत्र के हाथ में हैं ? आज ये सारे सवाल नारी के मन में बार-बार उठते हैं।

सदियों पहले नारी पुरुषों की तुलना में स्वयं को हीन और कमजोर मानती रही, अपनी रक्षा का भार पुरुषों को सौंपती रही, जीवन यापन के लिए हमेशा पुरुषों पर निर्भर रही, लेकिन आज

शिक्षा व आधुनिकता के प्रभाव स्वरूप नारी इस मानसिकता से मुक्त होने लगी है। धीरे-धीरे ही सही पर आज की नारी को अपनी गुलामी का अहसास होने लगा है और वह अपने अस्तित्व के प्रति सचेत होने लगी है। सदियों से दबाई गई अपनी आवाज़ को आज वह बुलंद कर रही है। लगभग हर स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने अपने काव्यों में नारी की इस छटपटाहट को उसकी मुक्ति की कामना को अपने-अपने तरीके से वाचा प्रदान की है। काबराजी भी नारी-जगत में हो रहे इस परिवर्तन से अछूते नहीं रहे। उन्होंने नारी के इन बढ़ते हुए कदमों की ओर संकेत ही नहीं किया है, बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहित भी किया है। उनका 'उत्तर रामायण' तो जैसे नारी की सजग होती अस्तित्व चेतना का ही दस्तावेज बन गया है। इस काव्य संग्रह के द्वारा कवि ने नारी अस्तित्व के विविध पहलूओं का जिस कुशलता व बारीकी से उभारा है, वह प्रशंसनीय है। सीता का जीवन संघर्ष भारतीय नारी का अपने अस्तित्व को पाने का संघर्ष है। सीता ने जीवनभर कष्टों को सहा है। लंका में एकबार अग्नि परीक्षा देने के बाद भी उसके पुनित-पावन चरित्र पर शंका व्यक्त की गई। यह बात उसके लिए असह्य हो जाती है। उसके सामने भी अपने अस्तित्व का प्रश्न उठ खड़ा होता है। वह अयोध्या की जनमेदनी के समक्ष अग्नि परीक्षा के बारे में राम से कहती हैं —

“ऋक्ष वानर, राक्षसों की मेदिनी में,  
वह किसी दुर्दान्त अक्रामक विजेता के लिए  
तो योग्य है  
पर आप जैसे अखिल आयावर्त के  
सांस्कृतिक प्रतिनिधि की नहीं शोभा बढ़ी है  
इस गलित शब्दावली से।  
मानती हूँ अर्द्ध विकसित जातियाँ केवल समझती हैं  
यही भाषिक व्यवस्था,  
किंतु जो नीचे गिरा है भूमि पर,  
उसको उठाने के लिए  
है यह कहाँ अनिवार्य —  
भूतल पर, स्वयं को भी गिराया जाय।  
प्रज्ञा तो इसी में है,  
तनिक झुककर, स्वयं के हाथ का देकर सहारा

पतित को ऊपर उठाया जाय ।  
जिसमें सजग करुणा भाव का सीमान्त है,  
औदार्य उसको ही कहेंगे ।  
जो नहीं खुद को गिराए,  
किन्तु बाहें थामकर गिरते हुए जन को उठाए,  
आर्य उसको ही कहेंगे ।

X    X    X

पति ही नहीं करता स्वयं  
समुचित सुरक्षा एक पत्नी की अगर  
उस पंचवटी की छाँव में  
मैं पूछती हूँ इन भरी पंचायतों में —  
प्रश्न यह पति से जरा-सा पूछ पाए —  
है कोई शिक्षक यहाँ पर ?  
राम ही यदि जानकी की जान के गाहक बनें,  
फिर कौन रक्षक है यहाँ पर ?  
राम के प्रति रंचभर  
शंका नहीं मेरे हृदय में,  
राम का मन घिर गया फिर  
क्यों कुशंका के वलय में ?

X    X    X

विवशता हों किसी की  
विवशता मेरी नहीं है ।  
राम की जो है व्यवस्था,  
व्यवस्था मेरी वही है ।”<sup>8</sup>

इस प्रकार भारतीय सन्नारी जो भारतीय नारियों में पतिव्रता का आदर्श मानी जाती है, उनका अस्तित्व भी लड़खड़ाता है । उनके भी दो-दो बार अपने चरित्र का प्रमाण देने के लिए उपस्थित होना पड़ता है । आज की नारी अपनी एक नई आत्मनिर्भर छवि समाज के सम्मुख रखना चाहती

है। आज की आधुनिक शिक्षित नारी ने इस ओर कदम बढ़ाना प्रारंभ कर दिया है। वर्तमान समय में जब विज्ञान और प्रौद्योगिकी के युग में यह साबित हो गया है कि स्त्रियाँ भी मानसिक शक्ति में पुरुषों से कम नहीं हैं, फिर भी वे स्वयं को अस्तित्ववान बनाने के लिए, अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए अकेली ही लड़ रही हैं। उसकी क्षमता को अभी भी कम आँका जाता है। फिर भी आधुनिक नारी अपने अस्तित्व की पहचान बनाने के लिए प्रयत्नशील है। तभी तो 'परिताप के पाँच क्षण' की अम्बा भीष्म से प्रतिशोध लेने के लिए तैयार होती है। यदि भीष्म अम्बा अपहरण न करते, तो अम्बा ने भी शाल्व के सुखद स्वप्न अपनी स्मृति में सँजोए थे। शाल्व भी उसे अपनी अर्द्धांगिनी बनाता, किन्तु भीष्म के द्वारा किये गये अपहरण के कारण ही अम्बा के सामने भी अपने अस्तित्व का प्रश्न आकर खड़ा हो जाता है। शाल्व, भीष्म एवं विचित्रवीर्य तीनों के ठुकराने के बाद अम्बा उग्र तपस्या करके भी अपने अस्तित्व को पाना चाहती है। एक ओर भारतीय समाज व्यापक परिवर्तनों के दौर से गुजर रहा है वहीं कई जगहों पर स्त्री की स्थिति आज भी मध्ययुगीन दासता को प्रतिबिम्बित करती है। स्त्री को आज भी चाहे वह किसी ऊँचे पद पर कार्यरत हो या अनपढ़ गृहिणी, पुरुष प्रधान समाज के आतंकों का शिकार उसे होना ही पड़ता है। 'उत्तर महाभारत' की द्रौपदी को हरदम यही खर रहा करता था कि युधिष्ठिर उस पर यह आरोप न लगाये कि 'यह अकेले पार्थ को ही चाहती थी' अर्जुन को ही वह पति के रूप में पाकर भी उसे पाँच पतियों से जुड़ना पड़ता है। यही उसके जीवन की विवशता है। पाँच पतियों के होते हुए भी कुरु सभा में उसे जुए में हारी हुई वस्तु की तरह घसीटा जाता है। उसके नारीत्व का अस्तित्व ही बिखेर दिया जाता है। वह सभा में पुकार-पुकार कर कह रही थी -

“क्यों मुझे लाया गया है  
 इस सभा में ?  
 क्या किया अपराध मैंने ?  
 मैं नहीं निर्जीव सम्पत्ति किसी की,  
 दाँव पर जिसको लगाकर  
 और उसको हारकर  
 इस तरह बुलवाया गया है।

X    X    X

किस अछूते शास्त्र के आधार पर



मुझको लगाया दाँव पर ?

रे क्या किसी के घर

बहू-बेटी नहीं है ?”<sup>9</sup>

किन्तु द्रौपदी के इन प्रश्नों के उत्तर किसी के भी पास नहीं है। द्रौपदी अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिए भरी सभा में सभी के समक्ष ये सवाल रखती है, फिर भी उसे अपमानित होना पड़ता है। दुष्ट दुःशासन उसके चीर को खींचकर उसे नग्न कर देता है, फिर भी उसके पाँचों पतियों में से एक भी उसकी सहायता नहीं कर पाते हैं। एक पति हो या पाँच समाज में नारी के अस्तित्व की समस्या किसी-न किसी प्रकार हमारे समक्ष उपस्थित रहेगी। बाहरी क्षेत्र में नए-नए अवसरों ने स्त्री को सुदृढ़, आत्मविश्वासी व आत्मनिर्भर तो बना दिया है, परंतु नारी के चरित्र को कलंकित करने का प्रयास आज भी हो रहा है। चाहे वह सीता जैसी आर्यनारी हो या सामान्य-सी धोबीन। पत्नी हो या प्रेमिका। ‘उत्तर भागवत’ की राधा भी अपना अस्तित्व पाने के लिए प्रयत्नशील है। कृष्ण के प्रति संपूर्ण प्रेम समर्पण के बाद भी वह कृष्ण की जीवन संगिनी नहीं बन पाती है। फिर भी वह एक प्रेमिका के रूप में अपना स्वतंत्र अस्तित्व लेकर जीना चाहती है। कृष्ण के गोकुल चले जाने के बाद वह अन्य पुरुष से शादी नहीं करती है, बल्कि कृष्ण की प्रेयसी ही बनी रहती है।

#### 7.2.4 पुरुष समाज में अधिकारों की समस्या :

भारतीय समाज पुरुष प्रधान होने के कारण पुरुष हमेशा नारी-जगत पर हावी रहे हैं। परंपरागत भारतीय परिवारों में पुरुष ही निर्णायक होता है। चाहे मामला विवाह का हो, व्यवहार का हो या कुछ और। परिवार के मुखिया ने कह दिया वह पत्थर की लकीर। पत्नी के जीवन का महत्वपूर्ण निर्णय भी पति तय करता है। नारी चाहे घर की चार दीवारों में रहे, चाहे घर से बाहर निकलकर पुरुष के कदम से कदम मिलाने का प्रयास करे, उसे पुरुष के अधिकारों के बीच रहना ही पड़ता है। पुरुष खुद ‘परमेश्वर’ के पद आसीन रहता है और वह चाहता है कि स्त्री सदा पुजारन बनकर उसकी पूजा करती रहे। पुरुष की मानसिकता सदियों से स्त्रियों पर राज करने की रही है और आज भी हमारा भारतीय पुरुष वर्ग अपनी इस परंपरावादी मानसिकता से उबर नहीं पा रहा। डॉ. काबराजी ने भी अपने काव्यों में इस समस्या को बड़ी गहराई से उठाई है।

परंपरावादी पुरुषों की दृष्टि में स्वतंत्रता पुरुषों का जन्मसिद्ध अधिकार है और स्त्रियों के अधिकारों की उसे कोई फिकर नहीं है। यहाँ तक कि लड़की को पति की पसंदगी करने में स्वतंत्रता है। उसे अपनी इच्छानुसार पति चुनने का हक दिया गया है किन्तु फिर भी कहीं-कहीं पति की

पसंदगी पिता की इच्छानुसार ही होती है। 'उत्तर महाभारत' की द्रौपदी अपने स्वयंवर में आये हुए कर्ण के रूप, सौंदर्य एवं साहस से प्रभावित होकर मन ही मन उसे चाहने लगती है और उसका वरण करने के लिए भी तैयार हो जाती है, किन्तु उसके पिता की तरह कृष्ण ने भी द्रौपदी के इस अधिकार को छिन लिया। वे द्रौपदी से कहते हैं —

“तू सूत के इस पूत को क्या वर सकेगी ?  
 सारथी के चरण में सर्वस्व अपना धर सकेगी ?  
 याज्ञसेनी तू  
 द्रूपद की लाडली तू  
 सोच ले !  
 आई यहाँ तू किस बड़े उद्देश्य से ?  
 आकाशवाणी का जरा-सा ध्यान कर ले,  
 और अपने वंश के सम्मान का  
 अपने पिता के मान का अपमान का  
 अवधान कर ले ।

X    X    X

सूत का बेटा कहाँ है ?  
 हृदय देने में नहीं करते उतावल ।  
 शान्त मन से सोचकर  
 निर्णय तुझे लेना पड़ेगा,  
 एक ही नर को तुझे  
 अपना हृदय देना पड़ेगा ।  
 और वह नरकेसरी है वीर अर्जुन ।

X    X    X

और तू जो सारथी की बात मन में सोचती है,  
 तो यही कुरुवंश का गौरव धनुर्धर पार्थ  
 तेरे हृदय-रथ का  
 सारथी बनकर रहेगा ।”

वे द्रौपदी से कर्ण को वर के रूप में स्वीकार करने के लिए साफ इन्कार कर देते हैं और वे उसे कहते हैं —

“इस स्वयं में सभी के सामने  
कह दे अभी,  
हाँ —  
‘सूत के इस पुत्र को मैं  
वर नहीं सकती कभी ।’” <sup>10</sup>

वह कर्ण को चाहती है, किन्तु फिर भी पिता के स्वप्न को साकार करने के लिए वह उसका वरण नहीं कर सकती है। पुरुष हमेशा ‘पुरुष’ होने के अहम् में स्वतंत्रता का खुलकर उपभोग करता रहा है। स्त्री की इच्छा, अनिच्छा, उसके विचार जाने बिना उसके जीवन का सबसे बड़ा फैसला ले लेते हैं। इतना ही नहीं पति होने के नाते वे अपनी पत्नी पर संपूर्ण अधिकार जताते हैं, लेकिन ये अधिकार वे अपनी पत्नी को कभी नहीं देते। परिवार को बाँधने में वह सफल रही किन्तु पुरुष की अर्द्धांगिनी बन वह समाज में गौण रही। वह पुरुषों के कार्यों को सम्पादित करनेवाली मशीन तो बन गई किन्तु निर्णय लेने की स्थिति में उसकी भूमिका महत्वहीन रही। द्रौपदी अर्जुन की ब्याहता है, किन्तु फिर भी उसकी इच्छा, आकांक्षा, उसके विचार जाने बिना ही उसे पाँच पतियों में विभाजित किया जाता है।

आज परिस्थितियाँ बदल रही हैं। स्त्रियाँ पढ़-लिखकर हर क्षेत्र में पुरुषों के कदम से कदम मिलाकर चल रही हैं, उच्च पदों पर आसीन हैं, बड़ी-बड़ी कंपनियों को सँभाल रही हैं, सेना में भर्ती होकर देश की रक्षा में सक्रिय योगदान दे रही हैं अर्थात् जीवन का शायद ही ऐसा क्षेत्र हो जहाँ स्त्रियाँ नहीं पहुँच पाईं हो। उसे यह जानने का अवसर भी मिला कि जब वह बाहरी देश के लोगों से संघर्ष करके स्वतंत्रता प्राप्त कर सकती है, तो अपने देश, समाज व परिवार में वह क्यों अधिकार विहीन रहें। इसके बावजूद भी अफसोस कि आज की नारी ने ये अभूतपूर्व सफलताएँ तो प्राप्त की किन्तु भारतीय पुरुषों के आधिपत्य से वह आज भी मुक्त नहीं हो पाई है। अब भी नारी पर पुरुष वर्ग ने अधिकार स्थापित किये हुए हैं। ऊपरी तौर पर मोर्झ दिखने वाले आधुनिक पुरुष भी भीतर से दकियानूसी मानसिकता से ग्रस्त हैं। आज भी पुरुष की नजर में स्त्री का सैंकड़ों वर्ष पूर्व का रूप अंकित है। आज भी सफल और स्वाभिमानी स्त्रियों पर पुरुष शंका की द्रष्टि से देखता है, उस पर बेवजह तरह-तरह के इलजाम लगाता है। ‘उत्तर रामायण’ में धोबीन पर उसका पति इसीलिए

लांछन लगाता है कि उसे कपड़े धोकर वापस आने में देर हो जाती है और रात हो जाने के कारण किसी परिचित के यहाँ रुक जाती है। सुबह जब घर आती है, तब धोबी उसके चरित्र पर शंका व्यक्त करते हुए उसे घर से निकाल देता है। स्त्रियों ने भले ही काफी क्षेत्रों में प्रगति पाई हो, किन्तु आज भी पुरुष नी नज़रों में स्त्री मात्र एक देह है, उपभोग की वस्तु है। अपनी परंपरावादी सोच के कारण पुरुष आज भी स्त्री को मानवी होने का अधिकार नहीं दे पा रहा है। समाज में आज भी स्त्रियों को ही दबना पड़ता है। अपने अधिकारों के प्रति सचेत स्त्री पुरुष का आधिपत्य एवं दबाव रोकने में संघर्षरत है, किन्तु इसे रोकने में सफलता कम ही प्राप्त कर सकी है। 'परिताप के पाँच क्षण' की अम्बा परिस्थितियों के सामने विवश होनेवाली नारी नहीं है। वरन् वह अपने अधिकारों के प्रति सचेत होकर परिस्थितियों से लड़नेवाली नारी है। वह टूट जाना पसंद करती है, किन्तु हारना नहीं। वह अपने निर्णय पर अटल है। किसी भी हाल में वह भीष्म को बरबाद करना चाहती है, किन्तु फिर भी नारी के रूप में वह बदला नहीं ले सकती है।

इस प्रकार समग्रतया हम कह सकते हैं कि आज भी स्त्री का अस्तित्व पूर्णतः सुरक्षित और नियंत्रण से मुक्त नहीं है। आज भी उसे अधिकारों से वंचित रखा जाता है। अधिकारों से वंचित नारी के हिस्से में सदा से ही कर्तव्य आये हैं। समाज के आगे नारी को ही घुटने टेकने पड़ते हैं।

### 7.2.5 नारी अपमान की समस्या :

पुरुष प्रधान भारतीय समाज में प्राचीन काल से पुरुष अपने अहं के कारण नारी का अपमान करता आया है। कालांतर में नारी को कभी पैरों की जूती समझा गया, कभी जूए की संपत्ति। भारतीय नारी धैर्य और त्याग की मूर्ति मानी जाती है। पुरुषों के द्वारा हुए अपमान को वह चूपचाप सह लेती है। कहीं कोई नारी उसके खिलाफ आवाज उठाती भी है, किन्तु आदर्श, संस्कृति एवं परंपरा के नाम पर उसे दबा दिया जाता है। व्होराजी के मतानुसार "आगे चलनेवाली महिलाएँ कोई बिरली ही होती हैं, जिन्हें हम क्रान्तिकारी कदम उठानेवाली अग्रणी महिलाएँ या नेत्रियां कह सकते हैं। इसके लिए असाधारण योग्यता चाहिए। बहुत सूझबूझ चाहिए। आलोचनाओं-चर्चाओं को झेलने और उनका सही ढंग से उत्तर देने की क्षमता चाहिए और चाहिए वह आत्मबल, जो हर किसी में नहीं होता।"<sup>11</sup> डॉ. काबराजीने भी अपने काव्यों में प्रस्तुत समस्या का अंकन किया है। उनका 'परिताप के पाँच क्षण' तो मानो नारी अपमान की समस्या को प्रस्तुत करने हेतु ही लिखा हो ऐसा प्रतीत होता है। कवि के मतानुसार नारी भी पुरुषों की तरह समाज का ही एक अंग है। उसे भी सभी अधिकार देने चाहिए। नारी का अपमान होता है, तो अपमानित और उपेक्षित नारी विद्रोह

करती है या फिर विक्षिप्त हो जाती है, तो परिवार टूट जाता है। जब वह विद्रोह करती है, तो समाज टूट जाता है। भीष्म ने अम्बा का अपहरण तो किया किन्तु, अपने लिए नहीं, बल्कि अपने अनुज विचित्रवीर्य को उपहार में देने के लिए ही। क्या यह न्यायसंगत है? क्या नारी उपहार में देने की चीज़ है? यह नारी के जीवन का सबसे बड़ा अपमान है कि कोई पुरुष उसे चीज़ की भाँति उपहार में दें। यद्यपि अम्बा ने जब अपने प्रेमी शाल्व के पास जाने के लिए कहा तब भीष्म ने उसे जाने दिया। किन्तु भीष्म के द्वारा अपहृता अम्बा का स्वीकार करने के लिए वह साफ इन्कार कर देता है। यहाँ तक कि वह अम्बा को 'भीष्म का अच्छिष्ट' तो कहता है, साथ ही साथ धृणित शब्दों उसके प्रेम का अपमान करता है।

“मुँह दिखाने आ गई क्यों तू अरी,  
निर्लज्ज नारी,  
लाज मुझको आ रही है  
देखकर तुमको कुँआरी।”<sup>12</sup>

विचित्रवीर्य भी उसे बड़े धृणित शब्दों में अपमानित करता है —

“अरी ओ कलमूँही निर्लज्ज नारी,  
डूबमर जाकर नदी की धार में  
या  
जवानी बेच अपनी रूप के बाजार में।”<sup>13</sup>

इस प्रकार अपमानित अम्बा घायल शेरनी बनकर अपने प्रेम को छिननेवाले भीष्म के खिलाफ विद्रोह करती है।

युग बदले, परिवेश बदले, पीढ़ियाँ बदली किन्तु आज भी भारतीय नारी का अपमान काफी हद तक हो रहा है। 'उत्तर महाभारत' में युधिष्ठिर अपनी पत्नी द्रौपदी को निर्जीव सम्पत्ति की तरह कुरु सभा में जुएँ में दाव पर लगाकर हार जाता है। हारी हुई द्रौपदी को कौरवों के द्वारा बीच सभा में अपमानित भी होना पड़ता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अपनी सैंकड़ों वर्षों पुरानी परम्परा की गहरी नींवोंवाले इस देश में आज भी स्त्री पूरी तरह स्वतन्त्र नहीं है। आज भी पुरुष वर्ग के नियंत्रण में है। किसी-न-किसी रूप में उसका अपमान हो रहा है। इसे या तो उसकी विवशता कह सकते हैं, या उसकी अतुलनीय सहनशीलता।

### 7.2.6 औरत पर अत्याचारों की समस्या :

सदियों से औरत - समाज, पुरुष, धर्म सभी के द्वारा अत्याचारों की शिकार होती आई है। आज उसकी स्थिति परिवर्तित हुई है। उसे बहुत से अधिकार दिए गए हैं। नारी को लेकर समाज का नज़रिया भी बदला है। आज वह सब कुछ नियति मानकर स्वीकार नहीं कर लेती है। फिर भी आज उस पर अत्याचार हो रहे हैं। धर्म, समाज, व्यक्ति, परिवार सभी में वह आज के प्रवर्तमान युग में भी उस पर अत्याचार किया जा रहा है। स्त्री के जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना तो यह है कि अपने सांसारिक जीवन में वह अपने परिवार रूपी नाव को जीवनभर चलाती है, काफी संघर्षों से झुझकर भी उसे किनारे पर पहुँचाने का प्रयत्न करती है, उस परिवार में उसकी इच्छाओं का कोई मूल्य नहीं होता। किसी भी मामले में उसकी इच्छा-अनिच्छा जानना तक उचित नहीं समझा जाता। उसे बचपन से सिर्फ यही सिखाया जाता है कि उसे अपने कर्तव्यों को भली-भाँति निभाना है। यह कर्तव्य कभी 'बेटी' के नाम पर, कभी 'पत्नी' बनकर, कभी 'माँ' के रूप में। इन सभी रूपों में नारी के हिस्से में केवल कर्तव्य ही आते हैं। उसे अपने कर्तव्यों की पूर्ति के लिए ही जीना पड़ता है। उसकी इच्छा-आकांक्षाएँ तो मृतःप्राय बनकर एक कोने में पड़ी रहती हैं। यह नारी पर अत्याचार नहीं है तो और क्या है? 'उत्तर महाभारत' की द्रौपदी भी कई बार अत्याचार की शिकार हुई है। एक सुंदर-सी, छोटी-सी, प्यारी-सी गृहस्थी की चाह रखनेवाली द्रौपदी को न चाहकर भी पाँच पतियों से झुड़े रहना पड़ता है। वह मन से अर्जुन को ही सिर्फ अपना पति मानती है, फिर भी अन्य चारों में उसे विभक्त होना पड़ता है। इतना ही नहीं उसे निर्जीव वस्तु की तरह जुए में दाव पर लगाकर हारा जाता है और पाँच पतियों की पत्नी उस पाँचाली को पंचों के बीच कुरू सभा में निर्वस्त्र किया जाता है। पुरुष के ऐसे अत्याचारों से नारी कभी मुक्त नहीं हो पायी है। सदियों से पुरुष नारी को वासनाभरी द्रष्टि से देखता आया है। घर में या बाहर कहीं भी नारी सुरक्षा का अनुभव नहीं कर रही है। उसे पता नहीं चलता कि कब भूखे भेड़िये उन पर टूट पड़ेंगे? कई दुष्ट दुःशासनों, जंगली जयद्रथों एवं क्रूर कीचकों की निगाहें नारी पर ही केन्द्रित रहती हैं।

आज नारी नौकरी के लिए घर से बाहर निकली है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के साथ सक्रिय भूमिका निभा रही है, बाहरी परिवेश में समायोजित हो रही है। वह घर गृहस्थी सँभालने के साथ - पति को भी आर्थिक सहयोग देती है, किन्तु फिर भी पुरुषों की पारंपरिक सोच में कोई बदलाव नहीं आया। घर से बाहरी क्षेत्रों में पत्नी जब काम करती है, तब वापस लौटने में देर लगती है, या तो परिस्थितिवश कहीं जाना पड़ता है, तो पति पत्नी को शंका की द्रष्टि से देखता है। पत्नी

पर अधिकार जताना या रौफ प्रकट करना उसका पुराना स्वभाव है। कभी-कभी तो वह अपनी पत्नी के साथ मार-पीट भी करता है। औरत पर हो रहे इस अत्याचार की समस्या को कवि ने 'उत्तर रामायण' में प्रस्तुत किया है। धोबीन कपड़े धोने के लिए सरयू नदी पर गई थी, किन्तु देर हो जाने से वह घर नहीं पहुँच पाई और विवश होकर रात परिचित व्यक्ति के घर रुकना पड़ा। जब वह दूसरे दिन सुबह वह घर जाती है, तब धोबी उस घर में रखने के लिए तैयार नहीं होता है। इतना ही नहीं उसे निकाल दिया और कुलटा कहकर धक्के देकर घर से निकाल दिया और उसे पत्नी की तरह स्वीकारने का साफ इन्कार कर देता है। औरतों पर हो रहे इन अत्याचारों से उसे कौन उबारेगा ? 'उत्तर भागवत' में कंस द्वारा देवकी पर हुए अत्याचारों को देखकर हम यह कह सकते हैं कि पुरुष अपने स्वार्थ एवं सुख-चैन के लिए औरत पर अत्याचार करने का सिलसिला छोड़ेगा नहीं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि परंपरागत भारतीय स्त्रियाँ हमेशा दुर्बल, असहाय, शरणार्थी के रूप में स्वयं को प्रस्तुत करती आ रही हैं और पुरुषों के अत्याचारों को नियति मान झेलती आई हैं। पुरुष वर्ग ने हमेशा से स्त्रियों को दबाकर रखा है। वह चाहे घर की चार दीवारी में रहे, या घर से बाहर निकलकर पुरुष के कदम से कदम मिलाकर चलने का प्रयास करें, अत्याचारों का शिकार तो उसे आज भी होना ही पड़ता है।

### 7.2.7 माँ के दूध की समस्या :

वर्तमान परिस्थिति में यह बड़ी ही गंभीर समस्या है। आज वर्तमानपत्रों एवं टेलिविजन आदि अन्य माध्यमों से उपेक्षित संतानों के बारे में कई बार सुनते और देखते हैं। अपनी नाजायज संतान को समाज के बदनामी के डर से कुँआरी माता उसे कहीं छोड़ देती है। ऐसी संतानों को माँ का दूध नहीं मिल पाता है। डॉ. काबराजी आधुनिक युगीन इस समस्या से भली-भाँति परिचित हैं। उन्होंने अपने प्रबन्ध काव्यों के माध्यम से उक्त समस्या को रखकर माँ के दूध का मूल्य एवं महात्म्य समझाया है। 'उत्तर महाभारत' में कुंती कौमार्यावस्था में ही सूर्य से कर्ण पाती है। लोकलाज एवं बदनामी के कलंक से बचने के लिए वह कर्ण को पानी में लकड़ी के बक्शे में रखकर बहा देती है। कर्ण कुंती का बेटा होकर भी आजन्म 'सूतपूत्र' के नाम से अपमानित होता रहा। उसे इसीकारण काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। यदि कुंती ने अपना दूध पिला उसे अपना नाम दिया होता तो शायद वह द्रौपदी स्वयंवर में घोर अपमान से बच जाता। कवि ने 'नरो वा कुंजरो वा' में प्रस्तुत समस्या को बड़ी गहराई से उठाया है। खास तौर पर अप्सराओं की उच्छृंखल प्रवृत्तियों पर व्यंग करते हुए कवि ने वर्तमान की मुक्त यौन सम्बन्धों को प्रधानता देनेवाली नारियों पर कड़ा प्रहार

किया है। जिस प्रकार अप्सराएँ प्यार करती हैं, प्रसव की पीड़ा भी सहती हैं, किन्तु माँ बनते ही वे संतान को छोड़कर स्वर्ग में चली जाती हैं और वह बच्चा जगत का उपहास एवं ठोकरे खाने को इस संसार में रहता है। ऐसे बच्चे को जीवनभर काफी संघर्षों का सामना करना पड़ता है। किसी के उपकारों की छाँह तले उसे जीना पड़ता है और उसका पूरा जीवन उस उपकार का बदला चुकाने में ही बितता है। ऐसी संता को नफरत के सिवाय दुनिया से कुछ नहीं मिलता है। 'नरो वा कुंजरो वा' में द्रौण के पात्र द्वारा कवि ने उक्त समस्या को प्रकट किया है। द्रौण को अपनी माँ का दूध मयस्सर नहीं हुआ। अतः उसका पूरा जीवन ही संघर्षों में बितता है। यहाँ तक कि वे अपने बच्चे को भी दूध नहीं दे सका। यदि द्रौण अपने बेटे अश्वत्थ को दूध के बदले आटा घोलकर नहीं पिलाते और सत्य बता देते तो वह बाल हत्यारा नहीं बनता। लेकिन बचपन से ही उसे माँ के द्वारा यह संस्कार दिया गया। जिसे खुद माँ का दूध न मिला हो, भला वह अपने बच्चे को लातें, घूसें, चपतें और झूठी लालचों के सिवाय और क्या दे सकती है? जिसे माँ का दूध नहीं मिलता है, वह वास्तव में ममता को तरस जाते हैं। स्वयं द्रौण ने कृपि के समक्ष इस बात को रखा है —

“और जिसको दूध माँ का नहीं, उपलब्ध है,  
समझ लो  
उसका निरा फूटा हुआ प्रारब्ध है।”<sup>14</sup>

इस प्रकार कवि ने द्रौण, कृपि एवं अश्वत्थ के द्वारा दूध की आवश्यकता पर बल दिया है। साथ ही साथ 'उत्तर भागवत' के द्वारा कवि ने 'उत्तर भागवत' में कृष्ण के पात्र द्वारा यह भी प्रतिपादित किया है कि जिसे दो-दो, तीन-तीन माँओं का दूध मिलता है, उसकी शक्ति दुगुनी, तिगुनी बढ़ जाती है। वह दूसरों के जीवन का तारणहार बन जाता है। वह सभी के संघर्षों का संहारक बन जाता है।

### 7.2.8 गृहस्थी की समस्या :

सांसारिक जीवन में गृहस्थी का बड़ा महत्व है। सुखी गृहस्थी का सबसे बड़ा पहलू है आर्थिक संपन्नता। इसके विपरीत आर्थिक विपन्नता के कारण गृहिणी के लिए गृहस्थी सँभालना बड़ा ही मुश्किल हो जाता है। आधुनिक शिक्षित नारी नौकरी करके पति को आर्थिक सहयोग दे सकती है, किन्तु अशिक्षित एवं परंपरागत नारी केवल अपनी गृहस्थी का क्षेत्र ही सिमटकर बैठ जाती है। अतः परिवार का गुजारा अकेले पुरुष की कमाई के बल पर ही करना पड़ता है। आधुनिक महँगाई के इस युग में यदि पुरुष की कम आय है, तब पत्नी को काफी कठिनाइयों से गुजरना पड़ता है। वैसे पुरी



गृहस्थी का आधार पत्नी के गृह संचालन पर ही होता है। यदि वह चाहे तो घर को परिवार को स्वर्ग-से सुख भी प्रदान कर सकती है और चाहे तो बसा-बसाया घर तहस-नहस भी कर सकती है। आधुनिक फैशन के रंगों में रंगी आधुनिका को परिवार में सभी प्रकार की भौतिक सुविधाएँ चाहिए। यदि उसे आमोद-प्रमोद या सुख-सुविधा में कोई कमी आती है, तो वह बड़ी ही परेशान-सी हो जाती है। शहरों में रहनेवाली गृहस्थ स्त्री को हमेशा यही डर रहा करता है कि अपने इस छोटे-से-घर में यदि महेमान आयेंगे तो उसे कहाँ रखेगी? साथ ही साथ आर्थिक तकलीफ भी हो तो वह महेमान की आव भगत करने में सकुचायेगी। कवि ने उक्त समस्या को भी अपने काव्यों में यथा-स्थान चित्रित किया है। 'उत्तर भागवत' में द्रौपदी अभावग्रस्त गृहस्थी के कारण काफी चिंतित दिखाई देती है। वन में जब ऋषि दुर्वासा आनेवाले थे, तब द्रौपदी की चिंता का कोई पर नहीं रहता है। वह युधिष्ठिर के समक्ष अपनी उलझन प्रकट करती हुई कहती है —

“आज सब झूठ हो गई  
मेरी गृहिणी की परिभाषा,  
नदी स्नान कर शिष्यों को ले —  
आनेवाले है दुर्वासा।  
उन्हें खिलाऊँगी क्या? बोलो धर्मराज!  
संकट है भारी।  
अब तक लाज लुटी थी मेरी,  
आई आज धर्म की बारी”<sup>15</sup>

इस प्रकार 'नरो वा कुंजरो वा' की कृपि की गृहस्थी भी अस्थिर नाव की भाँति डगमगाती चलती है। गृहस्थी की विडम्बना के कारण वह इतनी विवह है कि अपने बच्चे को दूध तक नहीं ला दे सकती है। अन्य सुखों की तो कोई गुंजाईश ही नहीं है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कृपि और द्रौपदी की तरह आज अनेक स्त्रियाँ ऐसी हैं, जिसकी गृहस्थी इतने झंझावातों में फँस जाती है कि उसमें बड़ी मुश्किल से अपने को सँभाल पाती है। ऐसी गृहिणी आतिथ्य सत्कार तो दूर अपने परिवार का गुजारा भी बहुत मुश्किल से कर पाती है।

### 7.2.9 स्त्री की उपेक्षा :

पुरुष प्रधान भारतीय संस्कृति में पुरुष ही सर्वोपरी माना जाता है। तमाम क्षेत्रों में चाहे परिवार

हो या समाज फैसले पुरुष वर्ग के ही हाथों में रहते हैं। एक समय था जब स्त्री को पैरों की जुती समझा जाता था। आज बदलती परिस्थिति के साथ स्त्रियों की स्थिति में काफी परिवर्तन द्रष्टव्य है, किन्तु फिर भी आज भी पुरुषों के द्वारा स्त्री की उपेक्षा होती है। आज भी पुत्री के जन्म से नाराजगी व्यक्त होती है। हाँ, थोड़ा स्वरूप परिवर्तित अवश्य हुआ है। पहले लड़की को जन्म के बाद मार दिया जाता था, लेकिन आज भ्रूण को ही खत्म करने की प्रवृत्ति हो रही है। आज भले ही स्त्रियाँ अवकाश में भी पहुँच गई हो, किन्तु ऐसे कई परिवार हैं, जिनमें स्त्रियों को अपने विचार, इच्छा, अनिच्छा प्रकट करने का अवकाश भी नहीं मिलता है। स्त्री और पुरुष दोनों संसार रथ के पहिये हैं। यदि दोनों में से एक भी झुका तो रथ ढहकर नीचे आ गीरेगा। इसीलिए पुरुष को भी जीवन में स्त्री के महत्व का स्वीकार करना चाहिए। 'परिताप के पाँच क्षण' के भीष्म को अम्बा की अवहेलना एवं उसे स्वीकार न करने की मानसिकता ने अम्बा को विद्रोहिणी बनाया। विद्रोहिणी स्त्री पुरुष से बदला लेने के लिए इस हद तक जा सकती है, कि उसे वहाँ रोका नहीं जा सकता है। वह वर लेती है या बैर। इस प्रकार जब नारी की उपेक्षा की जाती है, तो वह बड़ी ही अक्रामक बन जाती है। उपेक्षिता अम्बा के चरित्रांकन से प्रभावित होकर मूर्धन्य साहित्यकार रामकुमार वर्मा ने कवि काबराजी को इलाहाबाद में 'परिताप के पाँच क्षण' खण्डकाव्य पर सम्मानित किया।

### 7.2.10 सतीत्व की रक्षा की समस्या :

भारतीय संस्कृति में सतीत्व के आधार पर नारी के नारीत्व का अंकन होता आया है। पुरुष प्रधान समाज में सदा से नारी को दबाकर रखने का प्रयास किया गया। सारी नैतिकता, आदर्श, पारिवारिक प्रतिष्ठा का बोझ स्त्री के कंधों पर रखा गया। इसके अतिरिक्त स्त्री के लिए सतीत्व की रक्षा को अहम जिम्मेदारी मानी गई। बचपन से लड़की को यही घुंटी दी जाती है कि तुम्हें किसी भी हाल में अपने सतीत्व को बनाये रखना है। सभी धर्मों में लड़कियों के सतीत्व को सबसे ज्यादा महत्व दिया गया है। लेकिन किसी भी धर्म में पुरुषों के लिए किसी तरह के सतीत्व का विधान नहीं है। हमारी भारतीय स्त्रियाँ भी अपनी संस्कृति के अनुरूप सतीत्व की रक्षा को अपनी जान से भी बढ़कर मानती हैं, किन्तु फिर भी सतीत्व को महत्वपूर्ण माननेवाले पुरुषवर्ग के द्वारा ही नारी पर अत्याचार होता है। नारी को ही पुरुष की कुंठीत एवं विकृत मनोदशा का शिकार होना पड़ता है। दुषित एवं गलित मनोवृत्तिवाले इस समाज में नारी को यही भय रहता है कि वह अपने सतीत्व की रक्षा कैसे करे ? आधुनिक समय में नारी नौकरी करती है, बाहरी क्षेत्रों में उसे जाना पड़ता है, तभी

उसके सिर पर यही भय मँडराता रहता है कि कहीं वह किसी की दुषित वासना का शिकार न हो जाये। पतिव्रता नारी भी निश्चित नहीं है। एकबार जब नारी के शील पर कोई दाग लग जाता है, तो उसके पूरे जीवन को अभिशप्त कर देता है। स्त्री चाहे लाख सफाइयाँ दे, कितनी ही कोशिश कर लें, लेकिन इस कलंक से मुक्त नहीं हो पाती है। स्त्रियों के सतीत्व का अंकन करने के लिए पुरुष प्रधान समाज ने अग्नि-परीक्षा का अच्छा-खासा प्रबन्ध कर दिया है, किन्तु पुरुषों के पास कभी माँगा जाता है यह प्रमाण ? कवि ने 'उत्तर रामायण' में इस समस्या को बड़ी गहराई से उठाया है। रावण सीता को उठाकर ले जाता है, किन्तु वहाँ भी सीता अपने सतीत्व की रक्षा करने में समर्थ हो सकी थी। (हाँलाकि कवि ने यहाँ एक अलग ही कहानी प्रस्तुत की है। सीता को रावण की पुत्री के रूप में चित्रित किया है।) फिर भी राम-रावण के युद्ध की समाप्ति के बाद लंकाजनों के समक्ष सीता को अपने सतीत्व का प्रमाण देना पड़ा था। पुनित, पावन सीता अग्नि परीक्षा देकर अपने सतीत्व को साबित करती है। सबसे दुःखद बात तो यह है कि एक बार लंका में अग्नि-परीक्षा दे चुकने के बाद भी अयोध्या में सीता के समक्ष सतीत्व का प्रमाण माँगा जाता है। उसके पावन चरित्र पर संदेह प्रकट किया जाता है। यह ध्यातव्य है कि यह समस्या केवल अपहृता नारी की ही नहीं है। वर्तमान मोडर्न युग में भी नौकरी करती अपनी पत्नी को पुरुष शंका की निगाहों से देखता है। आज भी कई स्त्रियों के जीवन के सारे सुख इसी कारण नष्ट हो जाते हैं कि वह अपने सतीत्व की रक्षा करने में समर्थ न हो पायी हो। आज भी यह बात उतनी ही उपादेय है। सीता अपने सतीत्व की रक्षा कर सकी थी, द्रौपदी भी जैसे-तैसे सतीत्व की रक्षा करने में सफल हो पायी थी, किन्तु मौजूदा नारी के लिए यह बड़ी समस्या है।

### 7.2.11 अपहरण की समस्या :

प्राचीन काल में लड़कियाँ स्वयंवर द्वारा वर पसंद करती थी या तो उसका अपहरण हो जाता था। अपहृता नारी अपहरण करनेवाले युवक की पत्नी बनती थी। या यों कहा जाय कि युवती का प्रेमी ही उसका अपहरण कर उससे विवाह करता था। किन्तु रूप-गुण संपन्न युवतियों को यह डर हमेशा रहा करता था कि कहीं कोई अयोग्य युवक उसे अपहरण कर न ले जाये। क्योंकि सुखपूर्ण संसार का महत्वपूर्ण आधार है वर पसंदगी। अपहरण के बाद किसी युवती की झोली में अनंत सुखों का शैलाब उमड़ जाता है, तो किसी का जीवन कोढ़ की खाज बन कर रह जाता है, उनके स्वप्न अनछूए-से रह जाते हैं। कई लड़कियों के साथ ऐसी अनहोनी हो जाती है कि उसकी स्थिति धोबी के कुत्ते-सी हो जाती है। न वह अपने प्रेमी की बन पाती है, न ही अपहरण करने वाले की। कई

ऐसी युवतियाँ भी होती हैं, जो अपने अपहरण के बाद अपहरण करने वाले युवक से शादी करके जैसे-तैसे गृहस्थी का बोझ ढो लेती हैं। कविने इस महत्वपूर्ण एवं गंभीर समस्या को अपने काव्यों के माध्यम से हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। 'परिताप के पाँच क्षण' में उक्त समस्या को कविने पुरी तरह से उठाया है। भीष्म अम्बा, अम्बिका एवं अम्बालिका का अपहरण कर अपने सौतेले अनुज विचित्रवीर्य को उपहार में देता है। अम्बिका और अम्बालिका परंपरागत नारी की भाँति निर्वीर्य विचित्रवीर्य को पति के रूप में स्वीकार करके अपने सारे सपनों का हवन कर देती हैं। किन्तु इस अपहरण से अम्बा के जीवन की दिशा ही बदल जाती है। न उसे अपना प्रेमी मिलता है और न ही वह किसी अन्य को वर के रूप में प्राप्त कर सकती है। प्रतिशोध की अग्नि में उसे अपना पूरा जीवन जला देना पड़ता है। उसने शाल्व के साथ वे सारे स्वप्न मिट्टी में मिल चूर-चूर हो जाते हैं। एकबार लड़की का अपहरण हो जाता है, और वह लड़की उसे नहीं स्वीकारती है, या अपहरणकर्ता उसे खुद छोड़ देता है, तब ऐसी युवती को अपनाने के लिए कोई तैयार नहीं होता है। यानि कि जो लड़की अपहरण का सहज स्वीकार कर लेती है, उसे मजबूरन उसे पति के रूप में झेलना पड़ता है और जो अपहरण का अस्वीकार करती है, उसे अम्बा से शिखण्डी तक बनने के लिए तैयार रहना पड़ता है। या तो मौत को भी गले लगाने के लिए तैयार रहना पड़ता है।

'उत्तर रामायण' की सीता का रावण के द्वारा अपहरण होने के बाद उसका पूरा जीवन ही ट्रेजेडी बन जाता है। यद्यपि राम ने रावण का वध कर, लंकाजनों के समक्ष अग्नि परीक्षा करने के बाद सीता का वरण किया था। किन्तु फिर भी अपहरण के कलंक की कालिमा उसके सिर से अलग हो ही नहीं पायी और अयोध्याजनों ने पुनित-पावन सीता के चरित्र पर आशंका व्यक्त की। अतः सीता को दूसरा वनवास ही स्वीकार करना पड़ा।

'उत्तर भागवत' की रुक्मिणी को भी यही डर खाये जा रहा है कि कहीं उसके दुर्दान्त भाई रुक्मि की मदद से शैतान शिशुपाल उसे हर कर न ले लाए। रुक्मिणी पहले से ही गोवर्धनधारी गोपाल के रूप, सौंदर्य, शौर्य एवं वीरता से प्रसन्न थी। अतः शिशुपाल उसका अपहरण करें उससे पहले ही वह कृष्ण को संदेशा भेजकर अपनी जीवन नौका का खिवैया उसे मानकर अपना अपहरण करने के लिए सुचित करती है।

आज भी यह समस्या समाज में व्याप्त है। आज इसका स्वरूप जटिल एवं पैचिदा बन गया है। इसीलिए कवि ने प्रस्तुत समस्या को बड़ी गंभीरता से उठाया है।

### 7.2.12 परित्यक्ता नारी की समस्या :

परित्यक्ता नारी की समस्या प्राचीन काल से चली आ रही है। लेकिन आधुनिक युग में यह अधिक मात्रा में उभर रही है। आधुनिक संत्रास से युक्त युग में सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के कारण अनमेल विवाह बढ़ रहे हैं। फल स्वरूप पुरुष प्रधान व्यवस्था तंत्र में पुरुषों के द्वारा नारियों पर अनेक प्रकार के अन्याय एवं अत्याचार किये जाते हैं। स्त्रियों को जबरन या मजबूरन सारे अन्याय एवं अत्याचार झेलने पड़ते हैं। आधुनिक आपा-धापी के इस यांत्रिक युग में पति-पत्नी जो परिवार के आधार स्तम्भ हैं, के सम्बन्धों में दरार पड़ गयी है। जिसने अनेक मुसिबतों को तो जन्म दिया है, साथ ही साथ घर-परिवार की नींव हिला दी है। पति-पत्नी का सम्बन्ध बड़ा ही नाजुक होता है। जिसमें प्रेम एवं समझ होनी चाहिए, एक-दूसरे को माफ करने की उदारता होनी चाहिए। पति-पत्नी में परस्पर प्रेम और सहयोग की भावना होती है तभी दाम्पत्य संबंध मधुर एवं पारिवारिक जीवन सुखी बनता है। यदि पति किसी कारणवश पत्नी का त्याग करता है, या पत्नी खुद पति से अलग हो जाती है, तब ऐसी परित्यक्त नारी को समाज में काफी कठिनाइयों का सामना करके जीना पड़ता है। वर्तमान में परित्यक्ता नारी की समस्या गंभीर और उग्र रूप धारण कर रही है। काबराजी कृत 'उत्तर रामायण' में परित्यक्ता नारी सीता की पीड़ा एवं उसकी मनः स्थिति का चित्रण किया गया है। रामने राजधर्म के आगे पत्नी को गौण समझकर उसका परित्याग किया। हालांकि सीता ने राम की द्विधा को समझकर स्वयं दोहद की इच्छा व्यक्त की है। किन्तु परित्यक्ता सीता की मनःस्थिति बहुत ही गंभीर हो जाती है। आसन्न प्रसवा अवस्था में किया गया परित्याग उसके लिए असह्य है। धरती को धारण करनेवाली धैर्यशील होने के कारण वह सब कुछ सह लेती है और पति को संकटों एवं द्विधा से मुक्ति दिलाती है। सीता की जगह अन्य कोई नारी होती तो कभी की टूट चूकी होती। परित्यक्ता के लिए बच्चों की परवरिश करना, घर का गुजारा करना, सामाजिक जिम्मेदारियों को निभाना बहुत मुश्किल काम है। बच्चों के न होते हुए भी परित्यक्ता नारी को अकेले जीना कोई आसान बात नहीं है। 'उत्तर रामायण' का धोबी रजक भी अपनी पत्नी पर शंका व्यक्त कर उसे घर से निकाल देता है। परित्यक्ता धोबीन अपने चारित्र्य का प्रमाण देने का लाख प्रयत्न करती है, किन्तु रजक उस से मस नहीं होता है। फलतः मजबूरन धोबीन को राम की शरण में जाना पड़ता है। इसी धोबी के कहने पर ही राम ने सीता का परित्याग किया था। अतः भारत जैसे पुरुष प्रधान देश में परित्यक्ता नारी की समस्या अत्यंत विकट बन गई है।

## 7.3 समाधान :

काबराजी ने अपने काव्यों में केवल उपर्युक्त समस्याओं का ही अंकन नहीं किया है, वरन् उसका सम्यक् समाधान भी प्रस्तुत किया है। वे कवि होने के साथ-साथ मानव मन के कुशल चित्ते भी हैं। भारतीय संस्कृति के प्रति अटूट आस्था रखनेवाले काबराजीने हमारी संस्कृति की रक्षा करते हुए मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत किया है। उन्होंने नारी की स्वच्छंद मनोवृत्ति पर व्यंग्य किया है और नारी के प्रति नूतन द्रष्टिकोण प्रस्तुत किया है। काबराजी एक ऐसे स्वस्थ समाज की स्थापना करना चाहते हैं जिससे पारिवारिक जीवन सुमधुर बन सके और नारी को रूढ़िवादी बंधनों से मुक्ति मिल सके। इस उद्देश्य से कवि ने अपने काव्यों में नारी विषयक समस्याओं पर विचार किया है, साथ ही साथ उनके समाधान पर भी विचार किया है। फिर भी कुछ ऐसी बातें भी हैं जिनके द्वारा नारी विषयक समस्याओं का समाधान सरलता से हो सकता है। उन्होंने अपनी नवीन मान्यताओं के आधार पर उनका समाधान करने का सफल प्रयास किया है। जो निम्न प्रकार हैं —

### 7.3.1 नारी और शिक्षा :

परिवर्तन के इस दौर में दिन-प्रतिदिन शिक्षा की आवश्यकता बढ़ रही है। शिक्षा प्राप्त करके आदमी जीवन में कठिन से कठिन परीक्षा को भी बड़ी सफलता से पार कर सकता है। खास तौर पर नारी जागरण की इस सदी में नारी शिक्षा पर अत्याधिक बल दिया जा रहा है। भारतीय समाज में वैदिक काल से नारी शिक्षा का प्रचलन था। मैत्रेयी, गार्गी, गौतमी, अनसूया आदि महान विदूषियाँ थी। धीरे-धीरे नारी शिक्षा का महत्व कम होता गया। वर्ण व्यवस्था, जाति प्रथा आदि के जड़ बंधनों के कारण नारी के लिए शिक्षा के द्वार बन्द हो गए। उनका कार्यक्षेत्र घर की चार दीवारों के भीतर सिमटकर रह गया। यहाँ तक कि खुद नारी ने ही यह स्वीकार कर लिया कि पढ़ लिखकर वह अपने कर्तव्यों एवं दायित्वों से च्युत हो जाएगी। अतः नारी को शिक्षा देना अनावश्यक माना गया। अंग्रेजों के आगमन से देश में शिक्षा का प्रसार आरम्भ हुआ। धीरे-धीरे नारी आंदोलनों एवं स्वामी दयानंद सरस्वती, राजा राममोहनराय, गांधीजी आदि के प्रयत्नों के फल स्वरूप नारियों की स्थिति में सुधार आया। बीसवीं शताब्दि में हुई राष्ट्रीय जागृति ने नारी की स्थिति में आमूल परिवर्तन ला दिया। जिसकी विस्तृत चर्चा मैं अगले अध्यायों में कर चुकी हूँ। नारी शिक्षा को उत्तेजन मिला और नारी में भी यह भावना जाग्रत हुई कि उसे अपने विकास के लिए आत्मनिर्भर होना अत्यंत आवश्यक

है। शिक्षा की प्रगति से नारी ने अपने अधिकारों को जान लिया। अपनी शक्ति की पहचान उसे हो गई और प्राचीन रूढ़ियाँ एवं जड़ मान्यताओं में परिवर्तन कर उन्होंने आर्थिक पराधीनता के खिलाफ संघर्ष करना आरम्भ किया।

“आज तक भारतीय परंपरा अनुसार नारी आर्थिक तथा सामाजिक रूप से भी पुरुषों पर आश्रित थी। उसका कर्तव्य केवल इतना ही था कि पति के जीवन के साथ तादात्म्य होकर उसके प्रत्येक कार्य में सहयोग करके उसे सुख देना।..... पुरुषों के भोग-विलास के साधन के रूप में ही उसे देखा गया था। परंतु शिक्षा प्राप्त करके जाग्रत हुई नारी, अब केवल रमणी या भार्या नहीं रही, वरन् घर के बाहर भी समाज का एक विशेष अंग तथा महत्वपूर्ण नागरिक है। अतः उसका कर्तव्य भी अनेकाकार हो गया।”<sup>16</sup> शिक्षा प्राप्त करके उसके ज्ञान-चक्षु खुल गये हैं और वह आज इतनी सक्षम हो गयी है कि अब वह पुरुषों की मानसिकता भी बदल सकती है कि अब वह अबला नहीं रही, सबल बन गई है। हर वह कार्य अब वह कर सकती है, जिसके योग्य आज तक उसे नहीं माना गया था। बदलती परिस्थिति के साथ-साथ आज गाँवों में भी स्त्री शिक्षा का प्रचार-प्रसार हो रहा है। ग्रामीण युवतियाँ भी आज पुरुष के समकक्ष नौकरियाँ करने लगी हैं।

डॉ. किशोर काबरा आधुनिक युग के सक्षम साहित्यकार हैं। उन्होंने नारी शिक्षा पर अधिक बल दिया है। उनका मानना है कि नारी-शिक्षा से नारी का विकास होगा और अपनी समस्याएँ खुद हल कर सकेगी। क्योंकि नारी ही परिवार की निर्माता होती है। वहीं परिवार, समाज एवं राष्ट्र की उन्नति की पोषिका है। शिक्षित होकर ही वह आदर्श पुत्री, आदर्श पत्नी, आदर्श माता, आदर्श बहन एवं देश की रक्षिका बन सकती है। आदर्श व्यक्तित्व के निर्माण का कार्य शिक्षा द्वारा ही सम्भव होता है। समाज रूपी इमारत की नींव परिवार है। आदर्श परिवार के निर्माण के लिए स्त्री का शिक्षित, विकसित एवं सुसंस्कृत होना आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। कवि के मतानुसार परिवार में माता-पिता द्वारा लड़कियों को स्वस्थ यौन-शिक्षा भी देनी चाहिए, ताकि उसे यौन विषयक समस्याओं से बचाया जा सके।

अतः हम कह सकते हैं कि परिवार और राष्ट्र के चरित्र निर्माण एवं सुखद भविष्य की जिम्मेदारी एक द्रष्टि से नारी के कंधों पर है, इसीलिए नारी का शिक्षित होना अत्यावश्यक है। यों भी शिक्षित होने से वह आत्मनिर्भर हो सकेगी और अपनी अस्मिता एवं अस्तित्व के प्रति सचेत भी हो सकेगी। जीवन के महत्वपूर्ण फैसलें भी वह ले सकेगी। शिक्षित नारी को संस्कारी एवं सुयोग्य वर एवं घर मिलने की भी अधिक संभावना रहती है। साथ ही साथ जीवन में आवश्यकता आने पर वह



स्वावलंबी भी बन सकती है और स्त्री और पुरुष दोनों के शिक्षित होने से दाम्पत्य जीवन भी मधुर बनता है।

आज की नवयुवतियों का जीवन के महत्वपूर्ण पहलुओं के प्रति द्रष्टिकोण बदलता जा रहा है। पुरुष द्वारा किये गये अन्याय एवं अत्याचार को शिक्षित स्त्रियाँ मौन-मूक नहीं सह लेगी। वह अन्याय का प्रतिकार भी सकती है। आवश्यकता पड़ने पर वह पति से अलग रहकर भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाकर स्वाभिमान युक्त जीवन जी सकती है। शिक्षा से आज उसकी आत्मचेतना जाग्रत हो गई है। उसने अनुभव किया कि जिसके साथ उसे शादी करनी है, पूरी जिन्दगी बितानी है, उसे चुनने का अधिकार उसे होना चाहिए। उसकी द्रष्टि से अब विवाह के सम्बन्ध में उसकी राय लेना आवश्यक है। शिक्षा से संस्कृति का भी गठन होता है। भारतीय स्त्री के परंपरागत महान गुण-सेवा, त्याग, समर्पण, सहानुभूति, सहनशीलता, भक्ति, सौजन्य आदि को निखारने का काम शिक्षा से हो सकता है। महिलाओं की जागृति, उत्थान, अस्मिता की रक्षा आदि का एक बड़ा हल साक्षरता ही है।

### 7.3.2 नारी स्वातंत्र्य :

स्वतंत्रता प्रत्येक भारतीय नागरिक का मूलभूत अधिकार है। स्वतंत्रता के अंतर्गत वाणी स्वातंत्र्य, व्यक्ति स्वातंत्र्य एवं विचारों की अभिव्यक्ति का स्वातंत्र्य निहित है। भारतीय संविधान के अनुसार चाहे स्त्री हो या पुरुष सभी को ये अधिकार प्रदान किया गया है, किन्तु यह सोचनीय तथ्य है कि पुरुष प्रधान भारतीय समाज में क्या वास्तव में नारी को ये हक दिये गये हैं? क्या नारी पूर्णतः स्वाधीन है? क्या नारी के मनोभावों को पूरी तरह से अभिव्यक्त करने के अवसर उसे प्रदान किये जाते हैं? इन सारे प्रश्नों का उत्तर होगा ना। आज भी पुरुषों ने अपने आधिपत्य को कायम रखने के लिए कई प्रकार के बन्धन नारी पर थोप रखे हैं।

काबराजी भारतीय नारी के प्रति संपूर्ण विश्वास एवं सहानुभूति रखते हैं। वे नारी स्वातंत्र्य के पक्षधर हैं। उनके मतानुसार नारी स्वातंत्र्य यानि कि नारी के स्वतंत्र अस्तित्व एवं व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास। कवि का कहना है कि नारी भी समाज एवं परिवार का महत्वपूर्ण अंग है। अतः उसे भी स्वतंत्रता का पूर्णतः अधिकार है। वे चाहते हैं कि नारी के प्रति उदार, आदरपूर्ण एवं सुचिन्तामय द्रष्टिकोण होना चाहिए, जो स्वस्थ, संयत और मानवीय हो। उसने मत से नारी केवल पिता, पति एवं सास की इच्छा की अधिन, एक कठपूतली बनकर न रह जाए। वह अपनी अस्मिता एवं अधिकारों



को पहचाने और अपने विचारों को खुलकर प्रकट करें। वह दंभी शासकों एवं पदाधिकारियों के दुराग्रहों पाखंडों एवं षड्यंत्रों के खिलाफ चुनौती दें। कवि के मुताबिक नारी स्वेच्छा से अपने व्यक्तित्व निर्माण की ओर अग्रसर हो सके इतनी स्वतंत्रता उसे मिलनी चाहिए। यह उल्लेखनीय बात है कि कवि केवल बाह्य आवरण एवं फैशन करने को ही नारी स्वातंत्र्य नहीं मानते हैं, वरन् कवि नारी की आंतरिक एवं मानसिक स्वतंत्रता को सही स्वतंत्रता मानते हैं।

आज नारी को शैक्षणिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक स्वतंत्रता के साथ-साथ कानूनी अधिकार भी दिये गए हैं। इसके फल स्वरूप आज की नारी विवश या मजबूर नहीं रही, उसमें हिम्मत और आत्म विश्वास के साथ खुद पर भरोसा है कि वह आज विवशता को भी उखाड़ फेंक सकती है। आज की नारी पुत्री, बहन, पत्नी, प्रेमिका, माँ आदि किसी भी बंधनों से पूर्व एक नारी है। जिसे अपने बारे में कुछ फैसला लेने का पूर्ण और प्रथम अधिकार है। न वह पिता के लिए बोझ है, न पति के लिए दासी। यदि वह चाहै तो अपनी पसंद के लड़के से शादी भी कर सकती है, उसे तलाक भी दे सकती है और चाहे तो वह अविवाहित रहकर भी जीवन व्यतीत कर सकती है। फिर भी यह कहना असंगत न होगा कि सरकारी कार्यक्रमों या सामाजिक कार्यकरों द्वारा चाहे भले ही नारी स्वातंत्र्य या समानता के कार्य किये जा रहे हो, किन्तु केवल उनके प्रयत्न मात्र से पूर्णतः नारी स्वतंत्र नहीं हो पायेगी। जब तक नारी खुद अपने अधिकारों, दायित्वों एवं कर्तव्यों के प्रति जागरूक नहीं होगी, तब तक खरे अर्थ में नारी स्वतंत्र नहीं हो सकेगी।

इस प्रकार कवि ने अपने काव्यों में नारी जीवन की अनेक समस्याओं का चित्रण कर, यह साबित किया है कि शिक्षा, स्वतंत्रता एवं द्रढ़ आत्मविश्वास से ही नारी सच्चे अर्थों में मुक्ति पा सकेगी।

### 7.3.3 नारी और आर्थिक स्वावलंबन :

नारी की सबसे बड़ी विवशता उसकी आर्थिक पराधीनता है। पुरुष प्रधान भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही अर्थ व्यवस्था का सूत्रधार पुरुष ही रहा है। नारी को अनेक प्रकार के बन्धनों में नियंत्रित करके घर को ही उसका कार्यक्षेत्र बना दिया गया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद मध्यम वर्ग में आर्थिक संकट के कारण अधिकाधिक स्त्रियों को घर से बाहर निकलने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इसके कारण इनके लिए अधिक समानाधिकार के द्वार खुल गए और ये अपने स्वतंत्र अस्तित्व को बनाने के लिए आर्थिक उपार्जन भी करने लगी। नारी-शिक्षा के विकास और समाज

की बदलती मान्यताओं के कारण नारी घर से बाहर समाज में अपना स्थान सुनिश्चित कर पायी। प्रवर्तमान समय में नारी वैचारिक धरातल पर चेतन हो गयी और आत्मनिर्भर होकर पुरुष के कंधे से कंधा मिलाने लगी है। आज विश्व के प्रत्येक क्षेत्र में नारियाँ पुरुषों के समान ही सुविधाएँ न मिलने पर भी होड़ में उनसे आगे निकल रही है। वे उनसे शारीरिक, मानसिक या बौद्धिक किसी भी द्रष्टि से पीछे नहीं है। आज वह प्रिंसिपल, शिक्षिका, डॉक्टर, नर्स, चित्रकारी, नृत्य, संगीत, सजावट, दर्जी का काम, टेलीफोन गर्ल, प्रेस रिपोर्टर, टिकट चेकर, कंडक्टर, टाइपिस्ट, एयर होस्टेस, रिसैप्शनिस्ट, लेखिका, सम्पादिका, फोटोग्राफर, इन्स्योरन्स एजेंट आदि रूप में कार्य कर रही है।

कवि का मानना है कि यदि स्त्रियों को काम करने का अवसर दिया जाए तो वह आर्थिक द्रष्टि से परतन्त्र नहीं रहेगी। आर्थिक रूप से स्वतंत्र नारी अपने व्यक्तित्व का स्वतंत्र विकास कर सकती है। आर्थिक रूप से स्वावलम्बी नारी पुरुष की दासता को नहीं स्वीकारेगी और पुरुष के हाथ का खिलौना नहीं बनेगी। कवि का मानना है कि स्त्रियों को अपने व्यक्तित्व का विकास करना है तो सबसे पहले उसे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना पड़ेगा, उसे अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ेगा। वरना, दो वक्त की रोटी और कपड़े के बदले में पुरुष उनका शोषण ही करता रहेगा। यदि उन्हें पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त करने हैं, पुरुषों की गुलामी का शिकार नहीं होना है, तो उसे अपनी आजीविका स्वयं कमाने होगी। कृष्णाजी भी इसी बात का समर्थन करती है कि - “स्त्री शिक्षित हो, आत्मनिर्भर हो, तभी वह अपने अधिकार के प्रति सचेत होगी। वरना उसे क्या पाना है और क्या नहीं, यह वह स्वयं ही नहीं जान पायेगी — जैसा कि आज की अधिकतर स्त्रियाँ नहीं जानती।”<sup>17</sup>

नारी का आर्थिक रूप से स्वावलम्बी होना मात्र उनके आर्थिक संकट की वजह से आवश्यक नहीं है, बल्कि अपने अस्तित्व के लिए भी यह अत्यावश्यक हो गया है। इसका मतलब यह कि मात्र आवश्यकता के लिए ही सभी नारियाँ नौकरी या व्यवसाय नहीं करती, बल्कि अपने को आत्मनिर्भर बनाने के लिए और अधिक सम्मानजनक बनाने के लिए भी वे नौकरी करती है। किन्तु इसका तात्पर्य यह कतई नहीं है कि आर्थिक द्रष्टि से आत्मनिर्भरता ही नारी की सभी समस्याओं का समाधान है, किन्तु इसमें संदेह नहीं है कि आर्थिक आत्मनिर्भरता नारी को वह धरातल दे सकता है, जिस पर वह मजबूती से खड़ी रहकर अपनी मुक्ति की लड़ाई लड़ सकती है और अपने संघर्ष को मजबूत बना सकती है।

अतः हम कह सकते हैं कि कवि ने नारी की आर्थिक आत्मनिर्भरता पर अधिक बल दिया है क्योंकि नारी के आर्थिक आत्मनिर्भरता के कारण स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों में भी परिवर्तन आता है

और नारी को सम्मान की प्राप्ति भी होती है।

### 7.3.4 नारी और राजनीति :

राजनीति के क्षेत्र में नारी का पदार्पण बहुत आवश्यक है। स्वातंत्र्य संग्राम में भारतीय नारियों ने जिस साहस, शौर्य एवं दृढ़ता का परिचय कराया था, वह तारिफें काबिल है। उन नारियों के सामर्थ्य को देखकर जन समुदाय को दाँतों तले ज़ँगली दबानी पड़ी थी। आजादी के बाद भी अनेक महिलाओं ने राजनैतिक कुशलता, कार्यदक्षता व प्रशासनिक विवेक से यह सिद्ध कर दिया कि वे राजनीति के क्षेत्र में भी पुरुषों से किसी भी दृष्टि से कम नहीं हैं। राजनीति के क्षेत्र में स्व. श्रीमती इंदिरा गांधी ने अपनी अभूतपूर्व क्षमता का परिचय दिया था। सरोजिनी नायडू, कस्तूरबा गांधी, अरूणा आसफ अली, उमा भारती जैसी कई प्रतिनिधि नारियों ने अपने अदम्य साहस, निर्भीकता एवं कर्तव्य परायणता का परिचय देकर राजनैतिक व्यक्तित्व की छाप जनता पर छोड़ी है। इन्हीं से प्रेरणा लेकर अनेक महिलायें राजनीति के क्षेत्र में प्रविष्ट हो रही हैं। अभी-अभी की चौंका देने वाली घटना तो यह है कि राष्ट्रपति के सर्वोत्तम पद पर एक महिला के होने की किसी ने कल्पना तक न की होगी, पर प्रतिभा पाटिल जैसी काबिल नारी ने यह भी कर दिखाया कि किसी भी क्षेत्र में नारी अपनी प्रतिभा को प्रकट कर सकती है। आधुनिक नारी की शिक्षा, स्वावलंबन व आत्मविश्वास ने उसे इतना सक्षम बना दिया है कि वह समाज में अपना स्थान सुनिश्चित कर सकती है।

यों देखा जाये तो राजनैतिक माहौल में कुछ गिनी-चुनी नारियों ने भले ही प्रगति कर दिखायी हो, किन्तु सामान्यतया राजकीय दाव-पेचों के द्वारा आज भी वहाँ नारी का केवल मोहरे के रूप में ही प्रयोग होता है। आज भले ही उसे मताधिकार मिला हो, चाहे स्त्रियों के लिए अनामत बैठकें रखी गई हो, किन्तु क्या स्त्रियाँ इसका उपयोग करती हैं? क्या गाँव की प्रत्येक अनपढ़ नारियाँ सही अर्थ में मतदान करती हैं? नहीं, आज भी महिलाएँ अपने मताधिकार का उचित प्रयोग नहीं करती हैं। राजनैतिक दलों के नेता चुनाव जीतने के लिए ऐसी महिलाओं की अधिक से अधिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेते हैं, जिनका जन साधारण को आभास तक नहीं मिलता। आज भी कई महिलाएँ ऐसी हैं, जो अपने राजनैतिक दायित्वों को नहीं समझती हैं। ये मत देने के लिए तो जाती हैं, किन्तु पिता, पति या अन्य लोगों से चर्चा कर, उनके द्वारा निर्दिष्ट उम्मीदवार को मत देती हैं। या तो कई औरतें ऐसी हैं, जो मत पत्रक पर यहाँ-वहाँ कहीं भी, सोचे-समझे बिना कोई भी उम्मीदवार को अपना बहुमूल्य मत दे देती हैं। इसका फायदा राजनैतिक दलों के प्रचारक आज तक उठाते आ रहे हैं।

कवि का मानना है कि जब तक नारियाँ राजनीति से बेखबर रहेगी तब तक पुरुष वर्ग उसका फायदा लेता रहेगा और वे भ्रष्ट राज्यतंत्र एवं कूट राजनीति की दुष्ट एवं गलित नीति का शिकार होती रहेगी। इसीलिए काबराजी चाहते हैं कि नारी केवल अपने बनाव-शृंगार में ही व्यस्त न रहकर वह सामाजिक व आर्थिक क्षेत्र के साथ-साथ राजनैतिक क्षेत्र में भी हिस्सेदारी निभाने को तत्पर रहे। क्योंकि राजनैतिक प्रगति के बिना नारी की संपूर्ण रूप से उन्नति नहीं हो सकेगी। कवि का द्रढ़ रूप से मानना है कि नारी के राजनैतिक क्षेत्र में सक्रिय हिस्सा लेने की वजह से वह भ्रष्ट राज्यतंत्र की कूट नीतियाँ एवं दावपेचों की नीति समझ जाएगी और उसके अनुकूल उसे अपने जीवन का ताल-मेल बिठाने में सरलता रहेगी।

लोकतंत्र को सुगठित, शक्तिशाली, विकसित एवं सुदृढ़ बनाने के लिए राजनैतिक दलों को भी महिला प्रत्याशियों को अधिकाधिक उम्मीदवार खड़े करना चाहिए। काबराजी को विश्वास है कि जागरूक, प्रबुद्ध, चिन्तनशील एवं परिस्थिति की पकड़ रखनेवाली महिलाएँ राजनीति में व्याप्त षड्यंत्रों, अपराधों, आदर्शहीनता आदि की दलदल से बाहर निकाल फेंकने में अवश्य सफल होगी।

अतः कहा जा सकता है कि नारियों की उन्नति एवं कल्याण के लिए उनकी शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक प्रगति के साथ-साथ राजनैतिक प्रगति भी अत्यंत आवश्यक है।

### 7.3.5 स्त्री का संयमित जीवन :

यह सच है कि आधुनिक युग स्त्री स्वातंत्र्य का युग है। किन्तु स्त्री स्वातंत्र्य के नाम पर कई महिलाएँ स्वच्छन्दता से विचरण करने लगी हैं। पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति की चकाचौंध से आकृष्ट हो वह अपने जीवन को उसीके साँचे में ढालने लगी हैं और भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को वह भूलने लगी हैं। स्त्री-पुरुष समानता को प्रश्रय देनेवाली नारी मुक्ति की भावना धीरे-धीरे स्त्री-पुरुष प्रति द्वन्द्विता में बदलती जा रही है। नारी मुक्ति के नाम पर स्त्रियाँ घर को कैदखाना मानने लगी हैं। स्त्री और पुरुष दोनों समाज जीवन के अभिन्न अंग हैं, किन्तु पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के फल स्वरूप कई नारियाँ पुरुषों को अपना शत्रु मानने लगी हैं। मातृत्व से ही नारी परिपूर्ण होती है, किन्तु आज नारी मातृत्व को बोझ समझने लगी है। आज ये परिवार, समाज एवं राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य को भूलकर अपने अधिकारों को प्राप्त करने में ही लगी रहती है। आधुनिक बनने या दिखने की होड़ में वह अपनी संस्कृति की पहचान खोती जा रही है। डॉ. मीनाजी ने भी ऐसी नारियों की ओर इंगित करके बताया है कि “कुछ नारियाँ पुरुष से हटकर किसी के भी नियंत्रण

में रहकर अपना जीवन व्यतीत करना नहीं चाहती। वे नारी सुलभ मधुर वृत्तियों से वंचित ही नहीं हो जाती, अपितु पुरुष की तरह स्वच्छन्दता का उपभोग कर अपने मधुमय जीवन को विषमय बना लेती है।”<sup>18</sup> परिणामतः नारी विषयक समस्याएँ कम होने के बजाय बढ़ रही है।

डॉ. किशोर काबरा भारतीय संस्कृति के प्रति बड़े आस्थावान है। उन्होंने अपने काव्यों को जरा भी कम नहीं होने दिया, वरन् उसके महत्व को और भी बढ़ा दिया है। उसे भारतीय नारी की स्वतंत्रता के नाम पर स्वच्छन्दता जरा भी अभीष्ट नहीं है। उनके मतानुसार नारी स्वतंत्रता के नाम पर पुरुष विरोधी द्रष्टिकोण स्वस्थ नहीं कहलाता। सड़ीगली मान्यताओं पर रुग्ण मानसिकता से मुक्ति ही नारी मुक्ति है, न कि पुरुष के व्यवहार की अंधी नकल या पुरुष जाति से विद्रोह। कवि नारी स्वातंत्र्य के हिमायती है, किन्तु उनका कहना है कि नारी भी अपनी स्वतंत्रता का ठीक अर्थ समझ लें और अपने परिवार, समाज एवं राष्ट्र को स्वस्थ एवं सुंदर बनाये। स्वतंत्र रहकर भी वे सेवा, त्याग, समर्पण, करूणा, सहानुभूति, सहनशीलता जैसे भारतीय संस्कृति के उच्चतम एवं आदर्श गुणों को न भूलें। उसे पश्चिम की आत्मघाती प्रवृत्तियों का अन्धानुकरण कर अपने पैर नहीं काटने है, बल्कि अपनी संस्कृति के अनुकूल पैर मजबूत बनाने हैं, ताकि सहयात्रा दुःखद न हो। कवि का कहना है कि “नारी बड़ी मुँह फट होती है, जब चाहे अपमान कर देती है। स्त्री वाणी पर नियंत्रण नहीं रख पाती, उसका परिणाम उसे तो भुगतना ही पड़ता है, साथ ही साथ पूरे विश्व का भी भुगतना पड़ता है। नारी चाहे तो परिवार तोड़ भी सकती है और पाँच पतियों से जुड़कर परिवार बढ़ा भी सकती है। सीता-सी त्याग की मिशाल भी बन सकती है और अम्बा-सी विद्रोह की भभकती ज्वाला भी। स्त्री या तो वर लेती है, या बैर। किन्तु पुरुष से बैर लेते समय उसे पुरुष बनना पड़ता है, लेकिन वह पुरुष नहीं बन पाती और वह शिखण्डी बनकर रह जाती है, यही स्त्री की नियती है।”<sup>19</sup> यानि कि कवि का यह द्रढ़ रूप से मानना है कि स्त्री न ही अधिक स्वच्छन्द हो और न ही चार दीवारों के बंधनों के बीच कैद। स्त्री का संयमित जीवन ही समाज एवं विश्व के लिए श्रेयष्कर है। कवि ने नारी को धरती को धारण करनेवाली, संसार का पालन-पोषण करनेवाली और प्रकृति की तरह सबकी रक्षा करनेवाली बताया है। सीता के माध्यम से कवि ने स्त्री के सामर्थ्य का गुणगान कर, शक्ति स्वरूप राम को झुकाया है। नारी श्रम एवं सामर्थ्य का अजर अश्रु भण्डार है, किन्तु उसके संयमित जीवन से ही समाज की समतुल्य बनी रह सकती है। वैसे भी किसी देश के अस्तित्व की पहचान उसकी संस्कृति होती है। भारतीय संस्कृति भारत की अमूल्य धाती है। अतः हमें अपनी संस्कृति को नहीं भूलनी चाहिए।

अंततः हम कह सकते हैं कि भारतीय नारी प्रेम, त्याग, सेवा, सहानुभूति, संवेदनशीलता, मर्यादा, शील, समर्पण, दया, ममता, करुणा जैसे उच्चतम गुणों के द्वारा अपनी संस्कृति की रक्षा कर सकती है। अपने अधिकारों को भुगतने के साथ-साथ कर्तव्य का निर्वाह भी करेगी तो विश्व संस्कृति में भारतीय संस्कृति का नाम अमर ही रहेगा।

### 7.3.6 नारी के प्रति आस्था :

प्राचीन काल से लेकर आज तक नारी हमारे देश के विकास और प्रगति में अपना बहुमूल्य योगदान देती रही है। शिक्षा हो या संस्कृति, विज्ञान हो या कला, व्यवसाय हो या कृषि भारतीय नारियों ने उसे समुन्नत करने तथा उन्नति के शिखर तक पहुँचाने में अपनी सराहनीय भूमिका निभायी है। तिवारीजी एवं शुक्लाजी ने भी नारी को अक्षय भण्डार कह, उसकी सराहना करते हुए कहा है कि — “नारी में पवन सी चंचलता, हिमालय सी द्रढ़ता और समुद्र सी गंभीरता होती है।”<sup>20</sup> यानि कि नारी अनंत गुणों की आगार हैं। वह पुरुषों की प्रेरणा भी है और उसकी जन्मदात्री माँ भी। वह प्रेम एवं सहिष्णुता की साक्षात् प्रतिमा है। उसका हृदय इतना विशाल है कि वह अपने दील में समस्त संसार को समा सकती है। किन्तु समय आने पर कभी-कभी वह चंडीका एवं कालिका रूप भी धारण कर सकती है। वर्तमान नारी केवल किसी की पत्नी, पुत्री, माँ या प्रेयसी ही नहीं है, अपितु उसका अपना अलग अस्तित्व भी है। डॉ. काबराजी भारतीय नारी के इन गुणों के प्रति आस्थावान है। उनका कहना है कि पुरुषों को भी नारी के महत्व को समझना चाहिए। नारी की शक्ति को पहचानना चाहिए। उसके प्रत्येक कार्य में पुरुषों को सहयोग देना चाहिए। ताकि आनेवाली पीढ़ी को एक सुंदर एवं स्वस्थ परिवार और समाज मिल सके।

### 7.3.7 नारी सम्मान :

नारी और पुरुष दोनों का इस सृष्टि में समान महत्व है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों के सहयोग से ही जीवन को पूर्णता प्राप्त होती है। फिर भी नारी के प्रति भेदभाव की भावना देखने को मिलती है। नारी ने ही पुरुष को जन्म दिया है, उसका पालन-पोषण किया है, उसके हर कार्य में सहयोग दिया है। उसने अपने उत्तर दायित्व को बड़ी दक्षता से निभाया है। फिर भी उसके साथ कठोरता पूर्ण आचरण क्यों किया जाए ?

पुरुष अपने दंभ व अहम् के कारण नारी को तुच्छ समझने लगता है। नारी की शक्ति एवं सामर्थ्य को नहीं स्वीकारता है, फलतः कुण्ठाग्रस्त बनकर रह जाता है। नारी की भावनाओं की जो

कदर नहीं करता है, उसे बाद में पछताना ही पड़ता है। यदि पुरुष नारी का सम्मान करेगा तो नारी भी उस पर अपना सब कुछ न्यौच्छावर करके अपने दायित्वों को बखुबी निभायेगी। यदि वह नारी की कोमलता, सहनशीलता, करूणा, कर्मठता आदि की कद्र करेगा तो नारी भी त्याग एवं बलिदान देने में पीछे नहीं हटेगी। प्रवर्तमान समय में नारी जिन समस्याओं से घीरी हुई है उसमें से उसे निकालने के लिए जरूरी है, पुरुष की नारी विषयक मानसिकता में बदलाव लाने की। आधुनिक लेखिका चित्र मुद्गल का भी यही कहना है कि “जब तक पुरुषों की मानसिकता में बदलाव नहीं आएगा कि आधी आबादी सिर्फ चूल्हे-चौके तक सीमित रहने के लिए नहीं है, सिर्फ बच्चे जनने के लिए नहीं है, केवल गहने लादकर उसकी प्रतिष्ठा का प्रदर्शन करने के लिए नहीं है... तब तक पूरी तरह से हमारी सामाजिक व्यवस्था में बदलाव नहीं आ सकता।”<sup>21</sup> जिस समाज में नारी का सम्मान होता होगा, वही समाज या देश उन्नति के शिखर तक अनवरूद्ध पहुँच सकेगा। चाहे समाज कितना ही परिवर्तित हो जाये किन्तु हमारा राष्ट्र धर्म संस्कृति के क्षेत्र में नारी को सम्माननीय पक्ष देने का पक्षधर रहा है। इसीलिए ही हमारी संस्कृति में - ‘यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः’ कहा गया था।

अतः कवि का कहना है कि नारी ही संसार की निर्माता है। वही बच्चों में अच्छे संस्कारों का सिंचन कर, स्वस्थ समाज का निर्माण करती है। अतः पुरुषों को नारी का स्वीका करना चाहिए, सम्मान करना चाहिए।

## 7.4 उपसंहार :

अंततः समग्र रूप से हम कह सकते हैं कि केवल पश्चिमी संस्कृति का अंधानुकरण करके हम प्रगति नहीं कर सकते हैं, बिना सोचे समझे पाश्चात्य संस्कृति की ओर अंधी दोड़ लगाने से तो हमारी समस्याएँ और भी बढ़ जाती हैं। यदि सुंदर, स्वस्थ और सुदृढ़ समाज का निर्माण करना है, तो हमारी भारतीय संस्कृति के उच्चतम आदर्शों को साथ रखकर, उसकी गरिमा एवं सातत्य बना रहे ऐसा उचित आचरण करने से ही हम विश्व संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति का नाम अमर रख सकते हैं। कवि को संपूर्णतया विश्वास है कि हम भारतीय संस्कृति की गरिमा को कम नहीं होने देंगे, किन्तु उसकी आन, बान और शान को और भी बढ़ायेंगे।

## 7.5 संदर्भ - सूची

- 1 रामदरश मिश्र के उपन्यासों में गृह परिवार, ले. प्रो. यशवंत गोस्वामी, पृ. - 90
- 2 हिन्दी उपन्यासों में पारिवारिक संबंध, ले. डॉ. उषामंत्री, पृ. - 6
- 3 उत्तर महाभारत, ले. डॉ. किशोर काबरा, द्वितीय सर्ग, पृ. - 61
- 4 वही वही वही वही
- 5 परिताप के पाँच क्षण, ले. डॉ. किशोर काबरा, तीसरा क्षण, पृ. - 68
- 6 नारी चेतना और कृष्णा सोबती के उपन्यास, ले. डॉ. गीता सोलंकी, पृ. - 155/156
- 7 परिताप के पाँच क्षण, ले. डॉ. किशोर काबरा, तृतीय क्षण, पृ. - 58
- 8 उत्तर रामायण, ले. डॉ. किशोर काबरा, द्वितीय सर्ग, पृ. - 119/120
- 9 उत्तर महाभारत, ले. डॉ. किशोर काबरा, द्वितीय सर्ग, पृ. - 82
- 10 वही वही वही, पृ. - 55/56/57
- 11 भारतीय नारी अस्मिता और अधिकार, ले. आशारानी व्होरा, पृ. - 19
- 12 परिताप के पाँच क्षण, ले. डॉ. किशोर काबरा, तीसरा क्षण, पृ. - 67
- 13 वही, वही, वही, पृ. - 70
- 14 नरो वा कुंजरो वा, ले. डॉ. किशोर काबरा, द्वितीय सर्ग, पृ. - 40
- 15 उत्तर भागवत, ले. डॉ. किशोर काबरा, षष्ठ स्कन्ध, पृ. - 231
- 16 हिन्दी के सामाजिक उपन्यासों में नारी, ले. डॉ. रेवा कुलकर्णी, पृ. - 138
- 17 नारी चेतना और कृष्णा सोबती के उपन्यास, ले. डॉ. गीता सोलंकी, पृ. - 152
- 18 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में नारी की दशा और दिशा, ले. डॉ. मीना पंड्या, पृ. - 30
- 19 कवि से साक्षात्कार ।
- 20 भारतीय नारी : वर्तमान समस्याएँ और भावी समाधान, ले. डॉ. आर. पी. तिवारी एवं डॉ. डी. पी. शुक्ला, पृ. - 138
- 21 नया ज्ञानोदय, जुलाई - 2005 चित्रा मुद्गल का लेख, पृ. - 48



उपसंहार

## उपसंहार :

‘डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्य के नारी पात्र’ नामक विषय पर पिछले सात अध्यायों में विचार कर चुकने के बाद निष्कर्ष के रूप में उनका पुनराख्यान संक्षेप में हम प्रस्तुत अध्याय में करेंगे। वैसे प्रत्येक अध्याय के अंत में तत्सम्बन्धी निष्कर्ष दिए गये हैं, इसीलिए यहाँ उन सबकी पुनरावृत्ति न करके केवल सार-तत्त्वों की ओर ही निर्देश किया जा रहा है।

इस प्रबन्ध के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि डॉ. किशोर काबरा आधुनिक युग की सर्वश्रेष्ठ विभूति हैं। वे भारतीय संस्कृति को रूपायित करनेवाले, जागरूक और विकासशील कवि हैं। उनकी सृजन शक्ति अतुलनीय है। उनकी काव्य रूपी गंगा में स्नान कर सहृदयी पाठक गौरवान्वित हो उठते हैं। अपने प्रबन्ध काव्यों के माध्यम से उन्होंने हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति की व्यापकता, महत्ता और विशालता का बोध कराया है। ‘रामायण’, ‘महाभारत’ एवं ‘श्रीमद् भागवत पुराण’ के ऐतिहासिक प्रसंगों को कवि ने अपनी कल्पना के सहारे ऐसे सजीव रूप में हमारे समक्ष रखा है कि आधुनिक संदर्भ में भी वे प्रासंगिक लगते हैं। अपनी कुशाग्र बुद्धि एवं अनुपम काव्य प्रतिभा के कारण काबराजी आधुनिक प्रबन्धकारों में सिरमोर हो गये हैं।

नारी प्रकृति का अनुपम उपहार है। सृष्टि का आधार होने के कारण भारतीय संस्कृति में अनादि काल से ही उसका स्थान पुरुष की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ बताया गया है। ‘सीता-राम’, ‘राधा-कृष्ण’, ‘गौरी-शंकर’, ‘माता-पिता’ आदि शब्द युग्म इस बात की साख भरते हैं। नारी को समाज, संस्कृति और साहित्य का महत्वपूर्ण अंग माना गया है, किन्तु कालान्तर में नारी की स्थिति में परिवर्तन परिलक्षित होता है। प्राचीन काल स्त्रियों की दृष्टि से सुवर्णयुग था। मध्ययुग तक आते-आते वह उपेक्षित हो गई। भोगवादी प्रवृत्ति के कारण नारी पुरुष की भोग्या मात्र बन गई। यहाँ तक कि सन्तों ने इसे साधना मार्ग की बाधक घोषित किया। फलतः समाज में पुरुष नारी को हेय दृष्टि से देखने लगे। किन्तु आधुनिक काल में नारी विकास की ओर अग्रसर होने लगी। नारी प्रतिभा से प्रभावित होकर हिन्दी कवियों ने उसे अपने काव्यों में स्थान दिया। रीतिकाल में नारी कवियों की दृष्टि में एक सस्ता खिलौना मात्र थी, किन्तु आधुनिक हिन्दी कवियों ने नारी को पुनः प्राचीन गौरव प्रदान किया। द्विवेदीयुगीन कवियों ने सामाजिक चेतना के साथ-साथ नारी जागरण का कार्य किया। छायावादी एवं प्रगतिवादी कवियों ने भी नारी उत्थान के लिए प्रयत्न किये। प्रयोगवादी कवियों ने नारी को शारीरिक तृप्ति का साधन मात्र बना लिया। किन्तु नये कवियों ने नारी को उच्च

स्थान दिलाया। सन् '60 के बाद नारी विभिन्न रूपों में व्यंजित होने लगी। सातवें से दशवें दशक के सुअवसर प्रदान किये गये और आज भी नारी चेतना पर बल दिया जा रहा है।

साहित्य मानव मन के भावों को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम है। साहित्यकार युगानुरूप जीवन मूल्यों को समाज के सम्मुख प्रेषित करता है। साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा काव्य भावाभिव्यक्ति को संप्रेषित करने में अधिक सफल रहे हैं। हमारे धर्म प्रधान देश ने सदा धर्मग्रन्थों, पुराणों एवं उपाख्यानों से शिक्षा लेकर उस मार्ग का अनुसरण किया है। अतः आधुनिक युग के कवियों ने भी अपनी बात को गुरुत्तर बताने के लिए अतीत का एक मात्र आश्रय लिया है। क्योंकि अतीत की नींव पर चलकर ही हम उन्नति की ओर अग्रसर हो सकते हैं। आधुनिक कवियों ने अतीत की कथा में नये जीवन संदर्भों की योजना करके उन्हें ज्यादा प्रामाणिक और विश्वसनीय बनाने का प्रयास किया है। प्रबन्धकाव्यों को जिन कवियों ने समृद्ध किया है, उसमें डॉ. किशोर काबरा का महत्वपूर्ण स्थान है। युग की धड़कन को, उसके स्पंदन को शीघ्र अनुभूत करनेवाले काबराजीने यह अनुभव कर लिया है कि वर्तमान में दरकती हुई भारतीय अस्मिता को यदि कोई जीवन मूल्य दे सकती है, तो वह है मात्र प्रबन्ध कथा। आधुनिक मनीषी कवि काबराजी के प्रबन्ध काव्य एक से बढ़कर एक है। उन्होंने नारी जीवन की पीड़ा, कुंठा, हताशा, वेदना, मनोवैज्ञानिकता, मानसिकता आदि नारी विषयक भावों को अपने काव्यों में प्रस्तुत किया है। प्राचीन एवं उपादेय होने के साथ-साथ उनके काव्य नवीन भी है। पौराणिक कथा को आधार बनाकर उन्होंने जीवन को नये रूप में व्याख्यायित किया है। उनका 'परिताप के पाँच क्षण' नारी संघर्ष एवं नारी के विद्रोह की गाथा है, तो 'नरो वा कुंजरो वा' नारी हृदय की व्यथा कथा है। और 'धनुष भंग' नारी के श्रम, शक्ति एवं सम्मान की महत्ता प्रतिपादित करता है। 'उत्तर महाभारत' काबराजी के लिए कीर्ति स्तम्भ है, तो 'उत्तर रामायण' कवि प्रतिभा का पारस है और 'उत्तर भागवत' तो कवि सम्मान का सरताज है। 'उत्तर महाभारत' एवं उत्तर रामायण में कवि ने भारतीय नारी का आदर्श प्रस्तुत किया है। वहाँ 'उत्तर भागवत' में नारी के निष्काम एवं निश्छल प्रेम को परिभाषित किया है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि काबराजी ने अपने प्रबन्ध काव्यों के माध्यम से आधुनिक नारियों का पथ प्रदर्शन किया है।

नारी एक होते हुए भी अनेक रूपा है। माँ के रूप में वह ममता को बाँटती है, तो पुत्री के रूप में वह माँ-बाप का सम्मान बढ़ाती है। प्रेयसी के रूप में वह अपना सब कुछ न्यौच्छावर कर देती है, तो पत्नी के रूप में अपने मधुर दाम्पत्य संबंध से परिवार को स्वर्ग-सा बना देती है। काबराजी ने

अपने काव्यों में नारी के विभिन्न रूपों का भाव प्रवणता से सुरेख चित्रण करके भारतीय संस्कृति के उच्चादर्शों को जीवंत किया है। नारी का स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करना और अपने स्वतंत्र अस्तित्व की खोज करना कवि की नारी विषयक नूतन द्रष्टि का परिचायक है। साथ ही यह भी प्रतिपादित किया है कि पुरुष के प्रति नारी का विद्रोह या पुरुष से स्पर्धा का भाव समाज के लिए श्रेयष्कर नहीं है। साथ ही साथ कवि ने नारी के प्रति मनोवैज्ञानिक एवं मानवतावादी द्रष्टिकोण को अपनाकर विश्व संस्कृति में भारतीय नारी का गौरव और भी बढ़ा दिया है। कवि का नारी के प्रति स्वस्थ द्रष्टिकोण सराहनीय है।

“नहीं भोग्या, नहीं मादा, नहीं शिशु-यंत्र है नारी,  
समूचे विश्व की उत्पत्ति का शुभ मंत्र है नारी।  
नारी दाम्पत्य या मातृत्व है संकीर्णता इसकी  
यही है पूर्णता इसकी, यही परिपूर्णता इसकी ॥”

काबराजी ने नारी के ऐसे रूप का चित्रण किया है, जो युग की आवश्यकतानुसार पुरुष के साथ चलकर राष्ट्र निर्माण में अपना योगदान दे सके। ऐतिहासिक नारी पात्रों के युगीन स्वरूप की रक्षा करते हुए कवि ने उन्हें युगानुरूप भावों की अभिव्यक्ति से युक्त किया है। उनसे प्रबन्ध काव्य उनकी सर्जना शक्ति की मौलिकता के परिचायक है। उनका नारी विषयक द्रष्टिकोण उन्हें समकालीन कवियों से अलग स्थापित करता है। उनके प्रायः प्रबन्ध काव्य नारी प्रधान है। द्रौपदी अपने अधिकारों के लिए नहीं लड़ती है, जब कि अंबा अपने हक प्राप्त करने के लिए तैयार होती है। कवि की सीता आधुनिक युगबोध में एक चेतनाशील नारी है, तो राधा निष्काम प्रेमयोगिनी बनकर आदर्श प्रेमिका के रूप में आधुनिक नारियों का पथप्रदर्शन करती है।

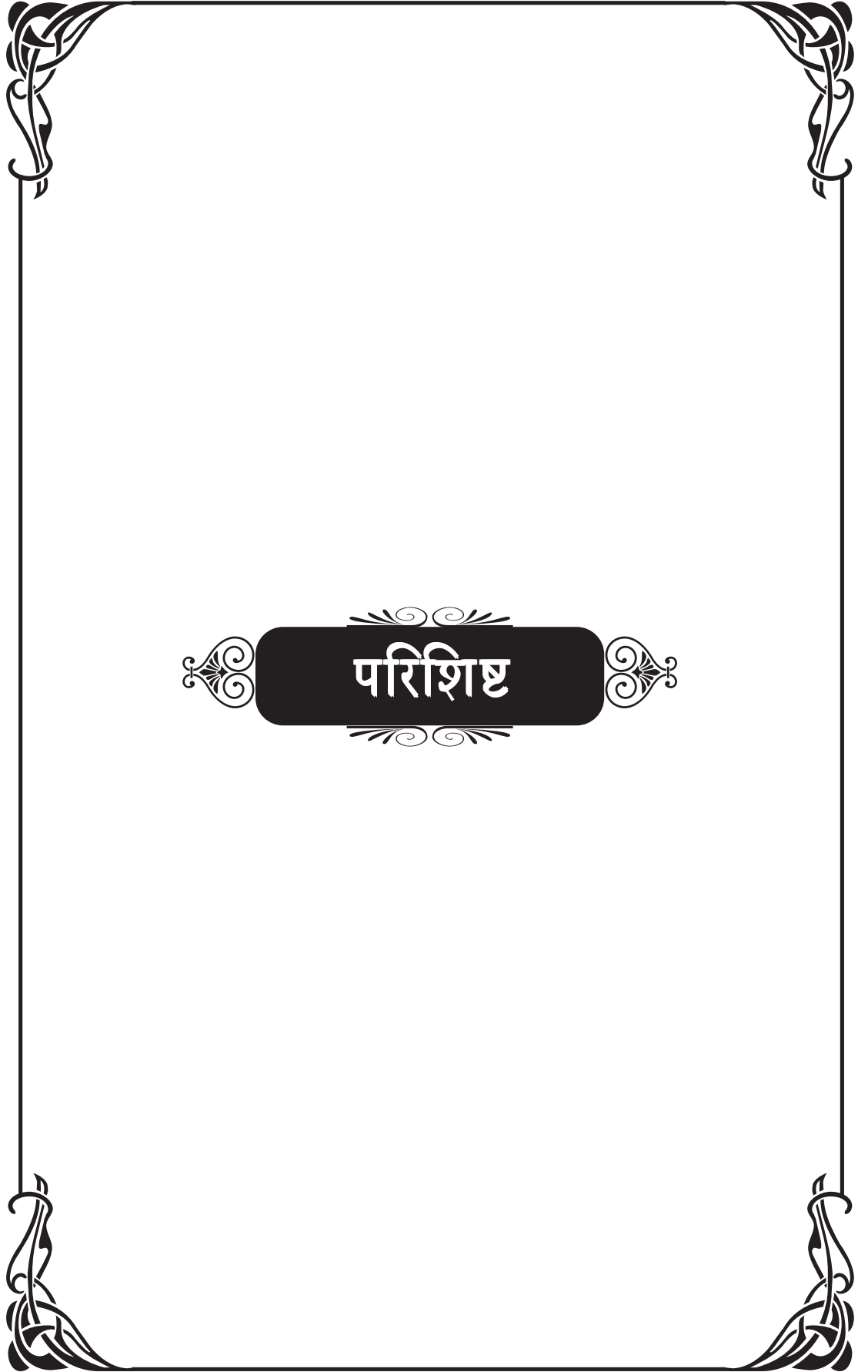
अपने काव्यों के द्वारा कवि ने जहाँ देश की सांस्कृतिक गरिमा को गौरवान्वित किया है, वहाँ उनमें प्राचीनता का भी निर्वाह किया है। उनका नावीन्यपूर्ण द्रष्टिकोण पाठकों को काबराजी की अमोघ द्रष्टि के प्रति आकर्षित करता है।

काबराजी के प्रबन्ध काव्य के नारी पात्रों का अध्ययन करने के बाद कह सकते हैं कि स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे के सहयोगी हैं, पूरक हैं। दोनों के सम्मिलित सहयोग से ही यह सृष्टि चलती है। नारी को न पुरुष से हीन होना चाहिए, न श्रेष्ठ। बल्कि नारी को केवल नारी, मानवी या मानुषी ही होना चाहिए। नारी को नारी होकर भी मातृत्व और पत्नीत्व की भूमिका निभाते हुए सर्वप्रथम मानवी बनकर जीने का प्रयास करना चाहिए।

साहित्य सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। अतः साहित्य के इतिहास द्वारा मानव समाज के बाह्य एवं आन्तरिक विकास का लेखा-झोखा हो जाता है। साहित्य केवल ऐतिहासिक तथ्यों का विवरण मात्र नहीं है, वरन् वह मानव की मनोवृत्तियों के विकास का सरस चित्रण भी है। समाज के सम्मुख आनेवाली समस्याओं को सुलझाने में वह उसका मार्ग प्रशस्त करता है। कवि अपने समय से अछूते नहीं रह सकते हैं। साहित्य सर्जन के समय कवि अपने समय की समस्याओं को अपने काव्यों में यथा स्थान चित्रित कर ही देता है। डॉ. काबराजी ने अपने प्रबन्ध काव्यों में पौराणिक नारी पात्रों के माध्यम से आधुनिक युग की संक्रांति और सप्रश्न स्थिति का विश्लेषण किया है। पुराने गरिमामय पात्रों का सहारा लेकर आधुनिक युग की समस्याओं को चित्रित कर कवि ने उसका सम्यक् समाधान भी प्रस्तुत किया है।

अतः संक्षेप में हम कह सकते हैं कि डॉ. किशोर काबरा के नारी पात्र भारतीय संस्कृति के आदर्शों की सजीव और सार्थक अभिव्यक्ति है। उनके काव्यों में इतिहास और संस्कृति के साथ-साथ उनका गहरा जीवन दर्शन भी नीहित है। कवि ने नारी चरित्र की वेदना, पीड़ा कुण्ठा, मानसिकता के द्वारा ठीक आज के समाज की यथार्थता को वाचा दी है। नारी जीवन के विभिन्न पहलुओं को उन्होंने बड़ी नजाकत के साथ प्रस्तुत किया है। ऐसे रचनाधर्मी कवि आज के युग में दुर्लभ है। मैं इनकी काव्य प्रतिभा की कायल हो गई हूँ।

अस्तु।



परिशिष्ट

**परिशिष्ट**  
**वर्णानुक्रमिक ग्रंथानुक्रमणिका**  
**आधार ग्रंथ**

क्रम	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक
1.	उत्तर भागवत	डॉ. किशोर काबरा	अविराम प्रकाशन, 29/62, गली नं. 11 पहली मंजिल, विश्वास नगर, दिल्ली प्र. सं. 2004
2.	उत्तर महाभारत	डॉ. किशोर काबरा	अभिव्यक्ति प्रकाशन, दिल्ली 1990
3.	उत्तर रामायण	डॉ. किशोर काबरा	अविराम प्रकाशन, दिल्ली 1994
4.	धनुष - भंग	डॉ. किशोर काबरा	एस. चंद एन्ड कं. नई दिल्ली प्र. सं. 1982 द्वि. सं. 1990 पश्चिमांचल प्रकाशन, अहमदाबाद तृ. सं. 1999
5.	नरो वा कुँजरो वा	डॉ. किशोर काबरा	साहित्य सहकार, दिल्ली 1984
6.	परिताप के पाँच क्षण	डॉ. किशोर काबरा	स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1979

## संदर्भ ग्रंथ (हिन्दी)

क्रम	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक
1.	अज्ञेय के कथा साहित्य में नारी चित्रण	डॉ. दक्षा आर. जोशी	दर्पण प्रकाशन नडियाद
2.	आधुनिक हिन्दी काव्यमें नारी	डॉ. सौ. जे. एम. देसाई	विद्या प्रकाशन कानपुर
3.	आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना	डॉ. शैलकुमारी	हिन्दुस्तानी अकादमी इलाहाबाद
4.	आधुनिक हिन्दी साहित्यमें नारी	डॉ. सरला हुआ	साहित्य निकेतन कानपुर
5.	आधुनिक कविता का विकास : सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ में	डॉ. रामेश्वरलाल खण्डेलवाल 'तरूण'	यतीन्द्र साहित्य सदन भीलवाड़ा (राज.)
6.	आधुनिक हिन्दी काव्य में रामकथा	डॉ. रामनाथ तिवारी	किताब महल, पटना प्र. सं. 2000
7.	आधुनिक कृष्ण काव्य में युगबोध	डॉ. परविन्दर कौर	भारतीय ग्रन्थ निकेतन नई दिल्ली, 2000
8.	आधुनिक हिन्दी कविता-विकास के आयाम	नीरज ठाकुर	चिन्ता प्रकाशन राजस्थान
9.	'उत्तर रामचरितम्' और आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्य परंपरा	डॉ. कृष्ण गोपाल मिश्र	रचना प्रकाशन जयपुर
10.	काव्य शास्त्र	डॉ. भगीरथ मिश्र	विश्व विद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी - 221001 चतुर्थ संस्करण 2001



क्रम	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक
11.	काव्य शास्त्र के मानदण्ड	डॉ. रामनिवास गुप्त	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली - 112002 2001
12.	कृष्णभक्ति - काव्य : द्वापर	डॉ. सुरेशचन्द्र झा 'किंकर'	संस्कृति प्रकाशन अहमदाबाद
13.	खड़ीबोली रामकाव्यों में चित्रित समाज और संस्कृति	डॉ. मनोहर सराफ	विद्या प्रकाशन कानपुर प्र. सं. 1994
14.	खड़ीबोली के राम काव्य में युगचेतना	डॉ. मोहिनी श्रीवास्तव	राहुल पब्लिशिंग मेरठ
15.	गुजरात की समकालीन हिन्दी कविता	डॉ. अम्बाशंकर नागर	हिन्दी साहित्य अकादमी
16.	गोस्वामी तुलसीदास	डॉ. माया प्रकाश पाण्डेय	चिन्तन प्रकाशन कानपुर, 1999
17.	जैन आगम में नारी	डॉ. कोमल जैन	
18.	डॉ. किशोर काबरा : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. घनश्याम अग्रवाल	शान्ति प्रकाशन आसन (रोहतक) (हरियाणा)
19.	'धनुष-भंग' : एक अनुशीलन	डॉ. घनश्याम अग्रवाल	दिव्या प्रकाशन, हीरा वाडी, नरोडा रोड, अहमदाबाद प्र. सं. 1998
20.	नव्य प्रबंध काव्यों में आधुनिक बोध	उर्वशी शर्मा	बोहरा प्रकाशन जयपुर प्र. सं. 1997
21.	नवें दशक की हिन्दी कविता	डॉ. यतीन्द्र तिवारी	सरस्वती प्रकाशन कानपुर प्र. सं. 1993
22.	'नारी-शोषण' - समस्याएँ एवं समाधान	डॉ. राजकुमार	अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली, 2003

क्रम	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक
23.	नारी शोषण	आशारानी व्होरा	नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली । 1982
24.	‘नारी’	जैनेन्द्रकुमार	पूर्वोदय प्रकाशन 7/8 दरियागंज नई दिल्ली - 110002
25.	नीति काव्य का विकास	हेमराज - वृन्द	
26.	भारतीय जनता तथा संस्थाएँ	रविन्द्रनाथ मुकर्जी	
27.	भारतीय नारी अस्मिता और अधिकार	आशारानी व्होरा	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1986
28.	भारतीय नारी : वर्तमान समस्याएँ और भावी समाधान	डॉ. आर. पी. तिवारी एवं डॉ. डी. पी. शुक्ला	ए.पी.एच. पब्लिशिंग कोर्पोरेशन नई दिल्ली
29.	भारतीय नारी अस्मिता की पहचान	डॉ. शुक्ल उमा	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद 1994
30.	भारतीय स्त्री : सांस्कृतिक संदर्भ	प्रतिभा जैन एवं संगीता शर्मा	
31.	भारतीय समाज में नारी	प्रज्ञा शर्मा	पोईन्टर पब्लिशर्स जयपुर (राज.)
32.	भारतीय समाज में नारी	सुनिता गोयल संगिता गोयल	R.B.S.A. पब्लिशर्स जयपुर प्र. सं. 2003
33.	भारतीय संस्कृति में नारी	डॉ. सिंहल लता	परिमल पब्लिशिंग, शक्तिनगर, दिल्ली । 1991
34.	भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व	सोती विरेन्द्र चन्द्र	राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली

क्रम	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक
35.	महादेवी वर्मा : कवि और गद्यकार	डॉ. गौतम	
36.	महाभारत कालीन नारी	डॉ. श्रीमति स्कालस्टिका कुजूर	इन्स्टर्न बुक लिंक्स 5825 न्यू चन्द्रावल, दिल्ली
37.	महाभारत कथाओं पर आधारित हिन्दी काव्य	डॉ. राघवप्रसाद पाण्डेय	साहित्य रत्नालय कानपुर
38.	महिला एवं विकास	डॉ. राजकुमार	अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली
39.	मिथकिय संदर्भों में रामचरित	डॉ. सुभदा पाटिल	विद्या प्रकाशन कानपुर प्र. सं. 1997
40.	यशपाल के उपन्यासों में नारी जीवन की समस्याएँ	डॉ. योगेशकुमारी सूरी	चन्द्रलोक प्रकाशन कानपुर, 1994
41.	रामायण का आचार दर्शन	अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव	भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली
42.	रामायण में नारी	डॉ. अर्चना विश्‍नोई	परिमल पब्लिकेशन्स दिल्ली, 2002
43.	रामकाव्यों में नारी	डॉ. विद्या	प्रकाशन संस्थान दिल्ली
44.	वैदिक वाङ्मय में नारी	डॉ. सुषमा शुक्ला	विद्यानिधि प्रकाशन दिल्ली
45.	राजस्थान की संस्कृति में नारी	डॉ. विक्रमसिंह राठौड	

क्रम	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक
46.	समकालीन हिन्दी कविता - अज्ञेय और मुक्तिबोध	डॉ. शशि शर्मा	वाणी प्रकाशन, दिल्ली
47.	स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में जीवन दर्शन	डॉ. गायत्री जोशी	राजस्थान ग्रन्थागार जोधपुर प्र. सं. 1994
48.	स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी काव्य में महाभारत के पात्र	डॉ. जे. आर. बोरसे	चन्द्रलोक प्रकाशन कानपुर प्र. सं. 2002
49.	साठोत्तरी हिन्दी कविता में अनास्था बोध (सन् 1961 से 1985 तक)	डॉ. रंजना राजदान	सन्तमीरा प्रकाशन चितौड़गढ़ (राज)
50.	साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूप	डॉ. शर्मा विमल	संगम प्रकाशन इलाहाबाद 1987
51.	साठोत्तरी हिन्दी नाटकों में नारी की दशा और दिशा	डॉ. मीना पंड्या	भावना प्रकाशन दिल्ली, 1999
52.	साहित्यिक निबंध	राजनाथ शर्मा	विनोद पुस्तक मंदिर आग्रा, 1954
53.	सीता समाधि	राजेश्वरी अग्रवाल	नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली
54.	संत काव्य में नारी	कृष्णा गोस्वामी	शान्ति प्रकाशन, आसन, रोहतक (हरियाणा)

क्रम	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक
55.	सूरदास और नरसिंह मेहता : तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. भ्रमरलाल जोशी	गुर्जर भारती 31 प्रशांत पार्क, पालडी, अहमदाबाद
56.	हिन्दी और भारतीय भाषाएँ : अस्मिता का प्रश्न एवं विविध महत्वपूर्ण आलेख	डॉ. दक्षा आर. जोशी	दर्पण प्रकाशन नडियाद
57.	हिन्दी काव्य में नारी	डॉ. वल्लभ दा तिवारी	
58.	हिन्दी काव्य में कृष्ण के विविध रंग	डॉ. अब्बास अली के. ताई	साहित्य प्रकाशन, मालीवाड़ा, दिल्ली-6, 1992
59.	हिन्दी कृष्ण - काव्य में भक्ति एवं वेदान्त	डॉ. संतोष पाराशर	गुर्जर - भारती प्रशान्त पार्क, पालडी, अहमदाबाद। प्र. सं. 1986
60.	हिन्दी महाकाव्यों में नायिका की परिकल्पना	डॉ. उर्मिला श्रीवास्तव	सरस्वती प्रकाशन कानपुर, 1993
61.	हिन्दी मराठी नाटकों में नारी	डॉ. वसुधा जोशी	चन्द्रलोक प्रकाशन कानपुर प्र. सं. 2001
62.	हिन्दी निर्गुण संत काव्य और भक्ति	डॉ. कृष्णारैना	
63.	हिन्दी रामकाव्य में नारी	डॉ. पूर्णिमा केडिया	जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद
64.	हिन्दी रामकाव्य नये सन्दर्भ	डॉ. प्रमिला अवरस्थी	चिन्तन प्रकाशन नौबस्ता, कानपुर, 1997

क्रम	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक
65.	हिन्दी रामकाव्य का स्वरूप और विकास बदलते युगबोध के परिप्रेक्ष्य में	प्रेमचन्द माहेश्वरी	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 1996
66.	हिन्दी व्यंग साहित्य में नारी	डॉ. शैलजा माहेश्वरी	विकास प्रकाशन कानपुर प्र. सं. 1997
67.	हिन्दी के स्वातन्त्र्योत्तर मिथकीय खण्ड काव्य	डॉ. कविता शर्मा 'जदली'	पार्श्व पब्लिकेशन अहमदाबाद प्र. सं. 1999
68.	हिन्दी के सामाजिक उपन्यासों में नारी	रेवा कुलकर्णी	परिमल पब्लिकेशन दिल्ली । 1994

### संदर्भ ग्रंथ (गुजराती)

क्रम	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक
1.	आदि कवि श्री वाल्मीकि रचित 'श्री वाल्मीकि रामायण'	श्री नरेन्द्रकुमार मयाशंकर जोषी	प्रवीण पुस्तक भंडार, लाभ चेम्बर्स, म्यु. कोर्पो. सामे, ढेबर रोड, राजकोट
2.	नारी एक प्रेरणामूर्ति	प्रागजीभाई पटेल	प्रवीण पुस्तक भंडार, लाभ चेम्बर्स, म्यु. कोर्पो. सामे, ढेबर रोड, राजकोट
3.	महर्षि वेदव्यास रचित 'श्रीमद् भागवत्'	श्री नरेन्द्रकुमार मयाशंकर जोषी	प्रवीण पुस्तक भंडार, लाभ चेम्बर्स, म्यु. कोर्पो. सामे, ढेबर रोड, राजकोट

क्रम	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक
4	महाभारतना स्त्रीपात्रो	स्मिता भागवत	मातृभूमि सेवा ट्रस्ट B/17 विहार कुंज सोसा., वडोदरा - 390 004 प्र. आवृत्ति - 2001
5	श्री महाभारत अद्वारे पर्वनो महाग्रंथ	श्री नरेन्द्रकुमार मयाशंकर जोषी	प्रवीण पुस्तक भंडार, लाभ चेम्बर्स, म्यु. कोर्पो. सामे, डेवर रोड, राजकोट

### संदर्भ ग्रंथ (संस्कृत)

क्रम	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक
1.	अग्निपुराण	वेद व्यास	सस्तु सा. कार्या. अहमदाबाद वि. सं. 1954
2.	साहित्य दर्पण	विश्वनाथ	चोखंबा प्रकाशन, वाराणसी वि. सं. 2046

### पत्र-पत्रिकाएँ एवं लेख

क्रम	ग्रंथ का नाम	मास	प्रकाशन वर्ष
1.	नया ज्ञानोदय	जुलाई	2005
2.	नया ज्ञानोदय	नवम्बर	2006
3.	भाषा	जुलाई - अगस्त	2006
4.	भाषा	सितम्बर - अक्टूबर	2006
5.	भाषा - सेतु	अप्रैल - जून	2004
6.	वर्तमान पत्र : वैचारिकी	फरवरी	1998
7.	समीक्षा	अक्टूबर - दिसम्बर	2006

क्रम	ग्रंथ का नाम	मास	प्रकाशन वर्ष
8.	साहित्य अमृत (मासिक)	अक्टूबर	2006
9.	संचारिका	अक्टूबर - नवम्बर	2006

## कोश ग्रंथ

क्रम	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक
1.	आदर्श हिन्दी शब्द कोश	पण्डित रामचन्द्र पाठक	भार्गव बुक डिपो चौक, वाराणसी 15 वा. सं. 1982
2.	बड़ा कोश (हिन्दी - गुजराती)	प्रा. रतिलाल सां. नायक	अक्षरा प्रकाशन अहमदाबाद द्वितीय आवृत्ति नवे. 2003
3.	शिक्षार्थी हिन्दी - अंग्रेजी शब्द कोश	डॉ. हरदेव बाहरी	राजपाल एण्ड सन्स कश्मीरी गेट, दिल्ली प्र.सं. 1981
4.	संस्कृत - गुजराती विनीत कोश	गोपालदास जीवाभाई पटेल	गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद, प्र. आ. 1962
5.	नन्हा कोश भाग-1-2 हिन्दी-गुजराती और गुजराती-हिन्दी	अम्बालाल पटेल और रतिलाल सां. नायक	अनडा बुक डिपो, गांधी मार्ग, अहमदाबाद

